तुलनात्मक अध्ययन

एम. ए. , हिन्दी

Semester-IV, Paper- II

पाठ के लेखक

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

डॉ. एम. मंजुला
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

संपादक

डॉ. एम. मंजुला
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

निर्देशक

डॉ . नागराजु बट्टू
MBA., MHRM., LLM., M.Sc. (Psy).,MA (Soc)., M.Ed., M.Phil., Ph.D
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्या नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर – 522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222
0863-2346259 (अध्ययन सामाग्री)
Website : www.anucde.info
E-mail : anucdedirector@gmail.com

एम. ए., हिन्दी

First Edition :2023

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. (Hindi) Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasham.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B. Com courses at the Degree level and M.A., M. Com, M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editors and Lesson-writers of the Centre who have help edit the seen devours.

Prof. Raja SekharPatteti
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

M.A (Hindi)

Semester-IV, Paper - II

402HN21: COMPARATIVE LITERATURE

तुलनात्मक अध्ययन

Syllabus

पाठ्यांश

इकाई -1 : तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की प्रविधि **:**

1. तुलनात्मक साहित्य, परिभाषा और स्वरूप विवेचन-साम्य और वैषम्य।
2. तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की प्रविधि-1**:** सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि, अध्ययन की परंपरा प्रविधि, प्रभाव प्रविधि, अध्ययन की स्वीकृति तथा संचार प्रविधि, सौभाग्य प्रविधि, संबंधात्मक प्रविधि।
3. तुलनात्मक साहितय के अध्ययन की प्रविधि-2 वस्तुबीड थिमेटिक्सी की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन, नव रूपायन (प्रो. फिगरेशन) की दृष्टि से तुनात्मक अध्ययन-गृहित अध्ययन (रिषेप्शन स्टडीज) की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन, आदान-प्रदान तथा अन्य प्रकार।
4. तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका।

इकाई -2 : भारतीय साहित्य की अवधारणा **:**

1.तुलनात्मक भारतीय साहित्य और भारतीय साहित्य के इतिहास की संकल्पना।

2. तुलनात्मक आलोचना और उसका नया रूप**:** अंतर विकर्ती आलोचना का स्वरूप विश्लेषण।

इकाई-3 : हिन्दी-तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन **:**

1.कालखंड-आदिकाल-मध्यकाल-आधुनिक काल-हिन्दी और तेलुगु तेलुगु का इतिहास और

दृष्टियाँ -तुलनात्मक अध्ययन।

इकाई 4 : प्रवृत्ति की दृष्टि से हिन्दी -तेलुगु तुलनात्मक अध्ययन**:**

1.प्रगतिवाद और अभ्युदय कविता।

2. छायावाद और भाव कविता।

3. प्रयोगवाद और दिगंबर कविता।

4. समकालीन हिन्दी-तेलुगु कविता।

इकाई 5: साहित्य विधा की दृष्टि से हिन्दी-तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन।

CONTENT

1. तुलनात्मक साहित्य- एक परिचय ---------- 1.1-1.14
2. तुलनात्मक साहित्य-अध्ययन की प्रविधि-**1** ---------- 2.1-2.14
3. तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका ---------- 3.1-3.12
4. भारतीय साहित्य की अवधारणा ----------4.1- 4.11
5. भारतीय साहित्य की अवधारणा - तुलनात्मक साहित्य ----------5.1- 5.10
6. हिन्दी-तेलुगु तुलनात्मक अध्ययन ----------6.1- 6.19
7. विद्यापति-क्षेत्रय्या और कबीर-वेमना का तुलनात्मक अध्ययन ----------7.1- 7.11
8. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और श्रीरंगं श्रीनिवास ----------8.1-8.10
9. राष्ट्र कवि दिनकर और रायप्रोलु सुब्बाराव ----------9.1-9.11
10. मीराबाई और अन्नमाचार्य- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु----------10.1-1.17
11. साहित्य विद्या की दृष्टि से हिन्दी - तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन----------11.1-11.13

1. तुलनात्मक साहित्य- एक परिचय

1.0. उद्देश्य

इस इकाई में हम सबसे पहले तुलनात्मक साहित्य के बारे में जानेंगे। भारतीय साहित्य में तुलनात्मक साहित्य का महत्व के बारे में जानेंगे। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान सकेंगे-

- तुलनात्मक साहित्य किसे कहते हैं;
- तुलनात्मक साहित्य का अर्थ और स्वरूप;
- राष्ट्रीय अस्मिता और तुलनात्मक साहित्य;
- तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ कब हुआ;
- इस अध्ययन पद्धति का विकास कैसे हुआ; और
- तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति क्या है?
- उपनिवेशवाद एवं तुलनात्मक साहित्य और अन्य का अध्ययन;
- तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद अध्ययन के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

1.1. प्रस्तावना

1.2. तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ

1.3. तुलनात्मक साहित्य का अर्थ और स्वरूप

1.4. तुलनात्मक साहित्य-स्कूल

1.5. राष्ट्रीय अस्मिता और तुलनात्मक साहित्य

1.6. उपनिवेशवाद-तुलनात्मक साहित्य और अन्य का अध्ययन

1.7. महत्वपूर्ण आयामों का रेखांकन

1.8. रैनेवेलेक की मान्यताएं

1.9. तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद अध्ययन

1.10. सारांश

1.11. बोध प्रश्न

1.12. सहायक ग्रंथ

1.1. प्रस्तावना

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की पद्धति उन्नीसवीं सदी से प्रचलन में है। साहित्य और संस्कृति के अध्ययन की अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन पद्धतियां है। इन पद्धतियों से साहित्य के शास्त्र, भाषा विज्ञान, सौंदर्य शास्त्र के द्वारा साहित्य को अपने-अपने ढंग से समझा-समझाया जाता रहा है। इसके साथ साहित्य का समा शास्त्र, मनोविज्ञान, संरचनावाद आदि पद्धतियों से साहित्य को समझा जाता रहा है। इन पद्धतियों से साहित्य का एक नया स्वरूप उभर कर आता है। अतः तुलनात्मक साहित्य ने साहित्य के स्वरूप की नई समझ भी दी है। अतः इस अनुशासन को हम विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं।

1.2. तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ

1816 में तुलनात्मक साहित्य के अध्येताओं का मानना है कि इस पद का आरम्भ सबसे पहले फ्रांस में प्रकाशित संग्रह Course de literature compare में किया गया। सन् 1854 में जर्मनी में तुलनात्मक साहित्य का प्रयोग मिलता है। अंग्रेजी में मैथ्यू अर्नाल्ड ने 1848 ई. में पहली बार तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा सामने रखी। इसका तात्पर्य यह है कि तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी में सामने आई। जिसमें एक से अधिक साहित्य के अध्ययन की पद्धति विकसित हुई। दूसरी बात यह है कि यह कोई साहित्यिक आन्दोलन नहीं है, लेखकों कलाकारों और रचनाकारों का आन्दोलन नहीं है, वरन् साहित्य के अध्येताओं की विचार प्रणाली है, जिसके केन्द्र अकादमी, संस्थाएं और विश्वविद्यालय हैं।

विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य के विभाग स्थापित किए गए, वहाँ व्याख्यान दिए गए चर्चाएं और परिचर्चाएं आयोजित की गई। उनसे जो निष्कर्ष निकले, उन निष्कर्षो से तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप स्पष्ट हुआ। 1903 में वेनेदेत्तो क्रोचे ने स्वतंत्र अनुशासन के रूप में तुलनात्मक अध्ययन पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए उसे अस्वीकार कर दिया। उनको शुद्ध साहित्योतिहास और तुलनात्मक साहित्य में कोई अन्तर नहीं लगा। 1920 के दशक में लेने कूपर ने तुलनात्मक साहित्य को एक 'Bogus Term' कहा, जिसका न तो कोई अर्थ है न कोई संस्कार 'Neither sense not syntax'। साइमन ज्यून (Jeune) ने तुलनात्मक साहित्य में 'प्रभाव' के अध्ययन को मुख्य तत्व माना। (संदर्भ - 'New direction in comparative literature' में संकलित अवधेश कुमार सिंह का 'The future of comparative literaty studies') सूसन बेसनेट ने फिलारे चार्ल्स के 1835 में 'तुलनात्मक साहित्य' पर दिए गए व्याख्यान को उद्धृत किया है।

फिलारे के अनुसार (पृष्ठ 12-13) Let us calculate the influence of thought upon thought, the manner in which the people are mutually changed, what each of them has given, and what each of them, has received: let calculate also the effect of this perptual exchange upon the individual nationalities:how, for example, the long-isolated northem spirit finally allowed itself to be penetrated by the spirit of the south; what the magnetic attraction was of France for England and England for Frnace; how each division of Europe has at one time dominated its sister states and at another time submitted to them; what has been the influence of theological Germany, artistic Italy, energetic France, Catholic Spain, Protestant England; how the warm shades of the south have become mixed with the profound analysis of Shakespeare; how the Roman and

Italian spirit have embellished and adorned the Catholic faith of Milton; and finally, the attraction, the sympathies, the constant vidration of all these living, exalted, melancholoy and reflected thoughts - some spontanceously and others because of study - all submitting to influences which they accept like gifts and all in turn emitting new unforecastable influences in the future! उनके अनुसार एक विचार पर दूसरे विचार के प्रभाव की गणना करते हैं जिससे लोग आपस में बदल जाते हैं, अपने विचार बदल लेते हैं, जिसमें हरेक व्यक्ति दूसरे को कुछ देता है तथा दूसरे से कुछ पाता है।

इसी तरह से धीरे-धीरे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से विनिमय करता है। जैसे इंग्लैंड के लिए फ्रांस का आकर्षण होता है जिससे धर्मशास्त्री जर्मनी या कलात्मक इटली, या ऊर्जावान फ्रांस, कैथोलिक स्पेन या प्रोटेस्टेंट इंग्लैंड इस तरह की पहचान बनती है और राष्ट्र एक दूसरे से भेंट में कुछ न कुछ पाता है जिनसे अदृश्य भविष्य प्रभावित होता है। इस तरह तुलनात्मक साहित्य में कारण और प्रभाव का अध्ययन होता है।

प्रारंभिक तुलनात्मक साहित्य जिसका प्रारंभ फ्रांस में हुआ था, इसी प्रभाव का विश्लेषण करता है। सो इस आध्य बीज शब्द है 'प्रभाव'। तुलनात्मक साहित्य में इस प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। जिसे हम राष्ट्र की आत्मा कहते हैं, वह हमेशा अप्रभावित नहीं रहती। कभी न कभी, किसी न किसी से प्रभावित हो जाती है। जैसे भारतीय आत्मा आजकल अमेरिका से प्रभावित हो रही है। पहले यह सोवियत रूस से प्रभावित हुआ करती थी। कभी चीन, जापान, श्रीलंका, भारत से प्रभावित हुए हैं। यह सांस्कृतिक प्रभाव कायम है। यह सांस्कृतिक सम्बन्ध बनता है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ता है, जिसमें एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को भेंट देती है।

तुलनात्मक साहित्य के आड़े आती है संस्कृति और राष्ट्रीयता की अवधारणा। राष्ट्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक परंपरा का प्रश्न कई बार महत्वपूर्ण हो जाता है। इस प्रभाव में कहां तक प्रभाव रहता है, कहां 'नकल' बन जाता है यह पेचीदा प्रश्न है। कहां प्रभाव को आत्मसात कर लिया जाता है और कहां उसका आभ्यंतरीकरण हो जाता है, यह कहना मुश्किल है। मार्क्सवाद जब भारत में आया ही आया था, तब लोग मजाक में कहा करते थे कि मास्को में जब बरसात होती है तब भारतीय कम्युनिस्ट दिल्ली में छाता तान लेते हैं। अर्थात् मार्क्सवाद भारतीय नहीं है या भारतीयता का विरोधी है। इसी तरह आधुनिकता, पश्चिमीकरण, फ्रायड, सार्त्र सब भारतीय अस्मिता कि लिए खतरा है। तुलनात्मक अध्ययन में ये सभी प्रश्न बाधाएं खड़ी करते हैं।

1.3. तुलनात्मक साहित्य का अर्थ और स्वरूप

तुलनात्मक साहित्य पर विचार करते समय हमारे दिमाग में पहला प्रश्न यही आता है कि तुलनात्मक साहित्य होता क्या है। क्या कोई ऐसा साहित्य होता है जो अपनी प्रकृति में ही तुलनात्मक होता है? या कुछ ऐसे लेखक होते हैं जो तुलनात्मक साहित्य लिखते हैं? इस दृष्टि से हमें पहली बात तो यह जान लेना चाहिए कि प्रत्येक लेखक साहित्य ही रचता है, तुलनात्मक साहित्य नहीं लिखता। अर्थात 'तुलनात्मक साहित्य' अपने आप कुछ नहीं होता। जब हम 'तुलनात्मक साहित्य' पद का प्रयोग करते है, तब हमारा मतलब होता है, साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन। हमारे अध्ययन की पद्धति तुलनात्मक होती है। हम उसी का अध्ययन करते हैं। वैसे कुछ लोगों का यह भी मानना है कि साहित्य का प्रत्येक अध्ययन तुलनात्मक ही होता है।

तुलना के द्वारा ही हम किसी चीज को समझ सकते हैं। बिना तुलना किए हुए हम कभी नहीं समझ पाते कि सूरदास बड़े कवि हैं या तुलसीदास। प्रेमचंद और प्रसाद की तुलना करके ही हम दोनों लेखकों को समझ पाते हैं। जब

कहा जाता था कि सूर-सूर तुलसी ससि उड्गन केशवदास' तब तुलना ही तो होती थी। इसी तरह लोक कहावतों में कहा जाता है – 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली'। इसमें तुलना की गई है। परन्तु यह तुलनात्मक साहित्य के अन्तर्गत नहीं आता। भले ही तुलनात्मक साहित्य के विरोधी मानते रहे हों कि साहित्य का प्रत्येक अध्ययन तुलनात्मक साहित्य ही होता है। तुलना के बिना हम न तो कोई मानदण्ड स्थिर कर सकते हैं और न साहित्य को समझ ही सकते हैं। तुलनात्मक साहित्य एक विशेष प्रकार का अध्ययन है।

इस अध्ययन का ब्यौरा देते हुए 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' में प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी ने लिखा है- तुलनात्मक साहित्य अंग्रेजी के 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' का हिंदी अनुवाद है। एक स्वंतंत्र विद्याशाखा के रूप में विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन-अध्यापन के कार्य को आजकल विशेष महत्व दिया जा रहा है। अंग्रेजी कवि मैथ्यू अर्नाल्ड ने सन् 1848 में अपने एक पत्र में सबसे पहले 'कम्पैरेटिव लिटरेचर' पद का प्रयोग किया था। परन्तु प्रारम्भ में ही इसके शाब्दिक अर्थ को लेकर विवाद रहा क्योंकि साहित्य यदि कहानीकार कवि आदि की सृजनशील कलात्मक अभिव्यक्ति है तो वह किसी तरह भी तुलनात्मक नहीं हो सकता। हमने आज तक ऐसा कोई कवि नहीं देखा जो तुलानात्मक कविता, कहानी या उपन्यास लिखता हो। साहित्य की प्रत्येक कृति अपने आप में पूर्ण होती है और साहित्य सृष्टि में कहीं दूसरे साहित्य के साथ तुलना की जरूरत लाया जा सकता।

नार्था फ्राई ने 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध तथा 1950 के दशक में साहित्य की निरस्तक को मिथक की केन्द्रीयता में देखा। इसके पहले टी. एस. इलियट परम्परा के परिप्रेक्ष्य में कृति के (तुलनात्मक) अध्ययन की बात कर चुके थे। 1963 में तुलनात्मक साहित्य को परिभाषित करते हुए रेनेवेलेक इसे विषय वस्तु एवं पद्धति के बीच यांत्रिक ढंग से भेदक रेखा खींचने वाली पद्धति मानने का विरोध करते हैं वे साहित्य और इतिहास संयोजन पर बल देते हैं। लेविन (levin) 1969 में कहते हैं कि तुलनात्मक साहित्य बात करने के बजाय साहित्यों की तुलना करने की जरूरत हैं। (संदर्भ-पूर्वोक्त : 'New Directions in Comparative Literature' संपादक. Ram Bahau Badodae & other macmillan India Ltd., 2007) तुलनात्मक साहित्य की ख्याति प्राप्त विदुषी सूसन बैसनेट के अनुसार तुलनात्मक साहित्य संस्कृति की सीमा से परे पाठ का अध्ययन करता है जो अपनी प्रकृति में अन्तर्विद्यावर्ती होता है और जो साहित्य के उस पैटर्न का रिश्ता ढूंढता है जो काल और देश से परे होता है।

अब इस परिभाषा को बारीकी से समझने के लिए हम कुछ उदाहरण आपके सामने रखते हैं। इन उदाहरणों द्वारा निकाले हुए निष्कर्षों से हम तुलनात्मक साहित्य को समझ सकेंगे। आम तौर पर हम मानते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। यदि हम दर्पण की इस अवधारणा को पूरी तरह से स्वीकार न भी करें, तो भी इतना तो मानते ही हैं कि साहित्य का उस समाज और परिवेश से गहरा रिश्ता होता है, जिस समाज और परिवेश में उसकी रचना होती है। परिवेश का सम्बन्ध देश से होता है।

कोई भी देश में वहां का भूगोल और समाज संरचना होती है। फिर कोई भी देश स्थायी नहीं होता, वह परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तन काल सापेक्ष है। काल के साथ देश में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का प्रभाव साहित्य में लक्षित किया जाता है किसी साहित्यिक कृति का मूल्यांकन करते समय, आस्वाद न करते समय हम इन बातों का ध्यान रखते हैं। अर्थात् साहित्य का अध्ययन करते समय हम सबसे पहले उसे देश और काल में स्थित करते हैं। उसका स्थान तय करते हैं। उदाहरण के लिए जब हम कबीर का अध्ययन करते हैं तो उनके जुलाहा होने का तथ्य भी सामने रखते हैं।

कबीर उस युग में पैदा हुए थे, उस समय में पैदा हुए थे जहाँ ऊँच-नीच की भावनाएं प्रबल थी और सामाजिक मर्यादा के नाम से स्वीकृत हो चली थी। ऐसे समाज के विरुद्ध कबीर ने विद्रोह किया। इस विद्रोह का संबंध उस देश और काल से था। ऐसे ही मीरा मेवाड़ के राजपरिवार की बेटी थी। चित्तौड़ राजघराने की बहू थी। तब वह कुल की मर्यादा को त्यागने की बात करती है तो यह त्याग बड़ा है। यह काल सापेक्ष है। यदि कबीर राज परिवार में पैदा हुआ होते या मीरा सामान्य परिवार में जन्म लेती, तो उनका साहित्य अलग तरह का होगा। साहित्य के सामान्य अध्ययन में जब हम जाते है तो यह बातें हमें मिलती हैं परन्तु जब इनका साहित्य तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में आता है, तब हम देश और काल की इस चेतना को देखना शुरू कर देते हैं।

यदि कोई भिन्न दुनिया का व्यक्ति, अलग काल खण्ड में कबीर और मीरा का पढ़ेगा, तब भी उसमें साहित्यिकता होगी या नहीं होगी। और ऐसे ही किसी अलग देश के अलग काल के कवि से जब तुलना होगी, तब उनके मूल्यांकन को क्या नाम दिया जाएगा। जाहिर है कि यह जो अध्ययन है, वह तुलनात्मक साहित्य के अन्तर्गत आता है। इसी तरह जब हम किसी कवि का अध्ययन करते हैं तो उसे एक भाषिक परंपरा में रखते हैं। भाषा की अपनी प्रकृति होती है, अपना सौन्दर्य होता है, अपनी सीमाएं होती हैं। इसी तरह प्रत्येक कृति एक विधा विशेष में होती है।

'गोदान' एक उपन्यास है, 'अतीत के चलचित्र' संस्मरण है, 'अपनी खबर' आत्म कथा है और 'कामायनी' महाकाव्य है। ये विधाएँ इनकी साहित्यिकता की परिधि का निर्धारण करती हैं। कुछ बातों को आत्मकथा में शामिल नहीं किया जा सकता। अतः वह इन बातों को छोड़ देता है। यदि वही लेखक उसी कथ्य पर उपन्यास लिखता तो उसमें शामिल कर सकता था। हम तरह का अध्ययन साहित्य में होता आया है। इस बात की जांच भी चलती है कि विधा विशेष की सीमाएं कृति की सीमा बन जाती है। कई बार लेखक इन सीमाओं को तोड़ते भी हैं। तुलनात्मक साहित्य इन विधागत भेदों की अनदेखी करता है। विधागत सीमाओं के बाद पाठ का अध्ययन इस क्षेत्र में होता है। इसी तरह संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला से सम्बद्ध सीमाओं का अतिक्रमण किया जाता है।

तुलनात्मक अध्ययन को दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि विभिन्न अनुशासनों की अपनी मर्यादा से मुक्त होना होता है। अतः कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य सीमाहीन साहित्य का अध्ययन करता है। कोई सीमा साहित्य को विशिष्ट तो बनाती है, परन्तु तब वह तुलनात्मक साहित्य के भीतर नहीं आता। इन सीमाओं के अतिक्रमण के बाद साहित्य में जो पैटर्न बनता है उनका अध्ययन तुलनात्मक साहित्य की सीमा में आता है।

1.4. तुलनात्मक साहित्य- स्कूल

तुलनात्मक साहित्य में प्रभाव का अभिग्रहण, सादृश्य विषयवस्तुपरकता, जैविकता, इतिहास लेखन तथा अनुवाद की स्थिति आदि पर विभिन्न कोणों से विचार किया जाता रहा है। इन्हीं सरोकारों के आधार पर विभिन्न 'स्कूलों' (सम्प्रदायों) का वर्गीकरण किया जा सकता है। 19वीं शताब्दी के अन्त तक जर्मन स्कूल की मुख्य चिन्ता थी 'Zeitgeist' तथा जातीय एवं नृतत्वीय मूलों की खोज अर्थात् साहित्यिक कृतियों के बीच तुलना कर समय इन तत्वों की तुलना पर विशेष बल दिया जाता रहा है।

फ्रेंच स्कूल का मुख्य सरोकार प्रत्यक्षवाद को केन्द्र में रखकर प्रभाव या अभिग्रहण की खोज के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना। 'इंग्लिश स्कूल' की विशेषता थी कृतियों का स्थान निर्धारण (Placing)। इस क्रम में दोनों ही कृतियां एक दूसरे को प्रकाशित प्रशंसित करती थी। अमेरिकी स्कूल ने फ्रेंच स्कूल के वर्चस्व के विरूद्ध प्रभाव परक अभिग्रहण (receptions) पर आधारित तुलनात्मक साहित्य के फ्रेंच विचार के बदले एक अन्तर अनुशासनात्मक

दृष्टिकोण के आधार पर हेनरी रीमक तथा रेनेवेलेक ने कहा कि तुलनात्मक साहित्य किसी एक देश की सीमा से आबद्ध नहीं हो सकता।

अमेरिकी स्कूल ने फ्रेंच स्कूल से इस अर्थ में अपने को अलग किया कि जहां फ्रेंच स्कूल परिणाम या उत्पाद पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है वहीं अमेरिकी स्कूल उत्पाद की प्रक्रिया (process of product) पर बल देता है। असल में अमेरिकी स्कूल की शुरूआत चार्ल्स मिल्स गैलेई ने 1890 के दशक में वर्कल में तुलनात्मक साहित्य की स्थापना करके ही कर दी थी। जिसे रेनेवेलक आदि ने सुव्यवस्थित रूप दिया। पाश्चात्य स्कूलों का मुख्य प्रतिपाध अंग्रेजी साहित्य में था चाहे वह फ्रेंच, इटली, इंग्लिश या कोई भी देश हो।

अफ्रीकी, नाइजीरियाई आदि देशों के तुलनात्मक अध्येताओं ने इस वर्चस्व को तोड़ा। भारतीय साहित्य बिना किसी पद्धति के हमेशा से तुलनात्मक साहित्य रहा है। इसकी बहुभाषिकता एवं बहु सांस्कृतिकता ने तुलना का अवसर हमेशा से ही दिया है। भारतीय तुलनात्मक साहित्य के अध्येताओं में शिशिर कुमार दास, अमिय देव, स्वप्न मजूमदार जैसे विचारकों ने भारतीय संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन से सूत्र दिए। यहां फिर मैथ्यू अर्नाल्ड के मत को उद्धृत करना उपयोगी होगा। उन्होंने कहा कि जब भी हम अध्ययन करते हैं तो हमें घटनाएं, चीजें और साहित्य में सम्बन्ध दिखाई देता है। कोई भी अलग-अलग नहीं होता। यह सम्बन्ध तुलनात्मक अध्ययन के मूल में है।

जब हम शेक्सपीयर को पढ़ते है तो उसके लेटिन फ्रेंच, स्पेनिश और इटली के संबंधों को जान पाते हैं। सारे यूरोप में एक साथ स्वच्छंदतावाद फैला और बढ़ा। अंग्रेजी उपन्यास रूसी उपन्यासों से प्रभावित हुए। यदि हम हिंदी के उदाहरण से समझना चाहें तो इसे इस रूप में समझ सकते हैं, उदाहरण के लिए हम प्रेमचन्द को पढ़ना - समझना चाहते हैं, तो हमें टॉलस्टाय में उनके कुछ बीज दिखाई देते हैं। उनका संबंध गांधीजी से जुड़ता है, स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ता है। गांधीजी का संबंध टॉलस्टाय से जुड़ता है तो बीच में रूसी समाज आ जाता है। फिर रूसी क्रांति हो जाती है। प्रेमचंद का रिश्ता है। से संवाद है।

अतः प्रेमचन्द को पूरी तरह से समझने के लिए उन्हें इन संबंधों के बीच समझना होगा। प्रेमचन्द ने कहां, प्रभाव ग्रहण किया यह जानना होगा और यह कार्य तुलनात्मक साहित्य से ही संभव है। सिर्फ प्रेमचन्द ही नहीं, चाहे तो तुलसीदास का उदाहरण लिया जा सकता है। तुलसीदास की रचना 'रामचरित मानस' को समझने के लिए वाल्मीकि, भवभूति, जैसे संस्कृत कवियों को जानना होगा। भारत की दार्शनिक चिंतन परंपरा का उन पर प्रभाव है । शंकराचार्य, रामानुज रामानन्द और पूरी अद्वैतवादी परंपरा को समझना होगा । इस क्रम में दक्षिण की आलवार, जायसी और भक्ति परंपरा को समझना होगा। अन्य समकालीन कवियों को जानना होगा । कृष्ण भक्त कवियों के बारे में भी अपनी राय स्पष्ट करनी होगी । तब हम तुलसीदास को समझ पाएंगे । इस सबसे तुलनात्मक साहित्य की समझ विकसित करनी होगी । सिर्फ एक राष्ट्र के एक भाषा-भाषी साहित्य को पढ़कर हम किसी लेखक को ठीक से नहीं समझ पाएंगे।

1.5. राष्ट्रीय अस्मिता और तुलनात्मक साहित्य

यूरोप में तुलनात्मक साहित्य का प्रारम्भ हुआ था, उसी समय सम्पूर्ण यूरोप में राष्ट्रवाद का बोल बाला था। राजनैतिक रूप से इस राष्ट्रवाद ने सभी यूरोपीय देशों को एक दूसरे के खिलाफ युद्ध में धकेल दिया था। उन्नीसवीं सदी ने फ्रांस, इंग्लैण्ड, पुर्तगाल, स्पेन आदि राष्ट्र एक दूसरे के खिलाफ दुनिया भर में लड़ रहे थे। अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए किए जाने वाले युद्ध के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की यह भावना फैली और क्यों? विद्वानों का मानना है कि

तुलनात्मक साहित्य की उत्पत्ति राष्ट्रीय साहित्य के विरूद्ध हुई। 'राष्ट्रीय' शब्द पक्षधरता का समर्थक है जबकि 'तुलनात्मक' में इन राष्ट्रीय सीमाओं से अतिक्रमण का भाव अन्तनिर्हित है। जिसमें राष्ट्रों के बीच एकता और सद्भाव को विकसित करने की अन्तर्निहित आकांक्षा शामिल है। जिस समय यूरोप की राजनीति में युद्ध और हिंसा का बोल बोला था, अपने-अपने राष्ट्र की श्रेष्ठता और भिन्नता का लोग दावा कर रहे थे।

प्रस्तावित किया गया कि तथाकथित शुभ देश के किसी महान लेखक ने हमारे सर्वश्रेष्ठ लेखक को प्रभावित किया है या हमारे किसी लेखक ने उनके लेखकों को कुछ साहित्यिक-वैचारिक भेंट दी है और इस कार्य के लिए तुलनात्मक साहित्य के लेखकों ने मध्यकालीन साहित्य को अपने अध्ययन का विषय बनाया। जब यूरोप की राजनीतिक सीमा निश्चित नहीं थी। लोग आसानी से एक- दूसरे राष्ट्र की सीमाओं में आ जा सक थे। अर्थात् जब 'राष्ट्र' निर्मित ही नहीं हुआ था। यह सब आरंभिक तुलनात्मक साहित्य के अध्येताओं ने किया। आगे चलकर उनमें विवाद भी हुआ और यह तर्क दिया जाने लगा कि तुलनात्मक साहित्य में दो राष्ट्रों के साहित्य की तुलना होती है, अतः तुलनात्मक साहित्य में आधुनिक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। आधुनिक काल में 'राष्ट्र' निर्मित हो चुके हैं।

1.6. उपनिवेशवाद और तुलनात्मक साहित्य

अगर तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन आगे बढ़ा तब उपनिवेशों का साहित्य से भी यूरोपीय साहित्य की तुलना करने का प्रश्न उठा। ऐसे में यूरोपीय मनीषा में राष्ट्रवाद की भावना ने पुनः अपना रूप दिखाया। तुलनात्मक साहित्य के यूरोपीय विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया कि तुलना सिर्फ समान स्तर के साहित्य में ही संभव होती है। अतः उपनिवेशों के साहित्य से यूरोपीय साहित्य की तुलना नहीं हो सकती। सिर्फ यूरोपीय साहित्य की ही सार्वदेशिक और सार्वकालिक स्वीकृति हो सकती है। उपनिवेशों का साहित्य उस स्तर तक कभी नहीं पहुंच पाएगा।

1835 में जब लार्ड मैकाले ने कहा कि प्राच्य देशों का साहित्य, चाहे वह भारत हो या अरब का संपूर्ण साहित्य यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी में समाहित हो सकता है। मैकाले की इस नस्लवादी, साम्राज्यवादी घोषणा में तुलनात्मक साहित्य के विद्वानों की मान्यता शामिल थी। उमर खैय्याम की रूसवाइयों को अनुवाद करने वाले यूरोपीय विद्वान फिट्जराल्ड की भी यही मान्यता थी। जिसके मूल में यह विश्वास था कि यूरोपीय मनीषा श्रेष्ठ है, यूरोपीय साहित्य श्रेष्ठ हैं, जबकि एशिया और अफ्रीका के लोग अभी 'आदिम' और 'बर्बर' हैं। उन्हें अभी यूरोप से सभ्यता सीखनी है।

तुलनात्मक साहित्य ने इस समय यह तर्क विकसित किया कि तुलनात्मक अध्ययन पाठ का हो सकता है। मौखिक साहित्य या मौखिक संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि मौखिक साहित्य से लिखित पाठ श्रेष्ठ होता। इसीलिए मौखिक महाकाव्यों को महाकाव्य नहीं माना जा सकता। पिछड़े समाजों में साहित्य का अधिकांश हिस्सा मौखिक होता है। वह तो गिनती में ही नहीं आता। इसलिए होमर, ग्रीक साहित्य, शेक्सपीयर के नाटक, स्पेंसर तथा मिल्टन की कविता महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पाठ है।

तुलनात्मक साहित्य की यह साम्राज्यवादी समझ सिर्फ मैकाले की ही नहीं है, 1987 में सी. एल. रेन. (C.L. Wrenn) ने आधुनिकी मानविकी अनुसंधान संघ के अध्यक्षीय भाषण में तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा पर विचार करते हुए कहा 'कुछ भाषाएं बहुत संकुचित ढंग से सोचती हैं, जैसे अफ्रीकी भाषाएं - यहां तक कि संस्कृति का भी बहुत सीमित महत्व है। अंततः यूरोपीय साहित्य का ही तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है।' साम्राज्यवादियों का जब एशिया और अफ्रीका में आगमन हुआ तो उनके साथ उनका साहित्य भी आया। भले ही वह घोषित करके आया कि यूरोपीय ही श्रेष्ठ है परन्तु उपनिवेशों में भी एक नए ढंग का राष्ट्रवाद पैदा हुआ।

राष्ट्रवाद ने तुलनात्मक साहित्य नई दृष्टि दी। इस प्रक्रिया में हमारे सामने दो नए तर्क हैं वे-

(1) जैसा यूरोपीय लोगों का साहित्य है, हमारा साहित्य भी वैसा ही है और कई अर्थों में यह यूरोपीय साहित्य से श्रेष्ठ है। इस तर्क के लिए रामायण, महाभारत, वेद पुराण, कालिदास की कृतियां आदि सर्वश्रेष्ठ क्लासिक साहित्य का नया पाठ सामने आया। इस अध्ययन के मूल में उपनिवेशों का नया राष्ट्रवाद सामने आया।

(2) यह मान लिया गया कि यूरोप श्रेष्ठ है। और हम अपने आपको उनके जैसा बनाने का प्रयास करते हैं। यूरोपीय साहित्य तो मानक है और कभी-कभी हम भी उस मानको को छू सकते हैं। उदाहरण के लिए शेक्सपीयर तो सर्वकालिक सर्वश्रेष्ठ रचनाकार है। इसमें तो कोई विवाद ही नहीं। परन्तु हमारे कालिदास भी हमारे लिए तो शेक्सपीयर ही हैं। यूरोपीय भी मान लेते थे कि कालिदास पूरब के शेक्सपीयर रहे हैं। अब जितना छोटा और अविकसित पूर्व है उतना ही तो उनका शेक्सपीयर भी होगा। सो यह तुलनात्मक अध्ययन है।

भारत में शेक्सपीयर के अभिग्रहण (reception) पर चर्चा करते हैं। जब शेक्सपीयर का भारत में अभिग्रहण हुआ तो उसे अंग्रेजी आदर्शों और मूल्यों के प्रतिरूप के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह कहा गया कि वह सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी प्रतिभा की सर्वश्रेष्ठ देन है। अब जो भी श्रेष्ठ माना जाता है या प्रचारित किया जाता है उसे शेक्सपीयर से तुलना करके अपनी स्थिति को नाप लेना चाहिए। ऐसा इसलिए है, क्योंकि शेक्सपीयर तो एक मानक है। अब शेक्सपीयर से यदि कालिदास की तुलना की जाएगी तो यही स्वाभाविक निष्कर्ष निकलेगा कि कालिदास पूर्व का शेक्सपीयर है। जितना अविकसित और असभ्य पूर्व है, उनका वैसा ही शेक्सपीयर होगा। अब इसका निहितार्थ यह भी है कि शेक्सपीयर से सीखो यदि सीख सको तो।

(3) पंडित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि भारत में दो तरह के अंग्रेज आए। एक शेक्सपीयर और मिल्टन का इंग्लैण्ड है जहां स्वाधीनता के लिए संघर्ष है अत्याचारी राजाओं का विरोध है, राजनीतिक क्रांति विज्ञान और तकनीकी का इंग्लैण्ड है और दूसरा अत्याचारी कानूनों से लदा हुआ प्रतिक्रियावादी साम्राज्यचादी इंग्लैण्ड है। दोनों ही इंग्लैण्ड के राष्ट्रीय चरित्र के दो हिस्से हैं हमें अपने रिश्तों को तदनुरूप देखना चाहिए। इस तरह जब उपनिवेशों में तुलनात्मक साहित्य आया, जब उसके अध्ययन के आधार बदल गए।

1.7. अन्य का अध्ययन

तुलनात्मक साहित्य का प्रस्थान बिन्दु अपनी भाषा का साहित्य होता है। व्यवहार में तुलनात्मक साहित्य दो समान भाषाओं के साहित्य का समान अध्ययन नहीं होता। इसमें एक भाषा प्रमुख होती है, दूसरी भाषा गौण होती है। एक भाषा 'देनदार' होती है, दूसरी भाषा प्रभा की लेनदार होती है। इस तरह इसमें वरिष्ठता का एक क्रम बन जाता है। विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि जिसे 'विश्वसाहित्य' कहा जाता है, वह भी एक 'विश्वसाहित्य' नहीं होता। हर भाषा का अपना विश्वसाहित्य होता है। उस भाषा का दृष्टिकोण प्रमुख बन जाता है। दरअसल होता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा साहित्य या संस्कृति की दृष्टि से दूसरी भाषा, साहित्य और संस्कृति को समझना चाहता है।

तुलनात्मक साहित्य में एक मापदण्ड का निर्माण होता है। जिसमें प्रथम श्रेणी के लेखकों की तुलना सामान्य लेखकों से की जाती है, महान कृतियों की तुलना सामान्य रचनाओं से, सशक्त संस्कृति की तुलना कमजोर संस्कृति से और बहुसंख्यक भाषा की तुलना अल्पसंख्यक भाषा से की जाती है ताकि विश्वस्तरीय वरिष्ठता का क्रम बनाया जा सके

और अंततः उस भाषा की श्रेष्ठता सिद्ध की जा सके जिसे अध्येता सिद्ध करना चाहता है। अपने से भिन्न संस्कृति और सभ्यता को समझने का प्राथमिक प्रयास यूरोपीय यात्रियों ने किया।

अतः यह कह सकते हैं यात्रा-साहित्य में तुलनात्मक संस्कृति के अध्ययन के बीज छिपे हुए हैं। वास्कोडिगामा भारत आया, कोलम्बस अमेरिका पहुंचा। कुछ यात्री अफ्रीका गए। स्वयं यूरोप में एक देश के यात्री दूसरे देश में, दूसरे भाषा भाषी क्षेत्रों में गए। उन्होंने अपने वृतांत लिखे, डायरिया लिखी, पत्र लिखे जिनमें अपने से भिन्न संस्कृतियों को समझने का प्रयास मिलता है। चूंकि ये यात्री साम्राज्यवाद के अग्रदूत के रूप में इन देशों में गए थे। इसलिए इनके लेखन में 'वैज्ञानिक जिज्ञासा' के स्थान पर सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के स्वर सुनाई पड़ते हैं।

नए देश की नई भूमि के अधिग्रहण में बलात्कार की कल्पना की गई। जिस जमीन पर अब तक खेती न की गई हो उसे अक्षंत भूमि (Virgin land) के रूप से कल्पित किया गया। अमेरिका में वर्जीनिया नाम इसी कारण पड़ा। इन यात्रियों ने वहीं की स्त्रियों के आभूषणों और वस्त्रों की रस लेकर चर्चाएं की। एक अंग्रेज यात्री जे. बी. स्कॉट आस्ट्रिया गया। वहां उसने नोट किया कि यहां के लोग फ्रांस से घृणा करते हैं। जो कि अच्छा है क्योंकि अंग्रेजी की दृष्टि से फ्रांस यूरोप का शैतान है। तात्पर्य है कि यात्रा वृतांत में लेखक का अपना दृष्टिकोण हावी रहता है और वह जिसका वर्णन करता है उससे अपने आपको श्रेष्ठ समझता है, अपनी मूल अवस्था से अन्य संस्कृति का मूल्यांकन करते हुए उसे हीन सिद्ध करता है। इन यात्रियों के साथ कुछ नक्शा नवीस भी यात्रा के लिए निकले।

उन्होंने संसार के प्रारंभिक नक्शे बनाए। सूसन बेसनैट (Susan basenett) का मत है कि नक्शा नवीस, अनुवादक और वृतांत के लेखक पाठ का निर्माण करने वाले निर्दोष लोग नहीं होते। वे जिस पाठ को निर्मित करते हैं, उसके द्वारा ये परिस्थितियों और हमारे दृष्टिकोण को एक विशेष दिशा देना चाहते हैं, ताकि हम उसी दृष्टि से उस संस्कृति को देख सकें। ये अपने विवरण- विश्लेषण में एक जैसे संदर्भ का निर्माण करते हैं ताकि हम उसी तरह से 'अन्य' को देख सकें। इनका यह कार्य वस्तुगत नहीं होता। हालांकि हम अपेक्षा करते हैं कि वे तटस्थ और वस्तुगत चित्र प्रस्तुत करें। इससे तुलनात्मक साहित्य की मानसिकता और सूत्र अभिव्यक्त होते हैं।

1.8. महत्वपूर्ण आयामों का रेखांकन

(1) तुलनात्मक साहित्य, साहित्य का ऐसा आलोचनात्मक अध्ययन है जो दो या दो से अधिक भाषिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय समूहों के साहित्य का अध्ययन करता है। आमतौर पर एक भाषा-भाषी दो लेखकों की रचनाओं का अध्ययन तुलनात्मक साहित्य की श्रेणी में नहीं आता। देव और बिहारी पर लिखी गई तुलनात्मक आलोचना को हम तुलनात्मक साहित्य की श्रेणी में नहीं रख सकते। प्रेमचन्द और प्रसाद, सूर और तुलसी का ऐसा अध्ययन तुलनात्मक साहित्य के भीतर नहीं आता। इसमें सिर्फ एक अपवाद है। यदि कोई भाषा एक से अधिक देशों में लिखी-पढ़ी जाती है तब उन दोनों देशों में एक ही भाषा में रचित साहित्य का अध्ययन तुलनात्मक साहित्य के भीतर आ सकता है। केनॉडा और आस्ट्रेलिया के अंग्रेजी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है।

(2) यूरोप में प्रत्येक राष्ट्र की एक ही भाषा है, परन्तु भारत में अनेक भाषाएं है अतः एक ही देश (भारत) की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का भी तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। हिंदी और बांग्ला का तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है तथा भारत के बांग्ला साहित्य और हिंदी साहित्य का भी तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है। साथ ही लोक साहित्य का कोई भी अध्ययन तुलनात्मक साहित्य की श्रेणी में नहीं आ सकता।

(3) यह अध्ययन अन्तर्विद्यावर्ती होता है । अतः तुलनात्मक साहित्य के अध्येता अनुवाद अध्ययन, समाजशास्त्र, सांस्कृतिक अध्ययन समाज शास्त्र, सांस्कृतिक अध्ययन इतिहास आदि ज्ञान की अन्य शाखाओं का भी जानकार होना होता है। यह अध्ययन शुद्ध साहित्य शास्त्रीय, काव्य शास्त्रीय अध्ययन नहीं होता।

(4) सो तुलनात्मक साहित्य का अध्येता साहित्य का अध्ययन करते समय संकुचित राष्ट्रीय सीमाओं के माध्यमों का अतिक्रमण करता है। मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, पुरातत्व इतिहास आदि सभी विषयों का अतिक्रमण करता है। इस सबसे वह सीमाहीन साहित्य का अध्ययन होता है। अध्येता जितना जानता है उतना उसे और भी जानना होता है।

(5) तुलनात्मक साहित्य में प्रभाव का विश्लेषण होता है। किसी लेखक पर किस लेखक विशेष का प्रभाव पड़ा किस संस्कृति से वह प्रभावित हुआ, इसका अध्ययन किया जाता है। कई बार हम राजनीतिक रूप से विरोधी देश के लेखक से प्रभावित हो जाते हैं। विचारों की इस सीमाहीन यात्रा का अध्ययन तुलनात्मक साहित्य के द्वारा संभव है।

(6) हेनरी एच. एच. रेमाक के अनुसार 'तुलनात्मक साहित्य' एक राष्ट्र के साहित्य की परिधि से परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन है। वह अध्ययन कला, इतिहास, समाज विज्ञान, विज्ञान धर्मशास्त्र आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का भी अध्ययन है।

1.9. रैनेवेलेक की मान्यताएं

रैनेवेलेक ने 'तुलनात्मक साहित्य' की अवधारणा के कई बिन्दुओं की आलोचना की है, विशेष रूप से एक दूसरे साहित्य को प्रभावित करने की मनोवृत्ति की आलोचना की है । उन्होंने सामान्य साहित्य की आलोचना के तुलनात्मक साहित्य की तुलना करके कुछ निष्कर्ष निकाले हैं। तुलनात्मक अध्ययन का एक क्षेत्र भाषा विज्ञान का भी है। विशेष रूप से ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का आधार तुलनात्मक अध्ययन नहीं हैं। ब्लूमफील्ड का मत है कि – "तुलनात्मक पद्धति, प्राग्- ऐतिहासिक भाषाओं के पुनर्नृजन की केवल एक मात्र पद्धति पूर्णतया एक रूप भाषण समुदायों और अचानक सुस्पष्ट विवरण के स्थलों पर यथार्थता से काम करती है। चूंकि ये पूर्व मान्यताएं कभी भी पूरी नहीं होती हैं, तुलनात्मक पद्धति कभी भी यह दावा नहीं कर सकती कि वह पूर्व ऐतिहासिक प्रक्रिया को चित्रित कर रही है। जहाँ पुनर्मृजन कार्य सरलता से चल निकलता है जैसे 'धिता' के लिए प्रयुक्त भारत यूरोपीय शब्द में अथवा कम विस्तृत पर्यवेक्षणों से (जैसे आदिम रोमांस अथवा आदिम जर्मनीय के पुनर्रचना में) पूर्वज भाषा में विद्यमान भाषण रूपों के संघटनात्मक लक्षणों के संबंध में निश्चित रहते हैं। जहाँ कहीं, चाहे काल को लेकर, चाहे स्थान को लेकर, विस्तृत पैमाने पर तुलना होती है, यह ऐसे अनेकानेक रूप और आंशिक समानताओं को प्रकट करती है जो वंशवृक्ष आरेख से संगत नहीं है तुलनात्मक पद्धति केवल इस पूर्व कल्पना पर काम कर सकती है कि पूर्वज भाषा का एक रूप है। तुलनात्मक पद्धति यह पहले से मानकर चलती है कि उत्तरोत्तर शाखाओं से सुस्पष्ट विवरण हुआ है किंतु असंगत आंशिक समानताएँ यह दिखलाती हैं कि परवर्ती परिवर्तन पूर्ववर्ती परिवर्तनों द्वारा छोड़ समभाषांश रेखाओं से आगे भी फैले हैं। पड़ोसी भाषाओं में सादृश्य मध्यवर्ती बोलियों (तरंग सिद्धांत) के विलोपन से उत्पन्न हुआ है और किसी विशिष्ट दृष्टि से विभेदीकृत भाषा एक से परिवर्तन कर सकती है ।" मुझे संदेह है कि तुलनात्मक और सामान्य को अलगाने में जो यत्न Van Tieghem ने किया है वह सफल हो सकता है।

तुलनात्मक साहित्य दो साहित्यों के आपसी संबंधों के अध्ययन क सीमित है, जबकि सामान्य साहित्य का संबंध उन आंदोलनों और फैशनों से है जो अनेक साहित्यों में बहते हैं । निश्चित ही यह अंतर अयुक्तियुक्त और अव्यावहारिक है तुलनात्मक साहित्य को साहित्यों के विदेशी व्यवसाय के अध्ययन तक सीमित करने का यत्न निश्चित

रूप में एक दुर्भाग्य है। विषय-वस्तु में तुलनात्मक साहित्य असंबद्ध टुकड़ों का अव्यवस्थित समूह बन जायेगा। संबंधों का एक जाल जिन्हें सार्थक समग्रताओं को झकझोरा और तोड़ा गया है। इस सीमित अर्थ ने तुलनात्मक बनाम तुलनात्मक स्रोतों और प्रभावों, कारणों और परिणामों का मात्र अध्ययन कर सकता है और इसे एक कलाकृति की समग्र जांच-पड़ताल से रोका जा सकता है।

तुलनात्मक साहित्य अंततः द्वितीय श्रेणी के लेखकों के अध्ययन तक अपने को सीमित रख सकता है। तुलनात्मक और सामान्य साहित्य में बनावटी जंगलों को खड़ा करने का यत्न इसलिए असफल होगा साहित्यिक इतिहास और साहित्यिक पांडित्य का एक विषय है : साहित्य। दो साहित्यों के विदेशी व्यवसाय के अध्ययन में तुलनात्मक साहित्य को बंद करना, इसे बाह्यों, दूसरी श्रेणी के लेखको, अनुवादों, यात्रा-पुस्तकों, मध्यस्थों से संबंध तक सीमित कर देगा। संक्षेप में यह 'तुलनात्मक साहित्य' को केवल एक छोटे अनुशासन बना देगा, जो विदेशी स्रोतों और लेखकों की ख्यातियों के बारे में सामग्री की पड़ताल करेगा।

अनुवाद और तुलनात्मक साहित्य दरअसल रैनेवेलेक सामान्य साहित्य के अध्ययन और तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को स्पष्ट करना चाहते हैं और यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि तुलनात्मक साहित्य सामान्य साहित्य के अध्ययन में कितना उपयोगी या सहयोगी है। तुलनात्मक साहित्य के इस बात पर बहुत जोर दिया जाता है कि फ्रांसीसियों की जर्मनी या इंग्लैण्ड के बारे में क्या धारणा रही है। लेकिन इससे साहित्य को समझने में हमें कोई मदद नहीं मिलती। यह सामाजिक या लोकमत का अध्ययन हैं इसलिए रैनेवेलेक स्रोतों और प्रभावों के अध्ययन को साहित्य का आंतरिक अध्ययन नहीं मानते, उसे बाध्य तथ्यात्मक अध्ययन मानते हैं। इनसे रचना की रचनात्मकता का विश्लेषण नहीं हो पाता ।

कला-कृतियां स्रोतों और प्रभावों का जोड़ नहीं होती: वे पूर्ण होती है जिनमें कच्ची सामग्री, जो कहीं से ली गई हो सकती हैं, निर्जीव नहीं रहती और नयी संरचना में ढल जाती है। सरसरी व्याख्या कहीं नहीं ले जाती और साहित्य में यह कार्यकारण सम्बन्ध को स्थापित करने में सफल नहीं होती: "क घट गया है और ख का घटना भी आवश्यक है?" मैं ऐसे किसी साहित्यिक इतिहास को नहीं जानता जिसने इस तरह के सम्बन्ध का सबूत दिया हो या वह ऐसा कर सकता था।

इस तरह के अलगाव का कारण कला-कृतियों में नहीं होता जो पूर्ण होती है, जिनकी धारणा मुक्त कल्पना में होती है, जिनकी समग्रता और अर्थवत्ता को ठेस लगती है, यदि इन्हें स्रोतों और प्रभावों में तोड़ दिया जाता है। आगे रैनेवेलेक प्रश्न उठाते हैं कि हमारे लिए क्या महत्वपूर्ण है। वाद्लेयर के संदेहवाद के विस्तार को जानी जाये, नीत्शे की अतिमानव में आस्था का, ताल्स्ताय के रहस्यवाद का पता लगाया जाये : वह जाना जाये कि देश में किसी पुस्तक को क्लासिक क्यों माना जाता है और दूसरे देश में इसे अकादमिक कहकर क्यों नकारा जाता है, एक में किसी कृति से क्यों घृणा की जाती है और दूसरे में इसकी सराहना क्यों की जाती है।

तुलनात्मक साहित्य की उत्पत्ति के कारणों पर विचार करते हुए उन्होंने कहा कि तुलनात्मक साहित्य की उत्पत्ति संकुचित राष्ट्रवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। लेकिन आगे चलकर इसमें भी राष्ट्रवादी आग्रह प्रबल हो लगे। प्रत्येक देश के विचारक तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा यही साबित करने लगे कि उन्होंने संसार को अधिक दिया है। वह दुनिया का देनदार देश है, जबकि अन्य देश लेनदार है। या उनके देश ने संसार की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा को आत्मसात किया है। तुलनात्मक साहित्य का उदय उन्नीसवीं सदी के पाण्डित्य के संकुचित राष्ट्रवाद के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में हुआ।

यह फ्रांस, जर्मन, अंग्रेजी आदि के अनेक इतिहासकारों के अलगाववाद के प्रति विद्रोह था। इसे प्रायः उन लोगों ने पोषित किया जो राष्ट्रों के चौराहों पर खड़े थे या कम-से-कम एकदेश की सीमा पर थे। Louis Betz का जन्म जर्मन माँ-बाप द्वारा न्यूयार्क में हुआ और उसे ज्यूरिच पढ़ने और पढ़ाने के लिए भेजा गया। Baldensperger का उद्भव Lothringian है, इन्होंने महत्व का एक साल ज्यूरिच में बिताया।

Ernst Robert Curtius अलसेशियन थे जिनका यह विश्वास था जर्मन और फ्रांस में एक-दूसरे को बेहतर समझने की आवश्यकता है। Arturo Farinelli तरेनतो से इतालवी थे, फिर irredenta थे जो इन सबक में पढ़ाते थे। राष्ट्रों में मध्यस्थ बनने की यह सही कामना काल और स्थिति उग्र राष्ट्रवाद से प्रायः विकृत होती रही। baldensperger की आत्मकथा पढ़कर (1940, जिसे वास्तव में 1935 में लिखा गया) हम अनुभव करते हैं कि हर क्रिया के मूल में देशभक्ति का भाव था: हारवर्ड में (1914) जर्मन प्रचार को उलटने से इनका गर्व, कोपेनेहेगेम में Brandes को मिलने से इनकार (1915) और स्वतन्त्र Strusbourg में इनका जाना (1920)। Carre की पुस्तक इंग्लैण्ड में गेटे की भूमिका में यह दलील दी गयी है कि गेटे सारे संसार के हैं और विशेष रूप से फ्रांस के राइनलैंड के पूत के रूप में।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद Carre ने Les Ecrivains francais et le mirage allemande (1947) में यह दिखाने की कोशिश की कि फ्रांस दो जर्मनियों के बारे में किए गए वहमों को पालता रहा है और अन्त में वह हमेशा धोखा खाता रहा है। Ernst Robert Cutirus अपनी पुस्तक Die literarischen Wegbereiter des neuer Frankreichs (1918) में सोचते थे कि यह एक राजनीतिक क्रिया है, जर्मनी का पढ़ाने का पाठ है। इसके नये संस्करण के पुनश्च में, जिसे 1952 में लिखा गया, Curtius ने घोषत किया कि फ्रांस के बारे में इनकी पहली धारणा एक वहम थी। रोम्यो रोला नये फ्रांस की आवाज नहीं थे जैसा कि इन्होंने सोचा था। Carre की तरह Curtius ने मृगतृष्णा को पाया और यह फ्रांसीसी मृगतृष्णा थी। आप पहले की किताब में भी एक अच्छे यूरोपियन को अपने शब्दों में परिभाषित किया है। एक सांस्कृतिक शक्ति-राजनीति की सिफारिश की है अपने देश की शक्ति की ही हर एक सेवा करता है।

यह बुनियादी देशभक्त की नीयत अनेक तुलनात्मक साहित्य के अध्ययनों में पायी जाती है जिन्हें फ्रांस, जर्मनी और इटली में किया गया है। यह सांस्कृतिक बहीखाते की विचित्र व्यवस्था की ओर ले जाता है, अपने देश के जमाखाते को बढ़ाने की कामना, जिसे यह सिद्ध करके पूरा किया जाता है कि इसके देश ने दूसरे देशों पर यथा संभव प्रभाव डाले हैं या अधिक सूक्ष्म रूप से वह साबित करना चाहता है कि इसके देश ने विदेशी साहित्यकार को किसी अन्य देश से अधिक आत्मसात किया और समझा है। M. Guyard ने अपनी छात्रापयोगी छोटी पुस्तक में लगभग भोलेपन से यह दिखाया है: इसमें स्पेन के Ronsard, इटली के Corneille, हालैंड Pascal आदि पर अलिखित शोध-निबन्ध है जिन्हें साफ सुथरे खाली बक्सों में रखा गया है।

इस तरह के सांस्कृतिक विस्तारवाद को अमेरिका में भी पाया जा सकता है जो स्वयं कुल मिलाकर इससे इसलिए अछूता रहा है कि इसके पास शेखी बधारने के लिए कुछ नहीं था और दूसरे इसकी सांस्कृतिक राजनीति में रुचि नहीं थी। फिर भी उदाहरण के लिए बढ़िया सहकारी अमेरीका का साहित्यिक इतिहास (सं. आर स्पिल्लर, डब्ल्यू, थार्प, 1948) में फूल कर यह दावा किया गया है कि दोस्तोवस्की पो और हार्थान तक का अनुयायी था। Farinelli कविता के मामले में लेनदार और देनदार के सारे बहीखाते और इस सांस्कृतिक सम्पदा की संगणना की विसंगति की सही टीका टिप्पणी करते हैं। हम यह भूल जाते हैं कविता और कला की नियतियों को आन्तरिक जीवन और आत्मा की रहस्मयी धड़कनों में ही सम्पन्न किया जा सकता है। एक मनोरंजक लेख में Professor Chinard ने अवसर के अनुकूल इस

सिद्धांत की घोषणा की है कि साहित्यों की तुलना में उधार की बात नहीं होती और रेबेलपिस के बढ़िया एक अवतरण को उद्धृत कर यह दिखाया है कि आदर्श संसार लेनदारों और देनदारों के बिना होता है।

इस तरह रैनेवेलेक का निष्कर्ष है कि तुलनात्मक साहित्य के अध्येताओं की दिलचस्पी साहित्य में नहीं होती। वे लोकमत के इतिहास, सैलानियों की रपटों, राष्ट्रीय रुचि कुल मिलाकर सांस्कृतिक इतिहास में होती है। इसलिए वे तुलनात्मक साहित्य को इतना फैला देते हैं कि उसमें 'मानवता का समस्त इतिहास' समाहित हो जाता है। इसलिए रैनेवेलेक का मत है कि साहित्य को राष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्मान के युद्ध में शामिल नहीं करना चाहिए, न उसे विदेशी व्यापार के माल के रूप में पेश करना चाहिए। वह राष्ट्रीय मनोविज्ञान का प्रतीक नहीं है और न एक दलील है। वरन् साहित्य एक सर्जनात्मक कृति हैं और इसे इसी रूप में समझना चाहिए जब कि तुलनात्मक साहित्य में यह नहीं होता।

1.10. तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद अध्ययन

तुलनात्मक साहित्य के साथ अनुवाद का रिश्ता हमेशा से बना रहा है। प्रत्येक व्यक्ति सभी भाषाओं को जाने, यह आवश्यक नहीं होता। अतः तुलना के लिए अनुवाद का सहारा लिया जाता रहा है। प्रारंभ से यह माना जाता रहा है कि 'तुलनात्मक अध्ययन' प्रमुख है। अनुवाद तो एक सहायक अनुशासन है। यह न भी हो, तो भी तुलना हो सकती है। इसलिए अनुवाद एक कमजोर अध्ययन है। इसकी प्रतिष्ठा मूल पाठ से कम है। यह मेहनत का काम है यह प्रतिभा का काम नहीं है। इसलिए इसमें पैसा भी कम मिलता है। मूल पाठ की रचना करना बड़ी बात है। उसमें मौलिकता होती है। अनुवाद में मौलिकता नहीं होती। होनी भी नहीं चाहिए। इसलिए तुलनात्मक साहित्य के प्रारंभिक यदि अनुवाद को इस तरह से समझ जाए तो वह तुलनात्मक साहित्य का सहयोगी मात्र नहीं है। उसके अध्ययन की अपनी सार्थकता है, जो तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन से कई अर्थों में बढ़कर है।

1.11. सारांश

तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद का अन्तरसम्बन्ध बहुत गहरा है। यद्यपि कालक्रम में इसके सम्बन्धों में बदलाव आता रहा है और अनुशासन के रूप में इनकी स्थिति के रूप में परिवर्तन आता रहा है। गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक ने अपनी पुस्तक Death of a discipline (2003) में तथा सूजन बेसनेट ने 1993 में तुलनात्मक अध्ययन की मृत्यु की घोषणा की। स्पीवाक के अध्ययन में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता और प्रासंगिकता की समाप्ति की बात की गई है। वे उत्तर दक्षिणी संस्कृतियों को प्रश्नांकित करने तथा पुनर्परिभाषित करने पर बल देती हैं।

तुलनात्मक साहित्य का पारंपरिक ढांचा पूरी तरह से अस्वीकार्य हो गया है इसलिए वे देरीदा के Politics of Friendship के आह्वान के अर्थ में यह प्रस्ताव करती हैं कि तुलनात्मक साहित्य इस तरह का उदाहरण प्रस्तुत करें कि किस तरह मानवीकी तथा समाज विज्ञान एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। इसी प्रकार वे यह भी प्रस्तावित करती हैं कि हमेशा सीमान्तों से आगे की बात सोचिए (Must always cross the boarder) वैश्विक संस्कृति से परे उपग्रही संस्कृति की वकालत तुलनात्मक साहित्य को करना चाहिए।

वे प्रस्ताव करती है अपने को वैश्विक एजेण्ट के बजाय उपग्रही एजेण्ट समझो (Imagine ourselves as planetary subjects rather than global agents) तथा तुलनात्मक साहित्य का महत्व एक अध्ययन पद्धति (Methodology) के रूप में असंदिग्ध रूप में बना हुआ है। तुलनात्मक साहित्य स्वयं में कोई साहित्य नहीं है। बिना

साहित्य के तुलनात्मक साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। दो भाषाओं में रचे साहित्यों को अनुवाद के माध्यम से ही तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयोग में लाया जा सकेगा। इस इकाई में तुलनात्मक साहित्य के अर्थ, प्रारम्भ एवं विकास तथा विभिन्न स्कूलों के परिचय के साथ-साथ राष्ट्रीयताओं एवं अस्मिताओं संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा और भूमिका पर विचार किया गया है।

1.12. बोध प्रश्न

1. तुलनात्मक साहित्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके आरंभ और विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. तुलनात्मक साहित्य के विभिन्न स्कूलों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. राष्ट्रीयता वैश्विकता एवं अनुवाद के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य पर विचार कीजिए।

4. रेनेवैलेक की तुलनात्मक साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।

5. उपनिवेशवाद और तुलनात्मक साहित्य पर एक निबंध लिखिए।

1.13. सहायक ग्रंथ

1. तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

2. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- चौधरी, इन्द्रनाथ, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा। 1983.

3. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ- संपादक- राजरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजमल, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2013.

4. साहित्य सिद्धांत – रेनेवेलेक आण्ड आस्टिनरेट, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

डॉ. एम.मंजुला

2. तुलनात्मक साहित्य-अध्ययन की प्रविधि-1

2.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम तुलनात्मक साहित्य का परिचय के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं अब इस इकाई में

- तुलनात्मक साहित्य की दुष्टियों के बारे में जानेंगे;
- सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि के बारे में जानेंगे;
- अध्ययन की परंपरा प्रविधि और प्रभाव प्रविधि के बारे में जानेंगे ;
- अध्ययन की स्वीकृति तथा संचारण प्रविधि और सौभाग्य प्रविधि के बारे में जानेंगे;
- संबंधात्मक, द्वंद्वात्मक प्रविधि और आलोचनात्मक प्रविधि के बारे में जानेंगे और
- तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की प्रविधियों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

रूपरेखा

2.1. प्रस्तावना

2.2. तुलनात्मक साहित्य की दृष्टियाँ

2.3. सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि

2.4. अध्ययन की परंपरा प्रविधि

2.5. प्रभाव प्रविधि

2.6. अध्ययन की स्वीकृति तथा संचारण प्रविधि

2.7. अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि

2.8. संबंधात्मक, द्वंद्वात्मक प्रविधि

2.9. तुलनात्मक आलोचना की प्रविधि

2.10. सारांश

2.11. बोध प्रश्न

2.12. सहायक ग्रंथ

2.1. प्रस्तावना

विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को महत्व दिए जाने पर भी आलोचकों का एक बड़ा वर्ग उसकी वैधता के बारे में सशक है क्योंकि उनके अनुसार तुलनात्मक साहित्य अपनी कोई ऐकान्तिक प्रविधि निर्मित नहीं कर सका है। पद्धति-विज्ञान के अभाव में किसी भी विद्यानुशासन को स्वतंत्र रूप में प्रतिष्ठित करना नामुमकिन है मगर जब आलोचक यह सोचते हैं कि आलोचनात्मक पद्धति के स्थान पर अंतर्दृष्टि तथा ज्ञान के प्रसार के लिए एक संदर्भ-स्थल के रूप में तुलनात्मक साहित्य की स्थापना हुई है तब वे एक गलत निष्कर्ष निकालते हैं क्योंकि तुलनात्मक साहित्य का, निस्संदेह, अपना एक पद्धति-विज्ञान है।

इसको स्वीकार करने पर भी आलोचक यह कहते हैं कि विश्लेषण की पद्धति मूलतः वही है जिसका प्रयोग एकक साहित्य या तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के लिए किया जाता है। यह भी कहा जाता रहा है कि सादृश्य अथवा संबंधात्मक अध्ययन या फिर आंदोलन प्रवृत्ति, काव्यरूप, कथ्य या अभिप्राय से संबद्ध अध्ययन से एकक साहित्यानुशासन के विद्वान भी परिचित रहते हैं और उसका प्रयोग भी करते हैं।

फ्रांकॉय जोस्ट ने तो बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि विश्व के पुस्तकालय में एक भी पुस्तक या निबंध 'प्रायोगिक तुलनात्मक साहित्य विज्ञान' का उपलब्ध नहीं है जिसके द्वारा 'सैद्धान्तिक तुलनात्मक साहित्य विज्ञान' के नाना निबंधों एवं पुस्तकों में किए गए दावों को प्रमाणित किया जा सके कि केवल विषयवस्तु ही नहीं, प्रविधि की दृष्टि से भी एकक साहित्यानुशासन एवं तुलनात्मक साहित्य-अध्ययन में महत्त्वपूर्ण अंतर है (1974: भूमिका)। जोस्ट ने अपने वक्तव्य के निष्कर्ष में यह कहा है कि निगमन या आगमन पद्धति का अनुसरण करते हुए अथवा दस्तावेजों के जब य ने अथवा साक्ष्य संबंधों के आधार पर जिस तुलनात्मक साहित्य- अध्ययन का हम प्रसार करते है उसमें तथ्यगत एवं उपकरणगत अथवा कारण एवं तकनीक की दृष्टि से चाहे कितना ही फर्क क्यों न हो, उसकी अपनी कोई विशिष्ट एवं स्वतंत्र तुलनात्मक कार्यपद्धति नहीं होती ।

ओयने ए. आलड्रिच ने कहा है कि सिद्धात रूप में एकक साहित्य-अध्ययन एवं तुलनात्मक साहित्य-अध्ययन में कोई अंतर नहीं सिवाय इसके कि तुलनात्मक साहित्य की विषयवस्तु बहुत विस्तृत होती है क्योंकि एक से अधिक साहित्यों में से इसकी विषयवस्तु का चयन होता है (1969 भूमिका)। विक्टर एम० झिरमुना की के अनुसार इन दोनों साहित्यानु- शासन की कार्यपद्धति को समरूपता तथा एकात्मता अपने आप में विवक्षित है। उन्होंने यह भी कहा है कि एक ही राष्ट्रीय साहित्य की परिधि के भीतर अथवा उसके बाहर दूसरे साहित्यों के आश्रय से तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को साहित्यिक शोध के मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

तुलनात्मक साहित्य को साहित्य के दूसरे अध्ययनों का अनुसरण करते हुए सिद्धांत रूप में प्रत्येक आलोचनात्मक दृष्टि से सबद्ध कार्यपद्धतियों को ग्रहण करना चाहिए। रेमाक ने यह भी कहा है कि बालोचक इस बात के लिए बड़ा ही आग्रही होता है कि प्रत्येक साहित्य-अध्ययन के लिए वह सन्निकट कार्यपद्धति का संकेत दे जैसे उपन्यास के अध्ययन के लिए अनुकूल समाजशास्त्रीय पद्धति को स्वीकार किया जाए परंतु गीतकाव्य के लिए इसके स्थान पर स्वनप्रक्रियात्मक पद्धति को अनुकूलता को जावार माना जाए। साधारण रूप से पद्धतियों के इस प्रकार के वर्गीकरण के लाचार पर स्थूल

मगर सटीक अव्यय संभवपर है मगर साहित्य-अध्ययन में हर प्रकार की संभावना बनी रहती है। उदाहरण के रूप में कालिदास के 'मेघदूत' का समाजशास्त्रीय विवेचन (बंगला में नीरेन्द्र राय ने ऐसा किया है) अथवा जैनेन्द्रकुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' अथवा 'तत्वत्' का स्वन प्रक्रियात्मक अध्ययन संभव है और इसे असंतुलित वेष्टा मानने का कोई कारण भी नहीं है। हां, हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि अध्ययन की विषय-सामग्री को देखते हुए कोई एक पद्धति अधिक विश्वसनीय हो सकती है।

तात्पर्य यह है कि तुलनात्मक साहित्य की न तो कोई स्वतंत्र पद्धति है और न ही उसकी आवश्यकता है। साहित्यिक शोध को संचालित करनेवाले प्रमाणों का संकलन, छानबीन या विश्लेषण के आधारभूत नियम जैसे तुलनात्मक साहित्य के लिए लागू हैं उसी प्रकार दूसरे साहित्य अध्ययनों में भी लागू होते हैं। मगर इसका अर्थ यह नहीं कि तुलनात्मक साहित्य की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता या पद्धति ही नहीं। हालांकि रेनेवेलेक ने कहा है कि तुलनात्मक साहित्य की स्पष्ट विषयवस्तु अथवा निश्चित कार्यपद्धति (प्रविधि) अभी तक स्थापित नहीं हो सकी है। बाल्डेन स्परजर, वां टिगहेम, कारे अथवा गूइयार्द की कार्यक्रमात्मक घोषणाएं इस सारभूत कार्य में असफल रही हैं। इन्होंने तुलनात्मक साहित्य पर जड़ पद्धति-विज्ञान को लाद दिया है और उन्नीसवीं शती के तथ्यवाद (Factualism), विज्ञानवाद (Scientism) और ऐतिहासिक सापेक्षवाद (Historical Relativism) के मृत हाथ को इस पर धर दिया है।

वस्तुतः रेनेवेलेक के अनुसार तुलनात्मक साहित्य साहित्य का ही एक अंग है और साहित्यिक पांडित्य तब तक पद्धति-विज्ञान की दृष्टि से प्रगति नहीं कर पाता है जब तक यह साहित्यिक अध्ययन को एक समूचे विषय के रूप में नहीं लेता और साहित्य मानव की अन्य क्रियाओं और उत्पादनों से भिन्न है एवं इसके अध्ययन का एक ही विषय है, साहित्यिकता की पहचान। मगर तुलनात्मक साहित्य की अपनी समस्याएं हैं जिनके अध्ययन के लिए विशिष्ट योग्यता एवं कार्य-पद्धतियों के विशिष्ट संयोजन की जरूरत होती है और इस प्रकार के अध्ययन के माध्यम से स्वतंत्र कार्य-पद्धति का निर्माण अनायास ही हो जाता है।

कैलिफोनिया विश्वविद्यालय, बर्कले के तुलनात्मक साहित्य की विवरण-पत्रिका में यह कहा गया है कि तुलनात्मक साहित्य का पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को (क) उनकी योग्यता के विकास का अवसर प्रदान करता है जिससे कि वे साहित्य का आलोचनात्मक ढंग से एवं उत्तरदायित्व के साथ अध्ययन कर सके; तथा (ख) किसी एक साहित्य को तो गहराई के साथ एवं दूसरे एक और साहित्य, जो उनके अध्ययन के क्षेत्र से संबद्ध तथा उद्देश्य एवं रुचि के लिए प्रासंगिक है, के अध्ययन का भी अवसर प्रदान करता है।

इस तरह विद्यार्थी साहित्येतिहास तथा परंपरा के बारे में एक ऐसी उदार दृष्टि अर्जित करता है जो एकक साहित्यअध्ययन से संभव नहीं है। यह उदार दृष्टि अंततः एक से अधिक साहित्यों से संबद्ध समस्याओं के क्रमबद्ध अनुसंधान के लिए विद्यार्थी को तैयार करती है। मगर आलोचक यह कहते हैं कि विषय-वस्तु की विस्तृति एवं समस्याओं को विविधता के कारण तुलनात्मक साहित्य का कोई आदर्श पद्धति-विज्ञान अथवा अध्ययन का प्रतिमान नहीं है।

2.2. तुलनात्मक साहित्य की दृष्टियाँ

वस्तुतः दृष्टि एवं पद्धति तथा पद्धति एवं तकनीक के बीच में निकट का संबंध है। संघटनात्मक मूल भाव यह है कि तकनीक ही पद्धति को कार्यरूप प्रदान करती है और यह दृष्टि के समरूप होती है। रेनेवेलेक का कहना है कि तुलनात्मक साहित्य को उसके परिप्रेक्ष्य एवं भाव के द्वारा ही परिभाषित तथा सार्मार्थत किया जा सकता है। तुलनात्मक साहित्य की तीन परस्पर संबंधित दृष्टियां या परिप्रेक्ष्य हैं-

1. फ्रांसिसी-जर्मन स्कूल का अंतर्राष्ट्रीयता के आश्रय से साहित्य का काल क्रमिक अध्ययन जहां साहित्यिक विकासवाद, ऐतिहासिक सापेक्षवाद तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों को तुलनात्मक अध्ययन के महत्त्वपूर्ण घटक माना जाता है।

2. अमरीकी स्कूल की रूपवादी दृष्टि जहां काव्यशास्त्रीय सौंदर्यात्मक, कलापरक तथा विश्लेषणात्मक अंतर्दृष्टि को महत्व दिया जाता है अर्थात जहां सिद्धांत- अभिमुखी काव्यशास्त्र तथा कृति-अभिमुखी साहित्यालोचन के आधार पर तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का प्रसार होता है।

3. रूसी स्कूल की समाजशास्त्रीय संस्कृतिपरक यथार्थवादी दृष्टि जहां अंशतः विभिन्न सामाजिक जीवनों में घटित होनेवाले समस्तरीय ऐतिहासिक परिवर्तनों एवं अंशतः उनके आपसी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अन्योन्य-क्रिया के आश्रय से तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन किया जाता है।

वस्तुतः ये तीनों दृष्टियां एक दूसरे की पूरक हैं तथा सुव्यवस्थित रूप से परस्पर संबद्ध होकर उन दो मूलभूत नियमों की ओर संकेत करती हैं जिनकी सहायता से तुलनात्मक साहित्य की सामग्रिक योजना या कार्य-पद्धति निर्धारित होती है। ये दो मूलभूत नियम हैं:

1. साहित्येतिहास का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद तथा

2. तुलनात्मक आलोचना।

इस प्रकार से इन तीनों परस्पर संबद्ध दृष्टियों से अभिप्रेरित उपर्युक्त दो मूलभूत नियमों के आश्रय से एक सुव्यवस्थिति कार्य-पद्धति की सृष्टि होती है जिससे इस पांच-आयामी अनुशासन को ठीक ढंग से समझना संभव होता है। साहित्येविहान का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भबाद दो साहित्यिक कृतियों अथवा घटनाओं के बीच विद्यमान 'द्विआधारी तथा अन्योन्य' संबंध को संस्थापित करता है। भारतीय संदर्भ में साहित्य के इस द्विआधारी अध्ययन का अर्थ भारत को किन्ही दो आधुनिक भाषाओं के साहित्य का अध्ययन लिया जा सकता है। जहां राष्ट्रीय परिधि को पार करने की आवश्यकता नहीं मगर तुलनात्मक भारतीय साहित्य के संदर्भ में भी राष्ट्रीय परिधि के पार करना अथवा अंत- राष्ट्रीय संदर्भवाद को स्वीकार करना लाजिमी है क्योंकि इसके बिना आधुनिक भारतीय साहित्य के पश्चिमी प्रभाव को सही रूप से आंकना संभव नहीं।

साहित्येतिहास का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भबाद दो कृतियों या साहित्यिक घटनाओं के द्वि-आषारी तथा अन्योन्य संबंध को संस्थापित करता है। दूसरे शब्दों में ऐतिहासिक कालक्रम या काव्यशास्त्रीय कला या सौंदर्यपरक या समाजशास्त्रीय

संस्कृति- परक यथार्थवादी दृष्टि या दृष्टियों की सहायता से एक से अधिक साहित्यों के प्रभाव-सूत्रों, परंपरा तथा सादृश्य संबंधों का (द्विआधारी तथा अन्योन्य संबंघ के अध्ययन के ये तीन आधार हैं) अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद के आश्रय से तुलनात्मक अध्ययन होता है।

एकक साहित्यअध्ययन में भी दूसरे साहित्य के। साथ तुलना का सहारा लिया जाता है मगर वहां एकक साहित्य की किसी विशेषता को उजागर करने के लिए अचेतन या यांत्रिक रूप से इसका प्रयोग किया जाता है मगर तुलनात्मकतावादी आलोचक के लिए तुलना एक सचेतन एवं मूलभूत पद्धति है। साहित्यिक उदाहरणों की अव्यवस्थित विस्तृत सूची को समेटने के लिए जब तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत तुलना का प्रयोग किया जाता है तब अध्ययन से निकलने वाले निष्कर्षों के इस हद तक तनूकृत होने की संभावना रहती है जहां यह अवधारणा अपनी शक्ति काफी खो देतीं है।

अवधारणा को तनुकृत करने की यह प्रवृत्ति अगर एक निश्चित सीमा को पार कर जाए जहां प्रत्येक संभाव्य तुलना 'तुलनात्मक शोध' का अंग मान ली जाती है, तब इस पद्धति की अपनी विवेचक शक्ति भी खत्म हो जाती है। उदाहरण के लिए, आधुनिक बोध को प्रकट करनेवाले प्रत्येक हिंदी, बंगला या मराठी नाटक में विसंगति-बोध को ढूंढ निकालना मानो आधुनिक-बोध एवं विसंगति-बोध को एक दूसरे का पर्याय मान लेना है अथवा हर नई कविता को अस्तित्ववादी विचारधारा के साथ जोड़ना तुलनात्मक पद्धति के साथ अन्याय करना है।

आधुनिक साहित्य के प्रत्येक पक्ष, विधा, कथ्य या प्रवृत्ति में कुछ तुलनीय अंश अवश्य विद्यमान रहते हैं मगर तुलनात्मक पद्धति के लिए यह आवश्यक है कि तुलनात्मक विश्लेषण एवं तुलनात्मक विवरण के अंतर को प्रकट करते हुए अध्ययन का प्रसार करे। प्रत्येक विवरण कहीं-न-कहीं अप्रत्यक्ष रूप से तुलनात्मक होता है मगर किसी एक पद्धति, ढांचे या प्रतिमान के आश्रय से किया गया प्रत्येक विश्लेषण ऐसा नहीं होता। इसीलिए तुलनात्मक साहित्य की समस्याओं को समझते हुए पद्धति के रूप में तुलना के प्रयोग में बहुत ही सावधानी बरतनी पहती है।

2.3. अध्ययन की सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि

अध्ययन की सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि के बारे में जालङ्गिच ने साक्ष्य संबंध को परिभाषित करते हुए कहा है, 'analogy' or 'affinity' as resemblances in style, structure, mood or idea between works which have no other connection, Comparative Literature: Matter and Method (1968, p. 3)अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद के आश्रय से दो कृतियों का साहित्यगत शैली, संर-। चना, मूड या विचार का सादृश्यसंबंधात्मक अध्ययन होता है। इनके अतिरिक्त किसी भी एक पक्ष को लेकर सादृश्यमूलक अध्ययन किया जा सकता है। Comparative analysis as a rule deals with contextual explainations अमिताइ एतजियोनी तथा फेडरिक एल. डूबो, Comparative Perspectives Theories and Methods, (1970, भूमिका, p. 11) यह अध्ययन साम्यमूलक या वैषम्यमूलक हो सकता है मगर इस प्रकार का तुलनात्मक विश्लेषण नियमानुसार प्रासंगिक विवृत्ति पर विचार करता है।

इसका अर्थ यह है कि तुलनीय कृतियां एक दूसरे के प्रभाव से मुक्त होती हैं और उनमें कोई कार्य-कारण संबंध नहीं होता इसीलिए सादृश्य संबंधात्मक अध्ययन में तुलनात्मकतावादी आलोचक 'पॉलीजेनेटिक' पद्धति का सहारा

लेता है जहां उसकी सांश्लेषिक दृष्टि के पीछे कोई तथ्यात्मक औचित्य विधान नहीं होता । हरभजनसिंह के द्वारा 'ओडेसी', 'रामायण', 'सेवासदन' तथा 'त्यागपत्र' में 'सीता सिन्ड्रोम' का विवेचन अथवा इन्द्रनाथ चौधुरी के द्वारा होरी, इन्द्रनाथ, शशि तथा रिउ जैसे चरित्रों के आधार पर 'ड्रॉपआउट्स' का विवेचन इसी प्रकार का अध्ययन कहा जाता है। 'जेम्स जे. वाई. लिउ एलिजाबेथ तथा यॉन' (1955) पुस्तक में एलिजाबेथीय युग के नाटकों के साथ सुदूर-पूर्व के नाटकों का सादृश्यमूलक विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि दोनों में ही 'मायावाद' का विरोध है तथा जीवन का वह यथार्थ भी नहीं जो रंगमंच से 'चौथी दीवार' को हटाकर दिखाया जाता है।

यतम्बल्ल के लिए इस प्रकार के अध्ययन का विशेष महत्त्व है क्योंकि यहां प्रभाव-सूत्रों के विवेचन के स्थान पर समानांतरता के आश्रय से नाटकों में अंतनिहित उसकी संभाव्य शक्ति तथा उस प्रक्रिया को उद्घाटित किया गया है जिसके द्वारा जीवन एक कलारूप में परिवर्तित हो जाता है (1963)। सादृश्यमूलक अध्ययन का एक और रूप है जहां एक जैसी ऐतिहासिक तथा सामाजिक पटभूमिका के आश्रय से दो लेखकों या कृतियों का विवेचन किया जाता है।

झिरमुन्दाकी ने फ्रांसिसी Chansons degeste (हंसी के गीत) तथा रूसी लोकगाथाओं के नायकों का सादृश्यमूलक अध्ययन किया है। यहां किसी प्रकार के कार्य-कारण संबंध के बिना ही सामाजिक संरचना की सादृश्यता के आधार पर 'ऐतिहासिक प्रारूपिक सादृश्यता' प्रकट हुई है। आर. डब्ल्यू. लिबीस ने अपनी पुस्तक 'द पिकारेस्क सेंट' में चार संस्कृतियों से संबद्ध मगर एक विशिष्ट पीढ़ी के कई उपन्यासकारों (मोराविया, कामू, सिलोन, फॉकनार, ग्रहह्म ग्रीन, मालरो) की समांतरता तथा विरूपता का विश्लेषण किया है। साहित्यिक कृतियों की इन समरूप प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से ही साहित्यिक विकास तथा सामाजिक पूर्वावस्था के साधारण नियमों का अनुधावन एवं प्रत्येक साहित्य के ऐतिहासिक एवं जातीय चरित्र को समझ पाना संभव होता है।

सादृश्यमूलक तुलनात्मक अध्ययन में कृतियों को एक दूसरे के विरोध में खड़ा नहीं किया जाता । यहां तुलनात्मकतावादी आलोचक का विश्रांति का मूड़ होता है एवं उससे ही चितन का प्रसार संभव होता है एवं अध्ययन की सारी दृष्टि सृजनात्मक विधिगत (deutero-creative) बन जाती है। ऑस्कर वाइल्ड की भाषा में आलोचक स्वयं ही कलाकार बन जाता है क्योंकि यहां आलोचक हमें इस बात को अच्छी तरह समझा देता है कि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक क्रिया मूल्यांकन करना नहीं अभिज्ञान है । इस अध्ययन के विरोध में यह कहा जाता है कि इसमें व्यक्तिवादिता एवं प्रभाववादिता को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है और इस तरह यह कोई पद्धति ही नहीं बन पाती । यह कुछ हद तक सही है मगर यह पद्धति नहीं ऐसी बात नहीं।

इससे साहित्यअध्ययन का स्वरूप संकुचित नहीं होता है बल्कि इस तरह के अध्ययन से साहित्य के बारे में एक विस्तृत दृष्टिकोण बन पाता है और साहित्यबध्ययन से संबंधित नए-नए प्रश्न उभरते हैं जिनके अध्ययन से तुलनात्मक साहित्य की स्वकीयता का परिचय मिलता है। सादृश्यमूलक पद्धति की सहायता से विभिन्न समाज तथा परिस्थितियों में अभिव्यक्त होने वाले साहित्य का विवेचन होता है और इस विवेचन से उभरने वाले प्रश्नों, जैसे इन अभिव्यक्तियों में समानता का क्या कारण है अथवा कैसे ये एक दूसरे से भिन्न हैं, का उत्तर दिया जाता है। वस्तुतः लेखकों के अंतर्राष्ट्रीय दृक्क समाज की कल्पना निश्चय ही एक ऐसा निर्देश आधार प्रदान करती है जिसकी इन की सहायता से व्यक्तिवादिता एवं प्रभाववादिता से मुक्त होकर सादृश्य संबंधात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2.4. अध्ययन की परंपरा प्रविधि

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद के आश्रय से 'परंपरा' अध्ययन भी दो कृतियों का सादृश्यमूलक अध्ययन होता है जहाँ कृतियाँ इस प्रकार की समान धर्मी कृतियों के एक बड़े वर्ग का अंश होती हैं और जो समान ऐतिहासिक, कालानुक्रमिक तथा रूपात्मक बंधनों से बंधी होती हैं। इसके अंतर्गत भाषाओं तथा साहित्यों में प्रतिफलित राष्ट्रीय 'चेतना' का समांतरीय अध्ययन किया जाता है। प्रावर का कहना है कि इस प्रकार का अध्ययन तभी लाभदायक हो सकता है जब अध्ययन के क्षेत्र को सीमित करके किसी एक ऐतिहासिक काल अथवा ऐतिहासिक दृष्टि से उभरते हुए किसी एक काव्य रूप का दो साहित्यों के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है।

भारतीय साहित्य की भारतीयता एवं अमरीकी ब्लैक पोयट्री की मूलचेतना के अध्ययन के स्थान पर दूसरे महायुद्ध (ऐतिहासिक काल) के समय रचित भारतीय एवं ब्लैक है। पोयट्री का अध्ययन निश्चय ही अधिक तात्पर्य पूर्ण हो सकता है। अथवा विश्व- श्री साहित्य के संदर्भ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर या सॉलबेलो जैसे बहुज्ञतायुक्त लेखकों ईका अध्ययन करते हुए विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं का प्रभाव- ऐसी विवेचन भी महत्त्वपूर्ण हो सकता है। रेनेवेलेक ने इस प्रकार के अध्ययन का इस विरोध करते हुए कहा है कि इसकी कीमत साहित्यिक पांडित्य को सामाजिक, मनोविज्ञान और साहित्यिक इतिहास में विलीन करके अदा करनी पड़ती है।

वस्तुतः तुलनात्मक साहित्य की दृष्टि से इस प्रकार के अध्ययन से साहित्य में वर्णित नाना राष्ट्रीय परंपराओं के बारे में सही अथवा ने गलत धारणाओं का पता लग पाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'मेघनाद वध' का अनुवाद करते हुए यह गलत धारणा फैलायी थी कि माइकेल ने राम और लक्ष्मण की तुलना में रावण को, पाश्चात्य परंपरा के व्यक्तिवादी प्रभाव के कारण, अधिक महत्व दिया है। आर्तुरो बारिया ने अपने निबंध 'नाट स्पेन वर हेमिगवेए' में उनके उपन्यास 'फॉर हुम द वेल टॉल्स' में वर्णित स्पैनीय चरित्रों की सामाजिक स्थिति, उनके मनोविज्ञान और प्रेरणा तथा भाषा की नाना त्रुटियों का विस्तार से वर्णन किया है। परंपरा अध्ययन में राष्ट्रीयता तथा अंतर्राष्ट्रीयता जटिल ढंग से एक दूसरे के निकट आ जाती हैं।

उन्नीसवीं शती के प्राच्य विद्वानों के द्वारा किए गए संस्कृत साहित्य (उपनिषदादि) के अनुवादों के फलस्वरूप इयेट्स, इलियट आदि अंग्रेजी कवियों की कविता में भारतीय परंपरा के अनुप्रवेश का अध्ययन इसी के अंतर्गत किया गया है। इसी परंपरा के नये रूप, जहां दर्शन के स्थान पर भक्ति पक्ष का महत्व ज्यादा है, का प्रभाव सांप्रतिक यूरोपीय तथा अमरीकी धार्मिक परंपराओं पर दिखाई पड़ रहा है और वैष्णव भक्ति के परंपरा अध्ययन की गुंजाइश बढ़ती जा रही है।

परंपरा अध्ययन के अंतर्गत काव्य रूपों, संस्थितियों (topoi) आदि का भी अध्ययन होता है। करटियस ने अपनी पुस्तक 'यूरोपियन लिटरेचर एंड द लैटिन मिडल एजेज' में एक संस्थिति (topos) - बच्चे के भीतर वृद्ध व्यक्ति के सारे गुणों के मौजूद रहने की धारणा-का उल्लेख किया है जिसके संदर्भ वजिल, सिसिरो, बाइवल, रेनासाँ साहित्य यहां तक कि चीनी साहित्य में भी उपलब्ध है और जैसा कि विदित है, चीनी साहित्य का हिब्रू या रोमी स्रोतों से कोई संबंध ही नहीं।

2.5. अध्ययन की प्रभाव प्रविधि

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में प्रभावसूत्रों के तुलनात्मक विवेचन के बारे में सामान्यत दो धारणाएं प्रचलित हैं: एक, जहां एक शक्तिशाली व्यक्तित्व का प्रभाव बाह की तरह होता है और जिसके फलस्वरूप उत्सर्जक के प्रभाव में डूबने वाले लेखक की असहाय वश्यता प्रकट होती है। दो जहां प्रभाव सान की तरह प्रभार ग्रहण करनेवाले व्यक्ति की प्रतिभा को और चमका देती है रुथवेन : 1979 कई आलोचकों के लिए प्रभाव का पहला अर्थ ही ज्यादा ठीक बैठता और इसीलिए नकारने के योग्य है क्योंकि यहां प्रापक हमेशा कोई अप्रघार लेखक होता है और तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में उसे भी स्थान मिल जाता है।

अध्ययन की इस पद्धति को अनम्य पद्धति कहा गया है और इसके प्रत्यक्षवादिता के साथ जोड़कर इस आधार पर इसका विरोध किया गया। कुछ आलोचकों के लिए किसी लेखक की ऋतु ग्रस्तता की बात करने का अर्थ उसकी मौलिकता को कम करना है। दरअसल प्रत्यक्षवादियों की कार्य-कारणवादिता के आश्रय से किए गए प्रभाव-सूत्रों के अध्ययन में 'कारण' मुख्य हो जाता है। यह निश्चित है कि कोई भी कृति दूसरी कृति के 'कारण' निर्मित नहीं होती। प्रभाव को 'अनुकरण' न मानकर 'प्रेरण' मानने से प्रभाव-अध्ययन के विरोध में की गई आलोचना का उत्तर दिया जा सकता है।

अंततः तुलनात्मक साहित्याध्ययन में 'प्रभाव-सूत्रों' का अध्ययन उसकी केन्द्र पद्धति है। प्रभावसूत्रों के अध्ययन में तुलनात्मक पद्धति मात्र स्रोतों या मॉडलों की खोज नहीं करती है। इसका मुख्य कार्य यह विश्लेषित करना है कि प्रापक लेखक ने अपने मॉडल का प्रयोग कैसे किया है; अपने कलात्मक अभिप्रायों को अप्रधान बनाते हुए कैसे उसने अपने मॉडल को नया रूप दिया है तथा कौनसी नयी काव्यात्मक क्रिया को उसमें जोड़ा है।

आखिरकार साहित्यिक पांडित्य के व्यवस्थित ढंग से प्रसारित होना तभी संभव होता है जब साहित्यिक कृति की 'साहित्यिकता' की खोज को आलोचना का मुख्य केन्द्र बिंदु स्वीकार कर लिया जाता है। कभी-कभी प्रापक प्रभाव सूत्रों को इस प्रकार से आत्मसात कर लेता है कि उत्सर्जक का लेशमात्र भी पता नहीं चलता। इसीलिए क्लॉद गुडएं ने प्रभाव सूत्रों के अध्ययन को मनोवैज्ञानिक प्रतिभास (phenomenon) कहा है।

स्पष्ट करने के लिए गुइएं प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष की बात उठाते हुए कहते हैं कि पेट्रार्कीय सॉनेट लिखने के लिए रेनासों कवि को पेट्रार्क पढ़ने की जरूरत नहीं थी मगर इससे पेट्रार्क के अप्रत्यक्ष प्रभाव को अमान्य ठहराया नहीं जा सकता। एक साहित्यिक परंपरा में जीते हुए 'कवियों के द्वारा ग्रहण किया गया यह प्रभाव', 'सामूहिक साझेदारी प्रभाव' है। फ्लेचर का कहना है कि यदि हम प्रापक को ऋणी प्रमाणित कर सकें तो उससे उत्सर्जक का थोड़ा ही परिचय मिलता है मगर प्रापक की मनोशरीरी दृष्टि के बारे में हमें विस्तार से पता लग पाता है और उसकी सृजन प्रक्रिया से भी हम परिचित हो पाते हैं।

यदि हम एक दफा यह पता लगा सकें कि निराला की कविता में ऐसे बहुत सारे तत्त्व हैं जो रवींद्र की कविता से मेल खाते हैं तो हम यह प्रमाणित कर 19 सकेंगे कि निराला बंगला रचनाकारों की काव्य स्थितियों एवं चरित्रों को स्वीकारते थे तथा उन्हें उद्धृत करते थे तथा निराला पर रवींद्र के माध्यम से उपनिषद का प्रभाव पड़ा था। इस तरह रवींद्र

को उत्सर्जक तथा निराला को प्रापक प्रमाणित करने पर भी इस प्रकार का अध्ययन रवींद्र की अपेक्षा निराला की काव्य-प्रतिभा को ज्यादा उजागर करने के लिए होगा क्योंकि यह पद्धति यात्रिक ढंग से मात्र तथ्यों का हवाला नहीं देगी मगर गहराई से रवींद्र की पटभूमिका पर निराला की सृजन प्रक्रिया की आलोचना करेगी।

वस्तुतः प्रत्येक साहित्यिक आलोचना के अनुरूप प्रभावसूत्रों की आलोचना भी सूक्ष्मग्राहिता की मांग करती है। लिओन एडेल का कहना है कि इस अध्ययन में प्रापक की कल्पना शक्ति का महत्त्व उस खाद्यपदार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक है जिसपर वह शक्ति निर्भरशील है। प्रभावसूत्रों का अध्ययन तुलनात्मक आलोचना के क्षेत्र में तब तक चलता रहेगा जब तक हमारी यह धारणा बनी रहेगी कि आलोचनात्मक क्षण के लिए ऐतिहासिक चेतना आवश्यक है क्योंकि 'वर्तमान' को 'अतीत' के साथ जुड़ी हुई प्रक्रियाओं के उत्पाद के रूप में आंकने पर ही वह बोधगम्य बन पाता है।

यह काल क्रमिक दृष्टि उत्सर्जक तथा प्रापक की सृजनात्मक प्रक्रिया के प्रति हमें असंवेदनशील नहीं करती क्योंकि तुलनात्मक साहित्य में प्रभाव अध्ययन जहां विस्तार की दृष्टि से ऐतिहासिक है वहां गुरुत्व की दृष्टि से सामूहिक है और जहां लेखकों की काव्य क्रिया के विश्लेषण के साथ- साथ युग (सांस्कृतिक वर्गों का सामाजिक परिवेश) की विशिष्ट शैली, जिसे बार्थ ने 'एकरित्पुर' (ecriture) कहा है- (1953) का भी ध्यान रखा जाता है।

2.6. अध्ययन की स्वीकृति तथा संचारण प्रविधि

प्रभावसूत्रों के अध्ययन के साथ-साथ तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत 'स्वीकृति' अध्ययन का भी प्रसार हुआ है। उलरिच वाइस्टाइन के अनुसार प्रभावसूत्रों का अध्ययन मूलतः परिपूर्ण दो साहित्यिक कृतियों को लेकर किया जाता है। मगर स्वीकृत अध्ययन का क्षेत्र काफी विस्तृत होता है जहां कृतियों के पारस्परिक संबंधों से लेकर उनके आस-पास की परिस्थितियों, लेखक, पाठक, समीक्षक, प्रकाशक तथा प्रतिवेशी परिवेश सब कुछ अध्ययन का विषय बन जाता है। इस तरह स्वीकृति अध्ययन साहित्यिक समाजशास्त्र अथवा मनोविज्ञान की दिशा में ही अग्रसर होता है।

वाइस्टाइन इस संदर्भ में कॉफ्का का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि उनकी चिट्ठियां अथवा डायरियां पढ़ने से यह पता चलता है कि कॉफ्का का गुस्तव फ्लोबर के साथ व्यक्तिगत संबंधों के कारण एक मनोवैज्ञानिक निकटता थी। स्वीकृति अध्ययन में प्रभावसूत्रों की खोज के स्थान पर इस दिशा में अध्ययन का प्रसार होता है। फिर किसी एक विदेशी लेखक का दूसरे देश में विख्यात हो जाने से उस देश की साहित्यिक प्रवृत्ति को मोड़ देने में लेखक के योगदान से लेकर अनुवादक के योगदान की सीमाओं और शक्तियों के विश्लेषण के साथ-साथ समीक्षकों के द्वारा की गई आलोचनाओं का विवेचन और फिर बिक्री के आधार पर जनरुचि की दिशा का परिचय आदि साहित्यिक समाजशास्त्र के साथ जोड़कर इस अध्ययन का प्रसार होता है।

जापानी हॉइकू ने किस प्रकार हिंदी कविता जगत के मनोविज्ञान को उभारा उसका विश्लेषण स्वीकृति अध्ययन के अंतर्गत ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का अध्ययन द्विवेदी युग की एक खास मनोदृष्टि को लेकर भी किया जा सकता है।

द्विवेदी कालीन नैतिकता केवल रीतिकाल के प्रति प्रतिक्रिया नहीं थी वरन् संपूर्ण विक्टोरियन युग के साहित्य की स्वीकृति भी थी जिसके फलस्वरूप जीवन के प्रति हमारी पारंपरिक स्वस्थ धारणा पलट गई और अनैतिकता के नाम पर हिंदी के लेखकों ने संकुचित दृष्टि का परिचय देना शुरू किया।

द्विवेदी युगीन साहित्य में श्लील और अश्लील के प्रश्न को लेकर इस अध्ययन को आगे बढ़ाया जा सकता है फ्रेडरिक गुडोल्फ ने जर्मनी के द्वारा शेक्सपीयर की स्वीकृति को लेकर विस्तार से विवेचन किया है। किस तरह जर्मन के लेखक -लेसिग, गोयते, शीलर आदि की विचारधाराओं को शेक्सपीयर ने प्रभावित किया तथा शेक्सपीयर के विभिन्न अनुवादों के दोषों के विवेचन के साथ ही शेक्सपीयर के द्वारा प्रयुक्त छंद ने कैसे जर्मनी के ब्लेक वसं को रूप प्रदान किया- आदि सब कुछ अपने अध्ययन में समेट कर तुलनात्मक आलोचना को एक विशिष्टता प्रदान की है।

गडोल्फ ने अपने अध्ययन में जर्मनी में शेक्सपीयर के विस्तार का ही नहीं वरन् जर्मन साहित्य के विकास में शेक्सपीयर की विभिन्न विशिष्टताओं को कब कैसे ग्रहण किया गया- उसका भी विवेचन किया है और साथ ही जर्मनी में शेक्सपीयर की स्वीकृति के लिए उत्तरदायी अनुवादकों और मध्यस्थों (अंग्रेज हास्य अभिनेतागण जिन्होंने 17वीं शती में शेक्सपीयर के कॉमेडियों के जर्मन रूपांतरणों का अभिनय करना शेक्सपीयर की स्वीकृति में विशेष योगदान दिया) का भी आलोचनात्मक विवेचन किया।

वस्तुतः स्वीकृति अध्ययन के साथ संबद्ध अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थों (international mediators) का अध्ययन भी आजकल काफी महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। प्रावर ने इसे 'संचारण अध्ययन' कहा है और रेमंड विलियम्स का हवाला देते हुए इसकी परिभाषा दी है, 'संचारण संस्थाओं एवं रूपों के सदृश है जिसके माध्यम से विचार, सूचना तथा अभिवृत्तियां स्थानां- तरित अथवा स्वीकृति होती हैं'। पंचतंत्र, हितोपदेश अथवा शुक- = सप्तशती की विदेश में यात्रा के विभिन्न भागों की खोज एवं 'एसेप्स फेबल' या तृतीनामा के रूप में भारत में वापसी का संचारण अध्ययन तुलनात्मक साहित्य की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है।

टी. आर. हेन ने अपनी पुस्तक 'द एपेल ऍड द स्पेक्ट्रोस्कोप' में यूरोप में विचार और साहित्य के संवारण के यात्रा-मार्ग का एक विस्तृत मानचित्र तैयार किया है। आधुनिक काल में विश्वविद्यालय के विद्वान या अनुवादक बड़ी ही सफलता के साथ मध्यस्थ का काम कर रहे हैं। हिंदी के आलोचकों ने पाश्चात्य-काव्यशास्त्र, साहित्यिक या मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्र की ओर सृजनात्मक लेखकों का ध्यान आकर्षित हुए हिंदी साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव के संचारण अध्ययन का मार्ग सुगम किया है। विदेश में आर्थर बेले (Arthur Waley) ने यूरोपीय तथा सुदूर पूर्व साहित्य का अध्ययन करते हुए एक ऐसे मध्यस्थ का रूप धारण किया है कि श्रेष्ट एजरा पाउंड ने भी अपनी सृजनात्मक रचनाओं में इसका लाभ उठाया। संचारण अध्ययन से समाजशास्त्री एवं सांस्कृतिक ऐतिहासिक को भी लाभ पहुँचता है।

2.7. अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि

स्वीकृति अध्ययन के अंतर्गत संचारण विश्लेषण के अतिरिक्त किसी लेखक या कृति का 'सौभाग्य' विश्लेषण भी किया जाता है। किसी एक विदेशी लेखक या कृति की दूसरे देश में किन्हीं कारणों से, नोबेल पुरस्कार मिलते या आकस्मिक मृत्यु होने से या किसी सत्ता का विरोध करने (सोजेनित्सिन से ख्याति के बढ़ जाने पर वह कैसे दूसरे लेखकों

या साहित्यिक परिवेश प्रभावित करता है इसका अध्ययन ही सौभाग्य अध्ययन है। वाल्टर मुङ्ग (Walter Musehg) ने अपने निबंध 'स्टडीज इन द ट्रैजिक हिस्ट्री आ लिटरेचर' में जर्मन साहित्य को प्रभावित करते हुए अपने सौभाग्य का प्रसार करने वाले 'हेमलेट' का सौभाग्य अध्ययन किया है।

सारांश में पाश्चात्य तुलनात्मक साहित्य के विद्वान वाँ टिगहेम (1946) आंद्र मोरिजे (1922) तर गुस्तव रुडलर (1923) आदि ने स्वीकृति अध्ययन का विवेचन किया है मगर इसके लिए अलग-अलग पदावलियों- 'सौभाग्य', 'संचार', 'स्वीकृति' का प्रयोग किया है एवं साथ ही प्रभाव सूत्रों का विवेचन करते हुए अधिक स्थितियों में प्रभाव एवं स्वीकृति के अर्थ को गड़बड़ा दिया है। वस्तुतः प्रभा एवं स्वीकृति अध्ययनों को अलग नहीं मानना चाहिए। ये एक दूसरे पर अधिक तथा एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं। कुल मिलाकर इसको प्रभाव सूत्रों। अध्ययन कहना ही ठीक है यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन में दोनों लेखकों पहले उनकी जमीन पर तथा उनकी राष्ट्रीय परंपराओं में परखना चाहिए बाद में प्रभाव सूत्रों की खोज करते हुए प्रापक को दूसरी जमीन तथा परंपरा की सहायता से विश्लेषित करना चाहिए। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्याय में कल्पनाहीनता या यांत्रिकता की संभावना को देखते हुए इस पद्धति।

डिमश्री शाइजवेस्की (Dmitry Cizevsky) ने इसे 'जननिक पद्धति' कह कर इसके प्रति आलोचकों के उदासीन होने की बात की है और हेनरी पेयर (Hanri Peyre) ने प्रभाव सूत्रों की अपेक्षा सादृश्य संबंधों के अध्ययन को ज्यादा प्रभावशाली ठहराया है। वस्तुतः प्रभाव को यदि प्रापक सान की तरह ग्रहण न कर सके वहां उसकी साहित्यिक प्रतिभा बेकार हो जाती है और जहां प्रतिभा प्रभाव से और तेज हो उठती है वहां प्रभाव सूत्रों को स्वीकारते हुए भी तुलनात्मक अध्ययन क्रमशः सादृश्य संबंधों के अध्ययन में बदल जाता है क्योंकि अन्ततः इस बदलाव से हम यह जान पाते हैं कि कब प्रापक प्रभाव मुक्त होकर अपनी मौलिकता को प्रमाणित कर सका है। तुलनात्मकतावादी आलोचक के लिए इस पद्धति का प्रयोग करते हुए प्रभाव और मौलिकता के इस सूक्ष्म संतुलन से परिचित रहना बहुत जरूरी है।

2.8. अध्ययन की संबंधात्मक द्वद्वात्मक प्रविधि

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद साहित्य को मानवीय ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के साथ भी जोड़ता है जैसे दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, धर्म, समाज- शास्त्र, तथा ललित कलाएं। वस्तुतः तुलनात्मक साहित्य जब हमें साहित्य के बारे में नाना प्रकार के प्रश्न पूछने के लिए उत्तेजित करता है तो ये प्रश्न हमें संस्कृति, संरचना, भाषिक क्रम, समाज के साथ साहित्य का संबंध तथा मानवीय कल्पना और बौद्धिक इतिहास से संबद्ध दूसरे प्रश्नों तक पहुंचा देते हैं। इस तरह साहित्य और ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के आपसी संबंध, पारस्परिक प्रभाव तथा समांतरीय अध्ययन का प्रसार हो पाता है।

हिंदू पौराणिक तथा संस्कृत साहित्य का प्रभाव रवि वर्मा की चित्रकला में स्पष्ट दिखाई पड़ता है और इस आधार पर इसका अध्ययन किया जा सकता है। अध्ययन की इस कार्य-पद्धति को 'संबंधात्मक द्वंद्वात्मक पद्धति' का एक क्षेत्र माना जाता है जो अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद पर आधारित रहता है। रेमाक के अनुसार यह पद्धति समस्तरीय सक्षमता की जगह आंशिक रूप से अनुलंबीय सक्षमता को स्वीकारती है। इस प्रकार के अध्ययन के प्रसार के लिए निश्चय ही कार्यपद्धति में परिमार्जन आवश्यक हो जाता है।

2.9. तुलनात्मक आलोचना की प्रविधि

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद के साथ तुलनात्मक आलोचना के आश्रय के तुलनात्मक पद्धति का निर्माण होता है। तुलनात्मकतावादी आलोचक सुव्यवस्कि ढंग से तुलनात्मक आलोचना के अंग रूप में तुलना के तकनीकों का प्रसार करता है और व्यक्तिगत लेखकों के द्वारा किए गए प्रयासों (उनके कार्य तथा प्रभाव) का अध्ययन करता है। तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी पद्धति तुलनात्मक आलोचना के मूल अंग है। यह साधारणतः काल क्रमिक के स्थान पर समकालिक अध्ययन होता है क्योंकि यह पद्धति देश-काल की सीमा को पार कर जाती है।

यद्यपि कालक्रम को नकारना संभव नहीं फिर भी उसका बंबानुकरणं करने पर देशकाल के परे के महत्त्वपूर्ण समानंतरीय तथा विभेदीय स्थितियों से हम अपरिचित रह जाते हैं। इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण बुद्धदेव बसु के द्वारा रचित 'महाभारतेर कथा' है जहां वे एक महाकाव्य के अनुरूप महाभारत का अध्ययन नहीं करते वरन् इस महान इतिहास का कथ्थपरक अध्ययन करते हुए होमर, यूनानीड्रामा, वजिल, दान्ते यहां तक कि तालस्ताँय के कथ्यों के साथ दूसरे महत्त्वपूर्ण विषयों की तुलना करते हैं।

यहां काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग है जो एक परिपक्क अंतदृष्टि तथा संपूर्ण विश्लेषण पर आधारित है। चूंकि रूपात्मक, शैलीवैज्ञानिक या ऐतिहासिक अथवा समाजशास्त्रीय दृष्टि से तुलना की जाती है इसी लिए यह आलोचना पद्धति अप्रत्यक्ष ढंग से दूसरी पद्धतियों में प्रवेश कर जाती है और कदाचित् इसलिए दूसरी पद्धतियों का एक उपभाग प्रतीत होती है। मगर इसका एक अपना क्षेत्र है और 'आलोचना' के साथ जुड़ा हुआ 'तुलनात्मक' एक ऐसी आलोचना की ओर निर्देश करता है जो राष्ट्रीय अथवा प्रांतीय सीमाओं को पार कर जाती है जैसा कि पहले कहा गया है कि एकक राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन में तुलना आनुषंगिक होती है मगर यहां तुलना व्यवस्थित है।

इसके अतिरिक्त तुलनात्मक आलोचना एक विस्तृत साहित्यिक अध्ययन से जुड़ी होती है और मानवीय ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों को अपने में समेट कर एक वृहत् परिप्रेक्ष्य को प्रकट करती है। इस प्रकार की आलोचना स्वाभाविक रूप से ऐतिहासिक सामान्यीकरण की ओर अग्रसर होती है जो 'जाइटगाइस्ट' कालचेतना को उसके क्रियारूप में पकड़ने का प्रयत्न है। उदाहरण के रूप में 'जाइटगाइस्ट' इस बात के लिए उत्तरदायी है कि जिन लोगों ने कभी फ्रॉयड की पुस्तक 'द इंटरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स' नहीं पड़ी वे भी युगचेतना के कारण फ्रॉयडीय प्रतीकों से परिचित हो सके। यह आलोचना दूसरी ओर काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक सिद्धांत की ओर भी ले जाती है।

सैद्धांतिक धरातल पर 18वीं शती की तुलनात्मक आलोचना से ही आधुनिक सौंदर्यशास्त्र का जन्म हुआ है। दरअसल सिद्धांत-अभिमुत्री काव्यशास्त्र और कृति-अभिमुखी साहित्यालोचन को तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी औजारों की जरूरत होती है जिससे कि काव्यशास्त्र के द्वारा आगमनात्मक सामान्यीकरण तथा साहित्यालोचन के द्वारा कृति में अंतनिहित विशेषताओं का गंभीर अभिज्ञान हो सके। इसके अतिरिक्त साहित्यिक सिद्धांत (काव्यशास्त्र) के ऐसे कतिपय प्रश्न हैं (आगे चलकर भी इसका उल्लेख किया जायगा) जिनका उत्तर तुलनात्मक आलोचना की इस पद्धति से ही प्राप्त होता है। बहुत-सी स्थितियों में अनुवादों का अध्ययन स्रोत भाषा के ज्ञान के अभाव में भी तुलनात्मक आलोचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

साहित्य के बुद्धिमान आलोचक जयदेव के 'गीत गोविन्द' के सात महत्त्वपूर्ण अनुवादों की व्यवस्थित तुलना से बहुत ही लाभान्वित हो सकते हैं। ये सात अनुवाद करनेवाले विद्वानों के नाम हैं, विलियम जोन्स, 1792, एडविन आर्नाल्ड, 1895, जार्ज कीट्स, 1940, लक्ष्मीनारायण शास्त्री, 1956। डनकन ग्रीनलिज, 1962, मणिका वर्मा, 1968 तथा बारबरा स्टोलर, 1977। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक आलोचना की सहायता से साहित्यिक मूल्यांकन तथा साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की नान समस्याओं का उत्तर दिया जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के आपसी संघर्ष या संश्लेषण के अध्ययन के लिए यह पद्धति तुलनात्मकतावादी आलोचक से भाषिक तथा सांस्कृतिक तैयारी और ज्ञान की विविधता की मांग करती है जो 'साधारण' साहित्यालोचक से अपेक्षा नहीं की जाती और साधारणतया जो उसमें होती भी नहीं।

2.10. सारांश

तुलनात्मक भारतीय साहित्य के सुव्यवस्थित काव्यशास्त्रीय कला या सौंदर्य- परक तथा आलोचनात्मक विश्लेषण के लिए भारतीय तुलनात्मकतावादी आलोचक इस कोशिश में हैं कि वे अपनी ही तुलनात्मक आलोचना का प्रसार तथा 'अधिभाषा' का निर्धारण करें। संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के तुलनात्मक पर्यवेक्षण के द्वारा ही एक लाभदायक सर्वभारतीय आलोचनात्मक सिद्धांत भाषा का निर्माण किया जा सकता है जिससे ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय तथा काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक दृष्टि की सहायता से तुलनात्मक भारतीय साहित्य के नाना आयामों का मूल्यांकन संभव है। मगर मूल्यांकन के लिए तुलनात्मक पद्धति का अंर्तावद्यावर्ती होना जरूरी है। इस पद्धति विज्ञान का यह विश्वास है कि औचित्य ही सर्वमान्य सिद्धान्त है।

संस्कृत काव्यशास्त्र के साथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र को जोड़कर निर्मित 'अधिभाषा' की अंर्तावद्यावर्ती दृष्टि की सहायता से मूल्यांकन ही तुलनात्मक भारतीय साहित्य के अध्ययन का वास्तविक प्रसार कर सकता है। यह कोई बद्ध पद्धति नहीं और साथ ही कोई सुस्पष्ट नयी आलोचनात्मक पद्धति विज्ञान भी नहीं। मगर इसके बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह पद्धति कतिपय महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रश्नों को उभारती है तथा बहुत ही चित्ताकर्षक ढंग से उसका उत्तर देने का प्रयत्न करती है जो एकक साहित्याध्ययन की पद्धति के द्वारा संभव नहीं।

यदि तुलनात्मक साहित्य का यह पद्धति विज्ञान अंतर्राष्ट्रीय संदर्भवाद तथा तुलनात्मक आलोचना के नियमों के आधार पर निर्मित तुलनात्मक और व्यतिरेकी तकनीकों के द्वारा साहित्य को एक सावि‍क संवृत्ति के रूप में (जैसे महाकाव्यिक परंपरा में काम करनेवाले दूसरे देश-विदेश के लेखकों की तुलना में तुलसीदास का अध्ययन) प्रकाशित कर सके तो निश्चय ही इस कार्य पद्धति को उचित ठहराया जा सकता है अथवा, जैसा कि हैरी लेविन ने 'रिफाक्न' में कहा है कि यदि यह पद्धति मनुष्य की सहजात प्रादेशिकता को प्रभावहीन करके प्रासंगिक तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मनुष्य जो कुछ जानता है अथवा जो वह जान सकता है उसको एक भावात्मक रूप प्रदान कर सके तो इसके अस्तित्व को न्यायसंगत प्रमाणित करना बहुत ही सरल है। साहित्यों की तुलना एक संभाव्य स्वतंत्रतादायक व्यापार है। यह मात्र विशिष्ट सुपुर्दगियों का ही अध्ययन नहीं सामान्य सुपुर्दगियों का भी अध्ययन करती है।

तुलनात्मक साहित्य की इस पद्धति ने सांस्कृतिक वरिष्ठता को चुनौती दी है और साहित्य को एक साविक धरातल पर ला खड़ा किया है। इस पद्धति विज्ञान की सार्थकता स्पष्ट है भले ही विभिन्न कार्यपद्धतियों के अपखंडनों की सहायता से इसका निर्माण हुआ हो।

2.11. बोध प्रश्न

1. तुलनात्मक साहित्य की दृष्टियाँ और सादृश्य संबंधात्मक प्रविधि के बारे में लिखइए।

2. अध्ययन की परंपरा प्रविधि, प्रभाव प्रविधि और स्वीकृति तथा संचारण प्रविधि के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

3. अध्ययन की सौभाग्य प्रविधि, संबंधात्मक, द्वंद्वात्मक प्रविधि टिप्पणि लिखिए।

4. तुलनात्मक आलोचना की प्रविधियों के बारे में सोदाहरण रूप में चर्चा कीजिए।

2.12. सहायक ग्रंथ

1.तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

2. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- चौधरी, इन्द्रनाथ, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा। 1983.

3. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ- संपादक- राजरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजमल, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2013.

4. साहित्य सिद्धांत – रेनेवेलेक आण्ड आस्टिनरेट, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

डॉ. एम.मंजुला

3. तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- तुलनात्मक साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- अनुवाद का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे;
- तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की भूमिका का महत्व रेखांकित कर सकेंगे और
- भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकास में अनुवाद की भूमिका के महत्व को समझ सकेंगे।

रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना

3.2. तुलनात्मक साहित्य का प्रारंभ

3.1. तुलनात्मक साहित्य-परिभाषाएँ

3.3. तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद

3.4. तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद का अन्तरसम्बन्ध

3.5. तुलनात्मक साहित्य का भारतीय परिप्रेक्ष्य

3.6. तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की भूमिका

3.7. सारांश

3.8. बोध प्रश्न

3.9. संदर्भ ग्रंथ

3.1. प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप तुलनात्मक साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में हम तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की भूमिका पर विस्तार से चर्चा करेंगे। अनुवाद के बिना तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की सीमा कितनी संकुचित हो जायेगी। अनुवाद एक सांस्कृतिक गतिविधि है। अपने स्वभाव से ही यह अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तरसामाजिक होती है। अच्छा अनुवाद सिर्फ भाषानुवाद नहीं होता।

स्रोत भाषा का सांस्कृतिक तथा सामाजिक संदर्भ भी उसमें अन्तर्निहित होना चाहिए। ऐसा न होने पर स्रोत भाषा के साहित्य की मूल संवेदना ही नष्ट हो जायेगी। अनुवाद एक तरह से स्रोत भाषा के साहित्य का लक्ष्य भाषा में सृजनात्मक अन्तरण होता है। सूचना तकनीक ने दुनिया को एक वैश्विक गांव बना दिया है। एक-दूसरे की सामाजिक,

सांस्कृतिक परंपराओं, रीति-रिवाजों, साहित्य, अच्छाइयों एवं बुराईयों तथा रूढ़ियों को समझे बिना हम एक साथ नहीं रह सकेंगे।

भारत जैसे बहुभाषिक एवं सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में अनुवाद गतिविधि आपसदारी की इसी समझ की मांग की प्रतिपूर्ति करती है। अच्छे अनुवादों के बिना तुलनात्मक साहित्य सिर्फ एक ही भाषा के दायरे में सिमट कर रह जायेगा। इससे न सिर्फ उसकी सीमा संकुचित होगी बल्कि हम अपने देश तथा विश्व की अन्य भाषाओं के साहित्य से अनजान रह जायेंगे। साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान तथा तकनीक के लिए भी अनुवाद की जरूरत महसूस की गई है।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ही आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्तिशास्त्र' का अनुवाद कर इस जरूरत पर जोर दिया था। आधुनिक भारत में तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों का महत्व काफी बढ़ गया है। भारतीयता की अवधारणा लगातार पुष्ट होते जाने की वजह से ऐसा हुआ है। इसी बीच वैश्विक स्तर पर तुलनात्मक साहित्य अध्ययन संबंधी चिंताओं में आमूल परिवर्तन हो गया है। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श से लेकर मानवाधिकार के प्रश्न भी अब उससे जुड़ गए हैं।

तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों में पाश्चात्य साहित्य के साथ ही भारतीय साहित्य के अध्ययनों का प्रचलन बढ़ा है। दूसरी भारतीय भाषाओं को सीखने तथा उनके साहित्य को अपनी भाषा में लाने के प्रयास तेज हुए हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन विभाग तो खुले ही हैं, भारतीय भाषाओं को पढ़ाने के विभाग भी बढ़े हैं। अनुवाद - अध्ययनों के लिए भी विश्वविद्यालयों में विभागों की स्थापना हुई है। संविधान स्वीकृत भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त स्थानीय भाषाओं तथा लोक बोलियों का साहित्य भी अब अध्ययन का विषय बनने लगा है। भिखारी ठाकुर जैसे कवियों को देखने वाली दृष्टि में परिवर्तन हुआ है।

3.2. तुलनात्मक साहित्य का प्रारंभ

तुलनात्मक साहित्य के अध्येताओं का मानना है कि तुलनात्मक साहित्य पद का आरंभ सबसे पहले फ्रांस में 1816 में प्रकाशित संग्रह Course de literature compare में किया गया। जर्मनी में तुलनात्मक साहित्य का प्रयोग 1854 में मिलता है। अंग्रेजी में मैथ्यू अर्नाल्ड ने 1848 ई. में पहली बार तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा सामने रखी। इसका तात्पर्य यह है कि तुलनात्मक साहित्य की अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी में सामने आई। जिसमें एक से अधिक साहित्य के अध्ययन की पद्धति विकसित हुई। दूसरी बात यह है कि यह कोई साहित्यिक आंदोलन नहीं है, लेखकों कलाकारों और रचनाकारों का आंदोलन नहीं है, वरन् साहित्य के अध्येताओं की विचार प्रणाली है, जिसके केंद्र अकादमी, संस्थाएँ और विश्वविद्यालय हैं।

विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य के विभाग स्थापित किए गए, वहाँ व्याख्यान दिए गए, चर्चाएँ और परिचर्चाएँ आयोजित की गई। उनसे जो निष्कर्ष निकले, उन निष्कर्षों से तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप स्पष्ट हुआ। 1903 में वेनेदेत्तो क्रोचे ने स्वतंत्र अनुशासन के रूप में तुलनात्मक अध्ययन पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए उसे अस्वीकार कर दिया। उनको शुद्ध साहित्येतिहास और तुलनात्मक साहित्य में कोई अंतर नहीं लगा। 1920 के दशक में लेने कूपर ने तुलनात्मक साहित्य को एक 'Bogus Term' कहा, जिसका न तो कोई अर्थ है न कोई संस्कार 'Neither sense not syntax'। साइमन ज्यून (Jeune) ने तुलनात्मक साहित्य में 'प्रभाव' के अध्ययन को मुख्य तत्व माना। 'New

direction in comparative literature जिसका कुमार सिंह का लेख The Future of Comparative Literaty Studies.

सूसन बेसनेट ने फिलारे चार्ल्स के 1835 में 'तुलनात्मक साहित्य' पर दिए गए व्याख्यान को उद्धृत किया है। फिलारे के अनुसार- Let us calculate the influence of thought upon thought, the manner in which the people are mutually changed, what each of them has given, and what each of them, has received: let calculate also the effect of this perptual exchange upon the individual nationalities:how, for example, the long isolated northern spirit finally allowed itself to be penetrated by the spirit of the south; what the magnetic attraction was of France for England and England for France; how each division of Europe has at one time dominated its sister states and at another time submitted to them; what has been the influence of theological Germany, artistic Italy, energetic France, Catholic Spain, Protestant England; how the warm shades of the south have become mixed with the profound analysis of Shakespeare; how the Roman and Italian spirit have embellished and adorned the Catholic faith of Milton; and finally, the attraction, the sympathies, the constant vibration of all these living, exalted, melancholoy and reflected thoughts some spontaneously and others because of study- all submitting to influences which they accpet like gifts and all in turn emitting new unforessable influences in the future!

उनके अनुसार एक विचार पर दूसरे विचार के प्रभाव की गणना करते हैं जिससे लोग आपस में बदल जाते हैं, अपने विचार बदल लेते हैं, जिसमें हरेक व्यक्ति दूसरे को कुछ देता है तथा दूसरे से कुछ पाता है। इसी तरह से धीरे-धीरे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से विनिमय करता है। जैसे इंग्लैंड के लिए फ्रांस का आकर्षण होता है जिससे धर्मशास्त्री जर्मनी या कलात्मक इटली, या ऊर्जावान फ्रांस, कैथोलिक स्पेन या प्रोटेस्टेंट इंग्लैंड इस तरह की पहचान बनती है और राष्ट्र एक दूसरे से भेंट में कुछ न कुछ पाता है जिनसे अदृश्य भविष्य प्रभावित होता है।

इस तरह तुलनात्मक साहित्य में कारण और प्रभाव का अध्ययन होता है। प्रारंभिक तुलनात्मक साहित्य जिसका प्रारंभ फ्रांस में हुआ था, इसी प्रभाव का विश्लेषण करता है। इस प्रकार, इस अध्ययन में बीज शब्द है प्रभाव। तुलनात्मक साहित्य में इस प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। जिसे हम राष्ट्र की आत्मा कहते हैं, वह हमेशा अप्रभावित नहीं रहती। कभी न कभी, किसी न किसी से प्रभावित हो जाती है। जैसे भारतीय आत्मा आजकल अमेरिका से प्रभावित हो रही है। पहले यह सोवियत रूस से प्रभावित हुआ करती थी। कभी चीन, जापान, श्रीलंका, भारत से प्रभावित हुए हैं। यह सास्कृतिक प्रभाव कायम है। यह सांस्कृतिक संबंध बनता है। इससे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ता है, जिसमें एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को भेट देती है। संस्कृति और राष्ट्रीयता की अवधारणा इस तुलनात्मक साहित्य के आड़े आती है। राष्ट्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक परपरा का प्रश्न कई बार महत्वपूर्ण हो जाता है। इस प्रभाव में कहाँ तक प्रभाव रहता है, कहाँ 'नकल' बन जाता है, यह पेचीदा प्रश्न है। कहाँ प्रभाव को आत्मसात कर लिया जाता है और कहाँ उसका अभ्यंतरीकरण हो जाता है, यह कहना मुश्किल है।

3.1. तुलनात्मक साहित्य -परिभाषाएँ

तुलनात्मक साहित्य एक से अभिक भाषाओं में रचित साहित्य का अध्ययन है और तुलना इस अध्ययन का मुख्य अंग है। विविध विद्वानों के द्वारा दिए गये परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

- **क्रोचे**

"तुलनात्मक साहित्य' एक स्वतंत्र विद्यानुशासन बन ही नहीं सकता क्योंकि किसी भी साहित्यिक अध्ययन के लिए तुलना एक आवश्यक अंग है।" (एस. एस. प्रावर, 1973.2)।

दूसरे विद्वान भी कहते हैं कि साहित्य का अध्ययन करते हुए तुलना करने का मतलब सीधे साहित्य का अध्ययन करता ही है।

- **हेनरी एच. एच.रेमाक**

"तुलनात्मक -साहित्य एक-एक राष्ट्र के साहित्य की परिधि के परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन है तथा यह अध्ययन कला, इतिहास, समाजविज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र, आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंधों का भी अध्ययन है।"

- **पैरिस जर्मन स्कूल के अनुसार**

"तुलनात्मक साहित्य विविध साहित्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन है अथवा अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक संबंधों का इतिहास है या फिर वह साहित्येतिहास की एक शाखा है।"

- **क्साइव स्टाक क्लाइव स्टाक के अनुसार**

"तुलनात्मक साहित्य में विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्यों अथवा उसके संक्षिप्त घटकों की साहित्यिक तुलना होती है और यही उसका आधार तत्व है।"

- **डॉ. नगेन्द्र तुलनात्मक साहित्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-**

"तुलनात्मक साहित्य जैसे नाम से ही स्पष्ट है साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करना है। तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का साहित्यिक अध्ययन है जो अनेक भाषाओं को आधआर मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है, अनेकता में एकता का संधान।"

- **डॉ. रवींद्रकुमार जैन के अनुसार**

"तुलनात्मक अनुसंधान के अंतर्गत किन्हीं दो समकालीन या विषमकालीन समान गुणात्मक प्रतीत होनेवाली कृतियों का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन दो युगों, दो भाषाओं एवं दो व्यक्तियों का हो सकता है। यह अध्ययन गंभीर, वैज्ञानिक, तटस्थ, सांगोपांग एवं निष्कर्ष मूलक होना चाहिए।" प्रस्तुत परिभाषा तुलना के व्यापक क्षेत्र को तथा स्वरूप को स्पष्ट करती है। इसमें तुलना के समान गुणों पर अधिक बल दिया है। तुलना के गंभीर, वैज्ञानिक, तटस्थ एवं निष्कर्ष मूलक जैसी महत्वपूर्ण विशेषताओं को भी इंगित किया है।

इनके अलावा रेनेवेलेक, रेमाक, ऑस्टिन वारेन तथा प्रावर जैसे उदारतावदी विद्वानों को अमरीकी स्कूल के अंतर्गत स्थान दिया जाता है। जिन्होंने अपनी परिभाषाओं में तुलनात्मक साहित्य साहित्य के अध्ययन में काव्य-शास्त्रीय सौन्दर्यात्मक कलापकर दृष्टि को महत्व दिया है।

3.3. अनुवाद और तुलनात्मक साहित्य

अंग्रेजी में कम्पैरेटिव लिटरेचर (Comparative literature) के हिंदी अनुवाद को तुलनात्मक साहित्य कहते हैं। भारतीय भाषाओं में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन की कोई परंपरा नहीं मिलती। सर्वप्रथम रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'विश्व साहित्य' की चर्चा करते हुए साहित्यिक अध्ययनों में तुलनात्मक दृष्टि की आवश्यकता को रेखांकित किया था। औपनिवेशिक परतंत्रता के उस दौर में तुलनात्मक दृष्टि का अर्थ अधिक से अधिक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य का; यूरोपीय भाषाओं और विशेषतः अंग्रेजी भाषा के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से था।

शेक्सपीयर की संस्कृत के कविकुलगुरू कालिदास से तुलना इसी दृष्टि का प्रतिफलन थी। तो क्या तुलनात्मक साहित्य एक से अधिक भाषाओं में रचित साहित्य का अध्ययन है और तुलना इस अध्ययन का मुख्य आधार है? लेकिन जैसा कि प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी का मानना है "चाहे एक भाषा में लिखित साहित्य का अध्ययन हो अथवा एक से अधिक भाषाओं में लिखित तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन हो, दोनों ही स्थितियों में अध्ययन का केंद्रीय विषय साहित्य ही है और इसीलिए तुलनात्मक साहित्य को किसी एक भाषा में लिखित साहित्य के अध्ययन से अलग नहीं किया जा सकता।" दोनों ही प्रकार के अध्ययनों के लिए हम 'तुलनात्मक साहित्य' पद का प्रयोग करते हैं।

चूंकि इस तरह के साहित्यिक अध्ययनों का कलात्मक आयाम (Aesthetic dimension) होने के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक आयाम (Socio-cultural dimension) भी होता है इसीलिए भारतीय संघ जैसे बहु सांस्कृतिक, बहुजातीय, बहुभाषी देश में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन की महत्ता अंसदिग्ध रूप से बढ़ जाती है। राष्ट्र (Nation-state) शब्द के आधुनिक अर्थ में भारतीय संघ विभिन्न राष्ट्रीयताओं का एक समुच्चय है। भारतीय राष्ट्र की अवधारणा यद्यपि काफी हद तक मुखर हो चुकी है, फिर भी भाषाई और प्रान्तीय अलगाववादी झगड़े अब भी कदा-कदा उठते ही रहते भारतीयता की अवधारणा के विकास में सांस्कृतिक बहुलतावादी दृष्टि काफी हद तक मददगार साबित हुई है।

इस दृष्टि को शामिल किए बगैर तुलनात्मक साहित्य की कोई भी परिभाषा पूर्ण नहीं होगी। अतः प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी की तुलनात्मक साहित्य की यह परिभाषा काफी हद तक सही प्रतीत होती है कि 'तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ प्रतीति एवं ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन

हैं।' एक और बहुत ही महत्वपूर्ण बात यह है कि तुलनात्मक साहित्य कोई स्वायत्त सर्जनात्मक विधा न होकर एक ही भाषा या विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य के अध्ययन की एक विशेष दृष्टि मात्र है।

फ्रांस में Literature शब्द का अर्थ किया जाता है 'साहित्यिक अध्ययन' लेकिन भारत में इस शब्द का अर्थ है 'साहित्य'। यह शब्द संस्कृत काव्यशास्त्र से आया है जिसका अर्थ है शब्द और अर्थ का भाव। यहाँ सिर्फ शब्द और अर्थ की एकता ही नहीं है बल्कि उनकी अविच्छिन्नता का भी संकेत है। तुलसीदास ने लिखा है – 'गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न'।

लेकिन साहित्य में सिर्फ शब्द और अर्थ की एकता या उनके अविच्छिन्न संबंध से ही काम नहीं चलता। साहित्य में शब्द और अर्थ का यह सहित भाव विशिष्ट होता है। इसी विशिष्टता के चलते साहित्यिक सौंदर्य की उत्पत्ति होती है। शब्द और अर्थ के सृजनात्मक व्यवहार में इसका पैटर्न अलग-अलग लेखकों के साहित्य या अलग-अलग भाषाओं के साहित्य में भिन्न हो सकता है। इससे साहित्यिक पैटर्न में वैविध्य उत्पन्न होता है। इस विशिष्टता को समझने के लिए अन्य भाषाओं का ज्ञान जरूरी है।

दूसरी भाषा - सांस्कृतियों के ज्ञान से ही तुलनात्मक दृष्टि का उन्मेष होता है। दूसरी भाषाओं के ज्ञान से ही अनुवाद की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है जो कि तुलनात्मक अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण औजार है। भारत जैसे विविधता से भरे देश में दूसरी भारतीय भाषाओं को सीखने तथा अनुवाद प्रवृत्त को बढ़ावा देने की सख्त आवश्यकता है। वैश्वीकरण के चलते बड़े पैमाने पर हो रहे स्थानीय प्रयासों के अध्ययन तथा मानवताधिकार संबंधी अध्ययनों ने तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का कार्यभार बढ़ा दिया है।

तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को भी नई वैश्विक परिस्थितियों में अपना रूप बदलना पड़ा है। इसने तुलनात्मक साहित्य का क्षितिज किया है तथा नई अस्मिताओं, लैंगिक अध्ययनों, जति या रंग के आधार पर विषमताओं के अध्ययनों को भी अपने दायरे में ले लिया है। वैश्वीकरण के चलते बड़े पैमाने पर हो रहे स्थानीय प्रयासों के अध्ययन तथा मानवाधिकार संबंधी अध्ययनों ने तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का कार्यभार बढ़ा दिया है। भारत जैसे बहुभाषिक एवं संस्कृति बहुल तथा विशाल भौगोलिक क्षेत्र वाले देश में जहां बोली, बानी, रीति-रिवाज, तथा जातीय और लैंगिक विषमताएं अपने विकट रूप में मौजूद है; इन अध्ययनों का महत्व बहुत बढ़ गया है।

3.4. तुलनात्मक साहित्य और अनुवाद का अंतर्संबंध

तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययनों में अनुवाद की भूमिका पर चर्चा करें हमें यह जान लेना चाहिए कि 'तुलनात्मक साहित्य तथा अनुवाद का अन्तर्सम्बन्ध' पद का वास्तविक अर्थ क्या है। अनुवाद अध्ययनों को अक्सर इन सवालों से जूझना पड़ता है कि क्या ये अविच्छिन्न सांस्कृतिक स्मृति का अन्त करते हैं या इसके विलोपन को बढ़ावा देते हैं।

वाल्टर वेंयमिन का बहुत ही प्रसिद्ध कथन है कि एक अच्छा अनुवाद स्रोत भाषा की मृत्यु तथा इसके भावी लक्ष्य भाषा में अन्तरण के बीच खिंची रेखा को लांघकर ही मूल का नया जीवन संभव बना सकता है। इससे इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि अनुवाद सिर्फ भाषा रूपांतरण से कुछ ज्यादा है। अच्छा अनुवाद मूल भाषा के साहित्य का लक्ष्य भाषा में पुनर्मृजन है। यहाँ पुनर्मृजन का अर्थ मूल भाषा के संदर्भ तथा आशयों से विचलन नहीं है।

महाकवि निराला 'चाबुक' में लिखते हैं कि मूल का अक्षरशः अनुवाद जरूरी नहीं परंतु अर्थ भी बदलना जरूरी नहीं है। तो प्रश्न उठता है कि अनुवाद सृजन है या मात्र अनुकरण है। प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार "अनुवादक का काम न तो सृजनात्मक है और न ही यह अनुकरणात्मक कला है। अनुवाद में अनुवादक की प्रेरणा काम नहीं करती इसीलिए अनुवाद कार्य सृजनात्मक नहीं होता। अनुवादक तो कृति के अनुरूप सृजन करता है मगर कृति में निहित विचारों को मात्र प्रस्तृत नहीं करता, उसको रूपान्तरित करता है। इसीलिए अनुवाद कार्य अनुकरणात्मक भी नहीं होता। अनुवादक एक इस प्रकार का स्रष्टा है जो लेखक के यथार्थ सम्मुख अपने को समर्पित करता है।"

इस कलात्मक प्रक्रिया में अनुवादक को मूल लेखक की दुनिया को फिर से जीना पड़ता है। उनके अनुसार अनुवादक का काम है बीज का पता लगाना। जैसा कि अंग्रेजी के कवि शेली ने कहा कि पौधे को फिर से बीज में फूटना पड़ता है, नहीं तो उसमें फूल नहीं खिल पाते। ओविड के 'एपिस्टल' के अनुवाद की भूमिका में ड्राईडन (1680) ने कहा था कि साहित्यिक अनुवाद तीन प्रकार के होते हैं।

पहला 'मेटाफ्रेज' जहाँ शब्दशः अनुवाद किया जाता है। दूसरा होता है 'पैराफ्रेज' यहाँ अनुवाद अपनी ओर से काफी छूट लेता हैं और तीसरा 'इमीटेशन' जहाँ अनुवादक मूल के मात्र कुछ संकेतों को ग्रहण करता हुआ पूर्ण स्वतंत्रता का प्रदर्शन करता है। प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार 'वस्तुतः आदर्श अनुवादक शब्दों का मिलान नहीं करता वह प्रतिपक्षी भी नहीं होता। वह अधिवक्ता होता है। सफल काव्यानुवाद संपूर्ण रूप से आत्मसातीकरण पर निर्भर होता है। अनुवादक की आत्मसातीकरण की प्रक्रिया इतनी महत्वपूर्ण होती है कि वह पूरी सच्चाई के साथ अपनी ही बात कहता है और अनुवाद के नाम पर सचेतन रूप से अपने पाठकों से सीधा संचारण करता है।

3.5. तुलनात्मक साहित्य का भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकास में अनुवादों के योगदान पर विचार करने से पहले हमें समझ लेना चाहिए कि भारतीय साहित्य का अर्थ-संदर्भ क्या है। भारतीय साहित्य कहने से उसके एक वचन अर्थ का संकेत मिलता है। किन्तु यह सर्वज्ञात है कि भारत बहुभाषी तथा बहुल संस्कृतियों का देश है। तब प्रश्न उठता है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य को क्या भारतीय साहित्य कहा जा सकता है। इस बारे में पश्चिमी दृष्टि एकरैखिक रही है।

इंग्लैण्ड, फ्रांस और अमेरिका में ब्रिटिश, फ्रेंच और अमरीकी साहित्य हो के लिए उसका अंग्रेजी और फ्रेंच में लिखा होना अनिवार्य होगा। अन्य भाषाओं में लिखे गए साहित्य को ब्रिटिश या फ्रेंच साहित्य कहने में उन्हें विखंडन बोध होता है। 1917 की सोवियत क्रान्ति के बाद स्टालिन की भाषानीति ने रूसी भाषा को सोवियत संघ के सभी राज्यों के लिए अनिवार्य बना दिया था। यह निर्णय उसी एकरैखिक दृष्टि का परिणाम था जिसमें बहुभाषिकता और संस्कृति बहुलता को अलगाववादी नजरिये से देखा जाता है।

भारत की स्थिति इससे भिन्न रही है। पुराने समय से ही हमारी भू-राजनैतिक स्थिति कुछ ऐसी रही है कि हमारा सामना निरंतर नवीन संस्कृतियों से होता रहा है। खैबर के पार से आने वाले लड़ाके शताब्दियों तक यहाँ आते रहे हैं। उनके साथ उनकी संस्कृतियां तथा भाषा भी आती रही है। शताब्दियों के इस संसर्ग में भिन्न भाषा संस्कृतियों में एक विशिष्ट घालमेल तैयार कर दिया है। हमारी चेतना को इस मेल मिलाप के प्रति एक तरह से कंडीशंड (अनुकूलित) कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि दूसरी भाषा एवं संस्कृतियाँ हम में भय या आशंका या हीनता का संचार नहीं करती बल्कि अपनी स्वतंत्र इयत्ता और विशिष्टता के कारण आकर्षित करती हैं। इसे विरुद्धों का सामंजस्य कहा जा सकता है।

भारतीय साहित्य की अवधारणा इसी अनेकता में एकता के सिद्धांत से परिचालित है। इस एकता के उद्देश्य को प्रमाणित करने के लिए 1954 में साहित्य अकादमी की स्थापना की गई थी। इस अवसर पर डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि भारतीय साहित्य एक है किन्तु वह बहुत सी भाषाओं में लिखा जाता है। सर्वप्रथम सुनीति कुमार चैटर्जी ने अपनी किताब 'लैंगवेजेस एंड लिटरेचर्स ऑफ इंडिया' में भारतीय साहित्य के लिए बहुवचन का प्रयोग किया था।

स्वतंत्र भारत में राज्यों की स्थापना भाषा के आधार पर की गई थी किन्तु यह भाषाई प्रान्तीयता हमारी विचारगत भिन्नता का आधार कभी नहीं बन पाई है। प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी का यह निष्कर्ष सटीक है कि "परिणामतः भारतीय साहित्य के संदर्भ में विशेष तथा वैश्विकता, क्षेत्र और देश या प्रदेश तथा राष्ट्र (Nation State) के अंतर को, उनके तनाव को एक-दूसरे के परिपूरक (Complementary) के रूप में स्वीकार करना पड़ता है।" भारतीय साहित्य में शैलीगत विभिन्नता और सांस्कृतिक विशिष्टताओं के वैविध्यमय संसार के बावजूद विषय वस्तु की एकता मिलती है। चाहे मध्यकाल की भक्ति कविता हो या उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय नवजागरण, दोनों ही साहित्यिक, सामाजिक, आंदोलनों में हमें विषयवस्तु की एकता के दर्शन होते हैं। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के प्रसार के बारे में प्रसिद्ध है कि 'भक्ति द्राविड़ी उपजी लाए रामानंद'।

दक्षिण से चली यह भक्ति की धारा पूरे भारत में आप्लावित होती है। इसी तरह आधुनिक काल में नवजागरण की धारा ने तमिल में सैमुअल वेदनायकम पिल्लई, तेलुगु में कृष्णम्मा चेट्टी, मलयालय में चंदु मेनन, हिंदी में भारतेन्दु और उनके मंडल के लेखकों, बांग्ला में मेरी हैचिन्सन, सबको राष्ट्रवाद एवं समाज सुधार की चेतना का वाहक बनाया था। आधुनिक भारतीय साहित्य अनुवाद गतिविधियों से लगातार एकता की इस भावना को पुष्ट कर रहा है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रवादी भावनाओं ने साम्राज्य की भाषा अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को स्वीकार करने पर बल दिया था। गांधीजी के आगमन ने इस भावना में प्राण संचार किया। उन्होंने हिंदी की अखिल भारतीयता को देखते हुए उसे ही स्वीकार करने पर बल दिया था।

हिंदी राष्ट्रीय एकता मंच बन गई थी 1913 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उनके काव्य 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद पर नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसने भारतीय अनुवादकों के सामने एक बड़ा लक्ष्य और प्रेरणा रख दी। मुंशी प्रेमचंद ने दो नोबेल पुरस्कार विजेताओं मौरिस मेटरलिंक तथा जॉन गॉल्सवर्दी की पुस्तकों के उर्दू में अनुवाद किए। लियो टॉलस्टॉय की कहानियों का भी उन्होंने अपनी तरह से भारतीय रूपान्तरण किया था।

विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं से अनुवाद को भी राष्ट्रीय साहित्य के एकीकरण का माध्यम माना जाने लगा। कहना न होगा कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनुवाद गतिविधियों की महत्ता को स्वीकार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारत की बहुभाषी एवं सांस्कृतिक बहुलता के संदर्भ में उसे एक सामाजिक राजनीतिक आवश्यकता के रूप में ग्रहण करें। भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकसित होते जाने एवं स्थापित होने के लिए यह अनिवार्य हैं।

3.6. तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की भूमिका

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की अहम् भूमिका होती है। अनुवाद के अभाव में अध्येता विभिन्न साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में सक्षम नहीं होगा। अभी भारत में तुलनात्मक साहित्य अध्ययन एक भाषा में लिखे गए साहित्य के अध्ययन तक सीमित था। किन्तु साक्षरता की दर बढ़ने तथा संचार माध्यमों की व्यापकता और वैश्वीकरण

ने नयी-नयी भाषाओं को सीखने तथा उनकी संस्कृतियों को समझने की एक नई जिज्ञासा पैदा की है। लंबे समय तक अंग्रेजों का उपनिवेश रहने के कारण अंग्रेजी भाषा ही एक मात्र खिड़की थी जो हमारे लिए बाहरी दुनिया के ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य की तरफ खुलती थी। विश्व साहित्य का अर्थ हमारे लिए अंग्रेजी साहित्य से ही था।

1917 की सोवियत क्रान्ति के बाद बड़े पैमाने पर रूसी साहित्य का हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। इससे भारतीय पाठकों के ज्ञान क्षितिज का विस्तार हुआ था यह प्रेरणा भी मिली कि हमें भी देश और दुनिया की दूसरी भाषाएं सीखनी चाहिए तथा उनका अनुवाद करना चाहिए।

प्रारंभिक दौर में दुनिया की अन्य भाषाओं और यहां तक कि भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिंदी में अनुवाद भी अंग्रेजी के माध्यम से हुआ। किन्तु यह प्रवृत्ति अब बदल रही है तथा सीधे मूल भाषा से अनुवाद की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस प्रवृत्ति ने हमारे दरवाजे दुनिया के लिए तो खोले ही हैं भारतीय भाषाएँ भी एक-दूसरे के करीब आई हैं। अन्तर भाषिक अनुवादों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को एक नई गति तथा ऊर्जा प्रदान की है। एक अन्तर साहित्यिक संचार का माध्यम होने के कारण तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को समृद्ध बनाने में अनुवादों की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।

तुलनात्मक साहित्य में काफी समय तक अनुवाद अध्ययन को एक उप- अनुशासन के रूप में देखा जाता था। अनुवाद अध्ययनों के महत्व ने उसके एक अलग अनुशासन के रूप में स्थापित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। जैसाकि कि सूसन वेसनेट का कहना – "The field of comparative literature has always claimed the studies on translation as a subfield, but now, when the last ones are establishing themselves, for their part, firmly as a discipline based on the inter-culture study, offering as well a methodology of a certian rigor, both in connection with the theoretical work and with the descriptive one, the moment has come in which comparative liteature has not such an appearance to be a discipline on its own rather to constitute a branch of something else."

अनुवाद अपने आप में ही एक तुलनात्मक गतिविधि है। साहित्यिक अनुवाद की प्रत्येक गतिविधि क तुलनात्मक प्रक्रिया है। भारत जैसे बहुभाषिक देश में अनुवाद को कला या विज्ञान; जिस रूप में भी हो अलग अनुशासन के रूप में स्वीकार करने का समय आ गया है। अनुवाद तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का एक अहम् अंग है सिर्फ इसलिए उसे तुलनात्मक साहित्य का पिछलग्गू नहीं मान लेना चाहिए।

अनुवाद विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के आपसी आदान-प्रदान को सुगम बनाता है। जैसाकि ए पोपोव का मानना है। "Lieratures borrow from each other, directly or through the medium of translation that element which is necessary for their own growth?" अनुवाद गतिविधि ने साहित्यिक अध्ययनों को नवीन आयाम देने में अहम् भूमिका निभायी है। दाँते, होमर, सर्वोन्तिस, दास्तॉयवस्की, बाल्जाक, लियो टालस्टॉय, चेखव, गोर्की जैसे पुराने क्लासिकल लेखक हों या आज के मार्खेज, मारियो वर्गास ल्योसा, टोनी मॉरिसन, जे. एम. कोयजी जैसे उपन्यासकार हों। इनका अध्ययन हमारे लिए भाषा की सीमाओं का मोहजात नहीं है।

अंग्रेजी या उसमें किये अनुवादों के अतिरिक्त अब हिंदी अनुवादों का प्रसार भी हुआ है। इससे इन लेखकों को बड़ा पाठक वर्ग मिला है। गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक जैसे लेखकों ने महाश्वेता देवी के उपन्यासों के अनुवाद तथा उन पर किए अपने अध्ययनों से वैश्विक स्तर पर भारतीय साहित्य की धाक जमाई है। सलमान रश्दी जैसे कुछ पूर्वाग्रही लेखकों

को छोड़ दिया जाय; जिनका मानना है कि भारत में अंग्रेजी में लिखा जा रहा साहित्य ही श्रेष्ठ है तथा भारतीय भाषाओं के साहित्य का स्तर ऊँचा नहीं हैं तो आज भारतीय साहित्य ने दुनिया भर में अपनी पहचान बनाई है। यह अनुवाद गतिविधियों के कारण ही संभव हो सका है। पिछली सहस्त्राब्दी के अंत तक जहाँ अंग्रेजी में लिखा जा रहा एंग्लोइंडियन साहित्य ही पूरी दुनिया में भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व करता नजर आता था, वहीं आज भारतीय भाषाओं के साहित्य तथा भाषा ज्ञान के लिए पूरी दुनिया में अभिरुचि विकसित हुई है।

आज भारत में दलित लेखक अफ्रीकी ब्लैक साहित्य से प्रभावित होता है या स्त्री लेखिकाएं अफ्रीकी और अमरीकी नारीवादी लेखिकाओं से प्रेरणा ग्रहण करती हैं तो इसकी वजह अनुवादों का सहज उपलब्ध होना भी है। इसी तरह भारतीय भाषाओं के साहित्य ने भी एक दूसरे को प्रभावित किया है। जैसे हिंदी के दलित लेखक मराठी या दक्षिण भारत में दलित लेखकों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं तो स्त्री लेखिकाएँ अपने विमर्श की शुरूआत ताराबाई शिन्दे के 1882 में लिखे लेख 'स्त्री-पुरूष तुलना' से करती हैं। इस तरह अनुवादों ने तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का लोकतांत्रिकीकरण संभव बनाया है। शरतचंद्र या महाश्वेता देवी को हिंदी का लेखक मानने वाले भी मौजूद हैं। उर्दू के मीर तथा गालिब जैसे शायर हिंदी पाठकों की जुबान पर है। इसका श्रेय श्रेष्ठ अनुवादों को जाता है।

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में अनुवाद की इस अतिमहत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए यह नितांत आवश्यक है कि हम अनुवाद कला, उसके स्वरूप और सिद्धांत से परिचित हों। क्योंकि गलत अनुवाद या कई बार जल्दबाजी में किए अनुवाद से अर्थ का अनर्थ होने की संभावना बनी रहती है। जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि अनुवाद मात्र मूल कृति का भाषानुवाद नहीं होता। अगर ऐसा होता तो फिट्जल्र्ड को उमर खैयाम की रूबाइयों का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए यह न कहना पड़ता कि भूसा भरे गिद्ध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया चाहूँगा (Better alive sparrow than a stuffed eagle)। इसीलिए प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी कहते हैं कि अनुवादक एक इस प्रकार का स्रष्टा है जो लेखक के यथार्थ के सम्मुख अपने को समर्पित करता है।

इस तरह अनुवाद एक ही समय में स्रोत भाषा से दूर जाने तथा स्रोत भाषा को उसी समय में पुनरवस्थित करने का प्रयत्न करता है। इस तरह से देखने पर अनुवादक का काम बहुत ही परिष्कृत तथा सूक्ष्म हो जाता है। अनुवादक का कार्य लेखक जो चाहता है उसकी व्याख्या न होकर वह क्या कहता है इसकी सूचना देना। इसीलिए उसका काम वृत्तकार (Commentator) के काम से मिलता-जुलता है। लेखक ने क्या कहा है और किस तरह से कहा है, यही अनुवादक की समस्या होती है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के इतिहास में अनुवाद की कड़ी को बहुत पहले संस्कृत से किए गए अनुवाद के पुराने इतिहास से जोड़ा जा सकता है।

संस्कृत पाठों का गरिमाभाव से स्थानीय भाषा में अनुवाद करते हुए लेखक दोनों ही भाषाओं को अपना मानते थे। इस तरह से वे सामाजिक गांधी के उदय तक भी औपनिवेशिक अनुवादों को बढ़ावा दिया जो अन्यथा प्रारंभिक मध्यकालीन अनुवादों की तुलना में प्रतिक्रियावादी थे। इसके बाद सर विलियम जोन्स और मैक्समूलर आदि जैसे भारतविदों के संस्कृत से किए अनुवाद हैं। इन अनुवादों ने हमारी अपनी ज्ञान सम्पदा तक हमारी पहुंच बनाई।

अनुवादों के माध्यम से ही टैगोर, प्रेमचंद, के. एम. मुंशी और वी.एस. खांडेकर ने भारतीय भाषाओं में अखिल भारतीय मान्यता पाई। आधुनिक समय में हबीब तनवीर जैसे रंग निर्देशकों ने संस्कृत नाटकों- मुद्राराक्षस और मृच्छकटिकम् का स्थानीय बोली में पुनरावतरण करके इन्हें जनप्रिय बना दिया है। इस तरह हम देखते हैं कि तुलनात्मक साहित्य अध्ययन में अनुवादों का बहुत बड़ा योगदान है। अनुवाद साहित्यिक गतिविधियों का एक बहुत ही परिष्कृत

रूप है जो स्रोत भाषा के मूल आशय का अतिक्रमण न करते हुए उसमें अन्तर्निहित विचारों, अर्थों को दूसरी भाषा में स्थानान्तरित करती है।

उत्तर-संरचनावादी जॉ अनुवाद को सृजनात्मक साहित्य के अनुरूप मानते हैं। उनके अनुसार पारंपरिक साहित्यिक डिस्कोर्स में किसी एक साहित्यिक पाठ को एक निर्बाध (absolute) पाठ के रूप में मान्यता मिलती रही है। इसका विखंडन करते हुए उत्तर संरचनावादियों का मानना है कि पाठक के लिए कोई भी पाठ अर्थ की अनुपस्थिति के अनुभव का एक नया अवसर होता है। अर्थात् पाठक को पाठ में से अर्थ निकालना पड़ता है और पाठक के लिए साहित्यिक पाठ सिर्फ एक 'ब्लू प्रिंट' है। पाठ में अर्थ का संघात उसका पाठक या अनुवादक करता है। इस दृष्टि से अनुवादक का कार्य सृजनशील लेखक के स्तर पर पहुंच जाता है।

3.7. सारांश

भारत जैसे बहुभाषी एवं सांस्कृतिक बहुलता वाले देश में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बिना अच्छे अनुवादों के तुलनात्मक साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। अनुवाद एक सांस्कृतिक गतिविधि है। अपने स्वभाव से ही यह अन्तरसांस्कृतिक तथा अन्तरसामाजिक होती है। अगर ऐसा न हो तो स्रोत भाषा के साहित्य की मूल संवेदना ही नष्ट हो जायेगी। अनुवाद एक तरह से स्रोत भाषा के साहित्य का लक्ष्य भाषा में सृजनात्मक अन्तरण होता है।

तुलनात्मक साहित्य अध्ययन पर हुए वैश्विक चिंतन में इसकी अवधारणा बहु संस्कृतिकता एवं सांस्कृतिक अध्ययनों के रूप में हुई है। पुराने औपनिवेशिक काल में 'यूरोप केन्द्रित' और 'तुलनात्मक अध्ययन एवं शीत युद्ध के दौर के क्षेत्रीय अध्ययनों और तुलनात्मक अध्ययनों' जो कि प्रच्छन्न रूप में औपनिवेशिक वर्चस्ववादी दृष्टिकोण एवं साम्राज्यवादी न्यस्त रणनीतियों का हिस्सा था; उसका अन्त हो चुका है। तुलनात्मक साहित्य अध्ययन ने नई अस्मिताओं लैंगिक अध्ययनों, जाति या रंग के आधार पर विषमताओं के अध्ययनों को भी दायरे में ले लिया है।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में अनुवाद की अहम भूमिका होती है। अन्तरभाषिक अनुवादों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में तुलनात्मक साहित्य अध्ययनों को जब नई गति और ऊर्जा प्रदान की है। एक अन्तर साहित्यिक अध्ययन का माध्यम होने के कारण तुलनात्मक साहित्य को समृद्ध बनाने में अनुवादों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अनुवाद अपने-आप में तुलनात्मक गतिविधि है। अनुवाद विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों के आपसी आदान-प्रदान को सुगम बनाता है। अनुवाद मात्र मूल कृति का भाषानुवाद नहीं होता। अनुवाद एक ही समय में स्रोत भाषा से दूर जाने तथा स्रोत भाषा को उसी समय में पुनर्रावस्थित करने का यत्न करता है।

अनुवादक का कार्य लेखक जो चाहता है उसकी व्याख्या न होकर वह क्या कहता है इसकी सूचना देता है। इसीलिए उसका काम वृत्तकार (Commentator) के काम से मिलता-जुलता है। लेखक ने क्या कहा है और किस तरह से कहा है, यही अनुवादक की समस्या होती है। इस तरह से हम देखते हैं कि अनुवाद साहित्यिक गतिविधियों का एक बहुत ही परिष्कृत रूप है। यह स्रोत भाषा के मूल आशय का अतिक्रमण न करते हुए उसमें अन्तर्निहित विचारों, अर्थों को दूसरी भाषा में स्थान्तरित करती है। देरिदा अनुवाद को सृजनात्मक साहित्य के अनुरूप मानते हैं उनके अनुसार पाठ में अर्थ का संधान उसका पाठक या अनुवादक करता है। इस दृष्टि से अनुवादक का कार्य सृजनशील लेखक के स्तर पर पहुंच जाता है।

भारतीय चेतना को इस मेल मिलाप के प्रति एक तरह से अनुकूलित कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि दूसरी भाषा एवं संस्कृतियां हममें भय, आशंका या हीनता का संचार नहीं करतीं बल्कि अपनी स्वतंत्र इयत्ता और विशिष्टता के कारण हमें आकर्षित करती है। इसे विरुद्धों का सामंजस्य कहा जा सकता है। भारतीय साहित्य की अवधारणा इसी अनेकता में एकता के सिद्धांत से परिचालित है।

स्वतंत्र भारत में राज्यों की स्थापना भाषा के आधार पर की गई थी किन्तु यह भाषायी प्रान्तीयता हमारी विचारगत भिन्नता का आधार कभी नहीं बन पाई। कहना न होगा कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में अनुवाद गतिविधियों की महत्ता को स्वीकार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारत की बहुभाषिक एवं सांस्कृतिक बहुलता के संदर्भ में उसे एक सामाजिक, राजनीतिक आवश्यकता के रूप में ग्रहण करें। भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकसित होते जाने एवं स्थापित होने के लिए यह अनिवार्य है।

3.8. बोध प्रश्न

1. तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में तुलनात्मक साहित्य का प्रारंभ और परिभाषाएँ परिभाषाओं के बारे में लिखिए।

2.तुलनात्मक साहित्य अनुवाद का अन्तरसम्बन्ध, भारतीय परिप्रेक्ष्य के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

3. भारतीय साहित्य की अवधारणा के विकास में अनुवाद की भूमिका के बारे में विस्तार रूप में लिखिए।

3.9. सहायक ग्रंथ

1. तुलनात्मक शोध और समीक्षा: पी. आदेश्वर राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।

2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन: शिव सत्यनारायन।

3. तुलनात्मक साहित्य-डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

4. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

5. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

6. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

7. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. के. रामनाथन विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

4. भारतीय साहित्य की अवधारणा

4.0. उद्देश्य

तुलनात्मक साहित्य के द्वारा विभिन्न भाषाओं की साहित्य के अध्ययन, अंतर्निहित भाव, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों के बारे में जान पाते हैं। ऐसी तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत भारतीय साहित्य में इसकी इतिहास आदि के बारे में जानने की आवश्यकता है। इस अध्याय में इन अंशों के बारे में पढ़ेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम-

- भारतीय साहित्य की अवधारणा के बारे में,
- तुलनात्मक भारतीय साहित्य के बारे में,
- भारतीय साहित्य के इतिहास की संकल्पना
- तुलनात्मक आलोचना और उसका नया रूप
- अंतर्विद्यावर्ती आलोचना का स्वरूप और विश्लेषण के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना

4.2. भारतीय साहित्य की अवधारणा

4.3. तुलनात्मक भारतीय साहित्य

4.4. भारतीय साहित्य के इतिहास की संकल्पना

4.5. तुलनात्मक आलोचना

4.6. अंतर्विद्यावर्ती आलोचना- स्वरूप- विश्लेषण

4.7. सारांश

4.8. बोध प्रश्न

4.9. सहायक ग्रंथ

4.1. प्रस्तावना

विश्व के विभिन्न देशवासियों के बीच जाति, वर्ण और धर्म आदि के वैमनस्य होते हुए भी उनके मस्तिष्क एवं हृदय में प्रायः समानता पायी जाती है। चिरन्तर काल से मानव हृदय एवं मानव मस्तिष्क विकास के पथ पर अग्रसर होते आये हैं। विश्व मानव के सतत प्रयासों के फल स्वरूप विश्व- जीवन के प्रशस्त बना है। विश्व साहित्य में अभिव्यक्त मानव-चेतना एवं मानव हृदय एक ही हैं। मानव मन अपने देश, काल, भाषा एवं साहित्य के अपने सार्वभौम एवं चिरन्तर स्वरूप

का परिचय देता आ रहा है। वातावरण, आचार-विचार, संस्कृति एवं सभ्यता आदि विषयों में भिन्नता होते हुए भी मानव - मन एक ही साँचे में ढला है। मानव की यह साहित्य एवं कलाओं में अपना समग्र स्वरूप ग्रहण करती है।

वर्डस्वर्थ के अनुसार थल और वातावरण, भाषा और रहन-सहन शासन और रीति-रिवाज आदि में भिन्नता होते हुए भी विश्व-समाज के साम्राज्य को कवि अपने आवेग और ज्ञान के सूत्रों में बाँध देता है। विभिन्न साहित्यों के अध्ययन से साहित्य के दो प्रधान महत्व दिखाई देते हैं। विभिन्न साहित्यों में व्यक्त मानव-चेतना की एकता और भाषा, जन समुदाय के सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण, सभ्यता, संस्कृति आदि के कारण विभिन्न साहित्य होते हैं। भिन्नता भाषा केवल साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। साहित्य के द्वारा मानव - समुदाय के भाव-जगत एवं विचार- जगत अभिव्यक्त हर भाषा की अपनी विशेषता होती है। सभी भाषाओं में भावों का अस्तित्व है। भाव मानवनिष्ठा है और भाषा जाति निष्ठा। भिन्न साहित्यों की भाषागत विशेषताओं में से साहित्यगत एकरूपता का निरूपण तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बीच विभिन्नताओं के कारणों की खोज करना उसका दूसरा उद्देश्य है। तुलनात्मक अध्ययन का लक्ष्य हमारे सीमित ज्ञान का विस्तार करना है और अन्य साहित्यों की उपलब्धियों से हमें अवगत कराना है। भारत जैसी बहुभाषी देश में लोगों के बीच अभिव्यक्तियों के आदान-प्रदान में तुलनात्मक साहित्य एक कड़ी बन जाती है। भारतीय साहित्य में तुलनात्मक साहित्य का इतिहास, भारतीय साहित्य के तुलनात्मक साहित्य के आलोचना नाई नया रूप आदि के बारे में जानेंगे।

4.2. भारतीय साहित्य की अवधारणा

भारतीय साहित्य की अवधारण साहित्य और जनता के संपर्क पर आधारित होते हैं। मानव प्राचीन काल से देश की संस्कृति और विकास का सृजन साहित्य में करता आया है। हर एक समाज के साहित्य में भिन्नताएँ, समानताएँ आई जाती हैं। इन विविधताओं को, समानताओं के पहचानने के लिए, जानने के लिए तुलनात्मक अध्ययन की जरूरत है। विश्व साहित्य की भाँति भारतीय साहित्य की तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। भारतीय साहित्य की तुलनात्मक अध्ययन एक बहुत बड़ा और व्यापक सेवा है।

साहित्य मनुष्य की आंतरिक अनुभूतियों और संवेदनाओं का अभिव्यक्ति रूप होता है। संसार के मानव की अनुभूतियाँ, आंतरिक भावनाएँ, उनको महसूस करने तथा भाव प्रकट करने की शक्ति सार्वभौमिक है। मानव की संवेदनाएँ जैसे क्रोधा, हर्ष, प्रेम, राग, द्रवेश, वात्सल्य आदि. को प्रकट करनों, साहित्य का मूलभूत ढाँचा है। यहां अभिव्यक्ति विश्व के सभी देशों में सभी भाषाओं में दिखते है। भारत जैसी बहुभाषिक, बहु सांस्कृतिक राष्ट्र में इस बात को ध्यान में रखना होगा कि अलग-अलग भाषाओं के साहित्य में व्यक्त करने में वाले संवेदनाओं की समानता असमानताओं को ध्यान में रख कर साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। भारतीय भाषाओं में लिखा गया या लिखा जा रहा साहित्य में थोड़ी बहुत भिन्नता के साथ अधिकतर एकता या समानता की स्थिति दिखाई पड़ती है। इस एकता और समानता ही भारतीय साहित्य की अवधारणा का केंद्र बिंदु है।

हमारे साहित्य भारतीय की अवधारणा जनता तथा साहित्य के संपर्क की पहचान पर आधारित साहित्य को भाषा, भौगोलिक क्षेत्र, राजनीतिक एकता के साथ-साथ इस देश की जनता के आधार पर पहचाना जाता है। समान सांस्कृतिक क्षेत्रों का निर्माण भारतीय साहित्य के परस्पर संबंधों पर निर्भर रहता है। साहित्य में दिखाई देने वाली समानता ही भारतीय साहित्य की आधार है। भारतीय साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। प्रो. दिल्लीप सिंह के

अनुसार "भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जिन 22 भाषाओं और बोलियों का उल्लेख है, उनका साहित्य अत्यंत समृद्ध है। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इन सभी भाषाओं में साहित्यिक धाराएँ लगभग समानांतर रूप में प्रवाहित मिलती है। इसके साथ ही इन सभी भाषाओं का राष्ट्रीय चेतना और उसमें आने वाले परिवर्तनों के साथ एक - सा संबंध रहा है तथा ये सभी राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों से एक-सा प्रभावित रही है। करने का तात्पर्य यह है कि ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की सभी भाषाएँ और उनका साहित्य भी एकता के सूत्र में बंधा हुआ प्रतीत होता है इसलिए भारत की इन भिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य को भारतीय साहित्य कहा गया है।"

'भारतीय साहित्य' की अवधारणा के निर्माण सबसे पहले श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टी से किया है। हिन्दी साहित्यकारों में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नगेंद्र जैसी विद्वानों ने इस अवधारणा को अपने-अपने तरीके से विकास किया। डॉ. रामविलास वर्मा ने बड़ी दृढ़ता से कहा कि "इस भारत में किसी भी काल, किसी भी भाषा में जो श्री साहित्य रचा गया है, उस का विवेचन भारतीय साहित्य के अन्तर्गत होना चाहिए। किसी भी भाषा के साहित्य का विवेचन अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही करना उचित है। इसलिए कि इस परिप्रेक्ष्य के बिना हम किसी एक भाषा के साहित्य का विवेचन कर ही नहीं सकते।" इस तरह समस्त भारतीय भाषाओं में लिखे जाने वाले साहित्यों के बीच समानता जो है वह उससे भारतीय साहित्य अवधारणा को बल मिलता है। भारत की अलग-अलग भाषाओं में जो कुछ लिखा गया और लिखा जा रहा है सब भारतीय साहित्य कहलाती है। भारतीय साहित्य की एकता भाषागत एकता नहीं विचारों और भावनाओं की एकता है। भारतीय साहित्य भारतीय जनता की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का इतिहास है।

भारतीय साहित्य का आरंभ आदिकाल से लेते है तो उस समय समस्त भारतीय भाषाओं में साहित्य का शुरुआत नाथ साहित्य से हुआ। मराठी और बंगला में नाथ साहित्य संप्रदाय का प्रबल रहा तो पंजाब और राजस्थान में श्रीनाथ पंथी का दक्षिण में कर्नाटक के वीर शैव गान और तमिल में नाथनारों की परंपरा रही। शैव साहित्य के बाद भारतीय साहित्य के परंपरा में चारण काल के साहित्य मिलते है। तीसरे चरण पर भक्ति आन्दोलन को देखते है। सारे भारत में भक्ति आन्दोलन के समय जो साहित्य लिखा गया सब की प्रवृतियाँ एक ही है। भक्ति साहित्य सारे भारत में एक जैसी भावनाओं को लेकर लिखे गए साहित्य है। भक्ति साहित्य के बाद प्रेमाख्यान काव्य की रचना संपूर्ण भारत में देख सकते हैं।

वैष्णव साहित्य को भी मणिपुरी साहित्य से लेकर मलयालम साहित्य तक रचा गया है। तमिल के आलवार भक्त कवियों के साथ-साथ ब्रजभाषा, बंगला, गुजराती और उड़िया भाषाओं में कृष्ण काव्यधारा प्रमुखता से बनी है। कृष्ण लीला और रामलीला से जुड़े दृश्य- काव्य - नाट्य साहित्य और रंगमंच की व्याप्ति भी अखिल भारतीय रही है। सारी भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग का आरंभ भी एक ही समय में हुआ था। यह आधुनिक काल स्वतंत्रता आंदोलन थे के साथ जुड़ा हुआ था। स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित साहित्य, लगभग सभी भारतीय भाषाओं में लिखे गए है। स्वतंत्रता के बाद साम्यवादी सामाजिक चेतना का आविर्भाव भी लगभग समान दृष्टि से है। इस तरह भारतीय साहित्य की सारे में राष्ट्र में समय के साथ-साथ समान रूप में चलते आ रहे हैं।

कृष्ण कृपलानी का कहना है कि "विभिन्न भाषाओं एवं युगों में रचित भारतीय साहित्य के बदलते हुए प्रारूप के बावजूद कुछ तत्व दूसरों की अपेक्षा अधिक विशिष्ट प्रमाणित हुए हैं और जिन्हें काल नष्ट नहीं है। इनमें से एक है एक अमीन सत्ता की प्रखर अनुभूति। यह अनुभूति बर्फ से ढके हुए हिमालय की तरह भारतीय साहित्य के दृश्य यह के साथ

हमेशा जुड़ी रही है।" वस्तुतः एकता के इन तत्वों की सहायता से ही भारतीय साहित्य के एकक रूप का ढांचा तैयार हो जाता है। भारतीय साहित्य का विश्लेषण करने पर हिन्दू- बौद्ध तथा आर्य-द्रविड़ परंपरा अरबी -फारसी परंपरा को आत्मसात करती दिखाई पड़ती है। बाद में पाश्चात्य प्रभाव का भी आत्मसात करती दिखाई पड़ती है। इस तरह हमारी साहित्यक परंपरा में एक अनटूटा निरंतरता दिखाई पड़ता है और साथ ही हमारी आधुनिकता में प्राचीनता की प्राणशक्ति स्पष्ट उभरती हुई प्रकट होती है। आज नाना प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक कारणों से भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति या उसके मूलस्वर पर दबाव पड़ा है परंतु फिर भी यह मूल स्वर अपने जहिल विन्यास में अब भी विद्यमान है।

4.3. तुलनात्मक भारतीय साहित्य

"तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का अंतः साहित्यिक अध्ययन है जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलता है और जिसका उद्देश्य होता है- अनेकता में एकता का संधान।" -डॉ. नगेन्द्र

तुलनात्मक साहित्य विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है। -इंद्रनाथ चौधुरी

भारतीय संदर्भ में भारतीय साहित्य की अवधारणा ही अपने आप में तुलनात्मक साहित्य है। क्यों कि यहां एक से अधिक साहित्यों की ओर संकेत है। विभिन्न भारतीय साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन की एक स्वतंत्र स्थिति है। भारत एक बहु भाषिक शब्द है। बहुभाषिक स्थिति बहुभाषिय अवस्थिति से भिन्न एक विशिष्ट चेतनता है और इस स्थिति में पनपने वाले साहित्यों के अध्ययन के लिए उन मूल ऐतिहासिक तथा साहित्यिक स्त्रोतों से परिचित होना पड़ता है जिनकी प्रेरणा थे इन साहित्यों में लगभग एक ही प्रकार की आवेगात्मक तथा बौद्धिक अनुभूतियों का प्रसार हुआ है। भारतीय तुलनात्मक साहित्य की यह पहली विशेषता है जिसके फलस्वरूप तुलनात्मक साहित्य से इसकी स्वतंत्र स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

भारतीय साहित्य में एक ही प्रकार के ऐतिहासिक तथा साहित्यिक स्त्रोतों से प्रभावित होने के कारण यहां सादृश्यमूलक अध्ययन के लिए अधिक अवसर है। एक निश्चित ऐतिहासिक स्थिति में उभरनेवाली घटनाओं से प्रभावित साहित्य का अध्ययन में कई दूसरा प्रतीयमान संबंध नहीं होता है। अलग-अलग भाषाओं में रचित साहित्य का एक ही आश्रम से अनुलंबीय ढंग से सहित्येतिहास का अध्ययन भारतीय तुलनात्मक साहित्य का एक बहुत बड़ा प्रमुख क्षेत्र है। एकक साहित्य के रूप में भारतीय साहित्य की अवधारणा का निर्माण तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के अक्षय से ही पूरा किया जा सकता है। आधुनिक काल के साहित्य के संदर्भ में एक और पश्चिम का प्रभाव पड़ा और दूसरी ओर प्राचीन के पुनर्निर्माण की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। इन दोनों का विवेचन एक जैसा नहीं हो सकता।

तुलनात्मक भारतीय साहित्य के संदर्भ में यह प्रभाव विवेचन पाश्चात्य तुलनात्मक साहित्य के प्रभाव विवेचन के अनुरूप नहीं हो सकता। इसका कारण है अंग्रेजी ज्ञान विज्ञान हमारी चिंतन, धारा में प्रवेश कि कर लिया था। हालंकि भारतीय लेखकों के दो वर्ग जैसे कि प्राचीन भारतीय परंपरा के लेखक और पाश्चात्य अंग्रेजी साहित्य के प्रति एक औपनिवेशिक आकर्षण से पनपने वाले लेखक। इस द्विआधारी संरचना तनाव की ऐतिहासिक व्याख्या आवश्यक है। भारतीय साहित्य के इतिहास के निर्माण में इस द्विआधारी संरचना की ध्यान में रखना पड़ता है और पाश्चात्य प्रभाव का हमारी परंपरा से संघर्ष और उससे पैदा होनेवाल, तनाव और उसका विश्लेषण जरूरी हो जाता है। भारतीय साहित्य के

प्रभाव विवेचन के अंतर्गत इस तनाव का अध्ययन संपूर्ण भारतीय साहित्या अध्ययन को तुलनात्मक बनाने के लिए बाध्य करता है।

4.4. तुलनात्मक साहित्य के इतिहास की संकल्पना

किसी एक भारतीय भाषा में रचित एकक साहित्या अध्ययन में कृतियों का अध्ययन, लेखक के व्यक्तित्व का अध्ययन और साथ ही काल, परिवेश और जातिगत संदर्भों के अध्ययन में कारण-कार्य संबंधों का ध्यान रखना जरूरी होता है। मगर तुलनात्मक साहित्याध्ययन में कारण- कार्य संबंधों के दूसरे गहरे रूपों से परिचित होना बहुत ही आवश्यक है इसलिए साहित्य के इतिहास से अलग तुलनात्मक साहित्यिक इतिहास की रचना तुलनात्मक साहित्य की प्रविधि से ही संभव हो पाता है। जैसे बंगला के कवि मधुसूदन दत्त पहले अंग्रेजी में लिखना शुरू किया।

तुलनात्मक साहित्यिक इतिहास के द्वारा हम पता लगा सकते है कि कवि अंग्रेजी में लिखना क्यों पसंद करते थे, कब से लिख रहे थे, बंगला साहित्य में लिखना कब शुरू किया इन सब के कारण ढूँढ कर हमारे सामने ला देगा। वस्तुतः तुलनात्मक साहित्य साहित्यिक के पद्धति - विज्ञान के आश्रय से भारतीय साहित्य के तुलनात्मक इतिहास की एकक अवधारणा बन सकती है। वस्तुतः भारतीय साहित्य के तुलनात्मक साहित्यिक इतिहास की रचना में पाश्चात्य साहित्य के साथ भारतीय साहित्य के संबंधों तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित साहित्यों के पारस्पारिक संबंधों में पहला संबंध बिल्कुल ऐतिहासिक है।

दूसरा अंशतः ऐतिहासिक एवं अंशतः काव्यशास्त्रीय सौंदर्यपरक रहा है। स्वतंत्रता के बाद पाश्चात्य साहित्य के साथ हमारे ऐतिहासिक संबंध में कोई खास अंतर नहीं है। मध्ययुगीन भारतीय साहित्य के साथ अरबी, फारसी साहित्य के ऐतिहासिक एवं काव्यशास्त्रीय सौंदर्य परक संबंधों का अध्ययन भी इसमें जुड़ा हुआ है। भारतीय तुलनात्मक साहित्य के लिए भारतीय साहित्यिक इतिहास की संकल्पना भी की रचना एक महत्वपूर्ण विषय है। भारत के बहुभाषीय स्वरूप के कारण इस संकल्पना की रचना तुलनात्मक साहित्य के स्तर पर ही संभव है। भारतीय साहित्यिक इतिहास से तात्पर्य है वैदिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि के साहित्यों के साथ उर्दू तथा आधुनिक प्रांतीय भाषाओं में रचित साहित्य। इसके अंतर्गत भारतीयों के द्वारा रचित अंग्रेजी साहित्य को भी सम्मिलित किया जाता है।

वर्तमान समय में विस्तृत तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक स्तर पर विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन हो रहा है मगर उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में एकक भारतीय साहित्य का अभी तक विकास संभव नहीं हो सका है। इस तरह की अध्ययन के लिए साहित्यिक कृतियों का विवराणात्मक अध्ययन अधिक उपयुक्त होता है । क्यों कि विवरणात्मक अध्ययन में साहित्यात्मकता के स्थान पर ऐतिहासिकता पर ज्यादा बल दिया जाता है । 20वीं शती के प्रारंभ में जब विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य के इतिहास की रचना की ओर विद्वानों का ध्यान गया तब भारतीय साहित्य के बारे में प्रचलित धारणा यही थी कि भारत के विभिन्न प्रांतों या भाषा-भाषी विद्वानों द्वारा रचित विभिन्न भाषाओं के साहित्य के इतिहासों का यह कुल योग है।

भारतीय साहित्य का इतिहास विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में रचित इतिहासों का संगठन है। 19वीं शती तक भारतीय साहित्य के इतिहास से तात्पर्य हिन्दू - बौद्ध परंपरा में रचा जाने वाला प्राचीन संस्कृत साहित्य था। 20 वीं शती के प्रारंभ से ही भारत में लिखे जाने वाले साहित्य के इतिहास की बात विद्वानों ने आरंभ किए थे। इसमें विभिन्न भाषा-भाषी विद्वानों द्वारा रचित विभिन्न भाषाओं के साहित्य के इतिहासों का योग है मिलती हैं। भारतीय साहित्य का इतिहास विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में रचित इतिहासों का संगठन है। पाश्चात्य साहित्यकार संपूर्ण साहित्य इतिहास को कालों में

विभक्त करते हैं, साहित्यिक प्रवृत्तियों का नामकरण करते हैं तथा प्रमुख कृतिकारों को ही चुनते है और एक ही प्रांत की भाषा के साहित्य का इतिहास होने के कारण यह अनुक्रम संभव हो सकते हैं। मगर यह भारत की बहु-भाषिक साहित्यिक संस्कृति के लिए संभव नहीं हो सकती है। बहुभाषिकता इस देश की विशेषता है। इसलिए भारतीय साहित्य के इतिहास के निर्माण करते समय हमारे सामने दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती है–

(क) भाषाओं की विविधता के फल स्वरूप किसी एक इतिहासकार के लिए संपूर्ण भारतीय साहित्य का प्रत्यक्ष्य ज्ञान असंभव है।

(ख) दूसरी कठिनाई है किसी एक आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य का अभाव जिसकी सहायता से विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्यों का मूल्यांकन करते हुए भारतीय साहित्य के इतिहास की संकल्पना बनायी जा सके। इसका यह है कि भारतीय साहित्य को उसकी संपूर्णता में देखने की दृष्टि का अभाव है।

वस्तुतः इन दोनों कठिनाइयों से मुक्त होकर भारतीय साहित्य के इतिहास की रचना के लिए समस्वार्थता के तत्वों के आधार पर इतिहास की रचना के लिए समस्वार्थता के तत्वों के आधार पर इतिहास की रचना का मॉडल तैयार करना होगा और दूसरी ओर तुलनात्मक पद्धति से जुड़ी हुई आलोचना दृष्टि की सहायता लेनी होगी। आज नाना प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक कारणों से भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति या उसके मूलस्वर पर दबाव पड़ा है। परन्तु फिर भी यह मूलस्वर अपने जटिल विन्यास में अब भी विद्यमान है।

भारतीय साहित्य के इतिहास के निर्माण में अब एक ही प्रकार की जानी-पहचानी विभिन्न भाषाओं के साहित्य के कथ्यों की सहायता ली जा सकती है। यहाँ केवल एकता के तत्व नहीं अनेकता था वैविद्य के तत्वों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। क्योंकि भारतीय साहित्य की एकता उसके इस वैविद्य के कारण और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। भारतीय साहित्य के इतिहास की रचना में एकता और वैविदद्य तत्वों से विभिन्न भाषाओं की रचनाओं के सर्व भारतीय संबंधों को आंकना सहज हो जाता है।

भारतीय साहित्य के इतिहास की संकल्पना के निर्माण में एक जैसे भारतीय स्रोतों का अध्ययन जरूरी है। प्राचीन वैदिक तथा संस्कृत संगीत साहित्य, पुराण, धर्मग्रन्थ, रामायण, महाभारत, जातक ग्रंथ, कला, तथा लोक कथाएँ, इन स्त्रोतों का उत्सुक रहा है। दूसरी ओर भारतीय लेखकों पर पड़ने वाले अरबी-फारसी तथा पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप एक जैसी प्रतिक्रियाओं का भी अध्ययन लाजमी है। यहां साहित्येतर एक जैसी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के अध्ययन को साहित्याध्ययन के साथ जोड़ने के लिए समाज - विज्ञान का आश्रय लेना होगा। इसलिए भारतीय साहित्य के इतिहास की रचना में समकालीन सामाजिक तथा राजनीतिक, आदि सभी अंश जो मानव जीवन धारा को नियमित करते हैं उनका अध्ययन जरूरी है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में मिथक, बिम्ब, प्रतीक, संरचना, बुनावट की क्रिया आदि को पता होने से ही भारतीय साहित्य के इतिहास का निर्माण हो पाता है।

बुनावट और संरचना की दृष्टि से विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित साहित्यिक काव्य-रूपों का अध्ययन इन साहित्यों की एकात्मता को प्रकट करने तथा इनके द्वारा भारतीय साहित्य के इतिहास की एकक अवधारणा के निर्माण में सहायक हो सकता है। आज के आधुनिक भारतीय लेखकों को हम प्राचीन प्रेरित करता रहे हैं। यद्यपि आज जिन काव्य रूपों का प्रयोग हो रहा है वे लगभग सभी विदेशी काव्य रूप हैं। साथ ही विदेशी काव्य रूपों के ढांचे पर हमारे पारंपरिक काव्यरूपों के पुनः निर्माण का सिलसिला भी जारी है। भारतीय साहित्य के इतिहास के लिए मिथक, प्रतीक,

बिंब आदि के साथ-साथ काव्य रूपों के अध्ययन में विभिन्न भाषाओं के साहित्य में पाये जाने वाली एकता और विविधता में एक सर्व- भारतीयता परिलक्षित होती है जो एकक भारतीय साहित्य अवधारणा का मूल तत्व है।

भारतीय साहित्य के एकक इतिहास के निर्माण के लिए तुलनात्मक पद्धति का सहायता लेनी पड़ेगी। तुलनात्मक आलोचना इसका आधार नियम है जिसके अभाव में भारतीय साहित्य का उपयुक्त काव्यशास्त्रीय सौंदर्यमूलक तथा आलोचनात्मक विश्लेषण संभव ही नहीं। आजकल भारतीय काव्यशास्त्र के औजारों की अपेक्षा पाश्चात्य समीक्षा, शास्त्र के औजार ही अधिक उपयोग में लाये जा रहे हैं।

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की तुलनात्मक छान-बीन से ही एक लाभकारी सर्व-भारतीय आलोचनात्मक पद्धति का निर्माण और इस आलोचनात्मक पद्धति की सहायता से एकक भारतीय साहित्य के इतिहास के विभिन्न आयामों विश्लेषण संभव हो सकता है। साहित्येतिहास की विश्लेषण पद्धति अपने आप में द्विमुखी है। एक ओर साहित्येतिहास की साहित्यिकता का अध्ययन तो दूसरी ओर प्रासंगिक महत्व को 'मोटा – आलोचनात्मक' अध्ययन। इस प्रकार के अध्ययन से ही विभिन्न साहित्यों में एक सामान्य अस्मिता को ढूंढ निकालना तथा अंततः भारतीय साहित्य के एकक साहित्यिक रूप की अवधारणा का निर्माण संभव हो पाता है।

4.5. तुलनात्मक आलोचना

आलोचना से तात्पर्य किसी भी वस्तु को साम्यक प्रकार से उसके संपूर्ण रूप को देखना है। जिसके कारण आलोचक से उम्मीद की जाती है कि वह बिना किसी पक्षपात के समालोचन करे। इसी तरह तुलनात्मक आलोचना के सहारे शास्त्रीयता के साथ साहित्य की आलोचना करनी है। साहित्यिक रचनाओं की पारस्परिक तुलना की परम्परा बहुत पुरानी है। एक भाषा की किसी कृति का विवेचन जब उसी भाषा अथवा किसी अन्य भाषा की कृति की विशेषताओं को सामने रख कर किया जाता है, तब तुलानात्मक या तुलना प्रधान आलोचना प्रकट होती है।

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में तुलनात्मक आलोचना का प्रयोग बहुत ही आवश्यक है, नहीं तो इस अध्ययन का अर्थ साहित्येतिहास के विभिन्न तथ्यों का आकलन मात्र रह जाता है। यद्यपि इतिहास के विभिन्न तथ्यों का चयन भी अपने आप में एक आलोचनात्मक कार्य है। फिर भी इस चलन कार्य में आलोचनात्मक विश्लेषण पद्धति का अभाव रहता है। दरअसल तुलनात्मक साहित्य के इतिहास परक या काव्य शास्त्रीय कला या सौंदर्यपरक अथवा समाजशास्त्रीय परक अध्ययन में तुलनात्मक आलोचना का तुलनात्मक और व्यतिरेकी अध्ययन की एक नया प्रविधि की सहायता लेती है। समान रूप से साहित्य के अध्ययन एवं अनुशीलन में तुलनात्मक दृष्टि का महत्व है।

साहित्यिक कृति का सटीक ज्ञान तभी संभव हो पाता है जब समानधर्मी कृतियों के साथ उसकी समता और विषमता का निरुपण किया जाता है। तुलनात्मक आलोचना को परिभाषित करते हुए डॉ. बदरी प्रसाद लिए करते हैं कि "तुलनात्मक आलोचना, आलोचना का वह प्रौढ़तम रूप है, जिसमें दो कृतियों के सामान्य परिचय से परे विवेचनात्मक ज्ञान के उन्नत स्वरूप का दिग्दर्शन कराया जाता है। तुलनात्मक आलोचक दो आलोच्य कृतियों के गूढ़ तथ्यों के निरूपण के साथ ही कवि द्वारा अभिप्रेत अनुभूतियों का ज्ञान सहृदयों को करण देने की पूरी क्षमता रखता है।" तुलनात्मक साहित्य के गहारे हम विश्व साहित्य को जान सकते हैं। इससे अखंड मानव समाज के बारे में मानव वृत्तियों के बारे में जान पाते है। तुलनात्मक अध्ययन से सांस्कृतिक आदान प्रदान का मार्ग दर्शन सुगम होता है।

अतः तुलनात्मक आलोचना मुख्य रूप से दो कृतियों या कृतिकारों का संपूर्ण रूप से एवं बेहद सूक्ष्म अवलोकन कर बिना किसी पक्षपात के सापेक्ष रूप से मूल्यांकन करता है। इस पद्धति में आलोचना एक विस्तृत साहित्यिक क्षेत्र को अपने में समेट लेती है और साथ ही ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों को भी स्वीकार करती है जिससे एक बड़े परिप्रेक्ष्य में साहित्य का अध्ययन हो सके। तुलनात्मक आलोचना में कृति के आंतरिक विश्लेषण के साथ संपूर्ण संस्कृति का सामान्य विश्लेषण सम क्रमिक रूप में प्रकट होता है। साहित्य के अध्ययन में आलोचना का प्रयोग तर्क शास्त्र से संबद्ध होता है। इसलिए आलोचना पद्धति तार्किक साधनों पर निर्भर रहती हैं। फ्रांसिसी आलेचना वाद शेला बार्थ के अनुसार थे तार्किक साधना अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद तथा संरचनावाद के दर्शनों से संबद्ध है।

तुलनात्मक आलोचना जब ज्ञान के विस्तृत क्षेत्र को अपने में समेटती है तब ऐतिहासिक सामान्यीकरण का आग्रह बढ़ जाता है। इससे युग चेतना को आलोचना के द्वारा क्रियात्मक रूप देना संभव हो जाता है। तुलनात्मक आलोचना से काव्यशास्त्रीय कला या सौंदर्यपरक सिद्धांतों का विकास होने की संभावना बढ़ जाती है। 18 वीं शती में तुलनात्मक आलोचना से ही आधुनिक सौंदर्यशास्त्र का जन्म हुआ है। तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी अध्ययन के आधार पर निर्मित आनुभविक काव्यशास्त्र की सहायता से ही इस आलोचना का विकास होता है। तुलनात्मक आलोचना अनेकवादी आलोचनात्मक दृष्टि है। इस में नाना साहित्यों के वैविध्यमय रूप का विश्लेषण करती हुई साहित्य के 'संपूर्ण' दृश्य को प्रकट करती है। तुलनात्मक आलोचना की सहायता से साहित्यिक सिद्धांत के कुछ प्रश्नों का उत्तर निकाल पाते हैं। जैसे कि

1. अनुवाद सिद्धांत -बहुत-सी स्थितियों में अनुवादों का अध्ययन तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रमाणित होता है। भले ही आलोचक स्त्रोत भाषा से परिचित न हो लक्ष्य भाषा के अनुवादों से आलोचना कर पाते हैं। उदाहरण के लिए आलोचक बंगला के ज्ञान के बिना ही रवींद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजली' के विभिन्न हिन्दी अनुवादरों का योजनाबद्ध, तुलनीय अध्ययन कर सकते हैं। यूनानी भाषा से अपरिचित रहते हुए भी ड्राइडन, पोप तथा कूपर के द्वारा किए गए होमर के अंग्रेजी अनुवादों का व्यवस्थित अध्ययन महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

2. साहित्यिक मूल्यांकन का प्रश्न तथा

3. साहित्यिक समाजशास्त्र की जाना समस्याओं का समाधान श्री तुलनात्मक आलोचना के द्वारा संभव होता है।

तुलनात्मक आलोचना से उन कृतियों की तुलना संभव हो जाती है जिनकी बाह्य संरचना भिन्न होती है। उदाहरण के लिए वाल्मीकि की 'रामायण' और बिमलमित्र के 'एकक दशक शतक' में वस्तु की दृष्टि से काफी अंतर है फिर भी 'जेनरेटित ग्रामर' के आधार पर इनकी समानता को विश्वासोत्पादक ढंग से बिश्लेषित करना संभव हो जाता है। वस्तुतः तुलनात्मक आलोचना की सबसे बड़ी बात यह है कि बहुलवादिता के आश्रय से साहित्य के सार्विक रूप को प्रकट करके वह साहित्य के अध्ययन को व्यापक धरातल पर ला खड़ा करती है।

दरअसल 'नई आलोचना' की रूपवादी दृष्टि के प्रभाव के कम हो जाने पर साहित्य के एक छोर पर स्थिति इतिहास और दूसरे छोर पर दर्शन यानी ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों की सहायता से साहित्य की जो आलोचना फिर जोर-शोर से शुरू हुई वही तुलनात्मक आलोचना थी जिसको बाद में चलकर अंतर्विद्यावर्ती आलोचना भी कहा गया। वास्तविक बहुलवादिता का एक लाभ यह हैं कि विभिन्न साहित्यों एवं ज्ञान के क्षेत्रों के पारस्परिक 'तुलनात्मक एवं व्यक्तिरेकी' अध्ययन से साहित्य के प्रति एक स्वस्थ दृष्टि का प्रसार होता है। जिससे एक ओर विचारों का आदान-प्रदान तो दूसरी ओर निश्चित तर्क संगत आधार पर मंत-वैभिन्य का पता लग पाता है।

4.6. अंतर्विद्यावर्ती आलोचना स्वरूप-विश्लेषण

अंतर्विद्यावर्ती आलोचना तुलनात्मक आलोचना का नया स्वर है। विभिन्न अनुशासनों के बौद्धिक आविष्कार के आश्रय से इसकी बुनियाद रखी गई है। इस आलोचना का प्रसार समाज-विज्ञान के क्षेत्र में हुई सांप्रतिक प्रगति के फलस्वरूप जो विभिन्न प्रकार की दृष्टियाँ उत्पन्न हुई उससे हुआ। सामान्य रूप से अन्तर्विद्यावर्ती आलोचना अपने नाम के पर आगे बढ़ती है कि किसी भी कृति की व्याख्या या विश्लेषण अनुशासनों के आश्रय से भली प्रकार हो सकता है। किसी एक कविता को विशुद्ध कलाकृति के रूप में पढ़ा जा सकता है तथा कला सिद्धांत के आश्रय से उसका विश्लेषण किया जा सकता है।

मगर इसी कविता को यदि धर्मशास्त्र या मानव विज्ञान, इतिहास था दर्शन तथा राजनीतिशास्त्र या मनोविज्ञान तथा समाज-विज्ञान से प्राप्त दृष्टियों अथवा आलोच्य कविता जिस दृष्टि से प्रभावित है, उसकी सहायता से विश्लेषित किया जाए तो निश्चय ही अधिक लाभ की संभावना होती है। ये दृष्टियां निश्चय ही आलोचना कार्य में जुट जाने से एक विशिष्ट सीमा में बंध कर हमें सहायता पहुंचाती है। जैसे- 'कामायनी' की आलोचना करते हुए हम दर्शनशास्त्र के स्थान पर मात्र प्रत्यभिज्ञा दर्शन अथवा मुक्तिबोध की कविता का विवेचन करते हुए राजनीति शास्त्र के स्थान पर मावर्सीय विचार - बोध से ही अपना काम चला लेते हैं। मगर अंतर्विद्यावर्ती आलोचना में ऐसी बहुत सारी विशिष्ट दृष्टियों की सहायता ली जाती है।

वस्तुतः विदेश में 20वीं शती के प्रारंभ में इंग्लैंड के- विश्वविद्यालयों में एकडमिक आलोचना का प्रसार हुआ था। इस आलोचनात्मक धारा के प्रसार करने वाले विद्वानों में सेंट्सवरी, डाउडन, कार्टहोप, ब्रेडले आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस आलोचनात्मक धारा के फलस्वरूप अंतविद्यावर्ती आलोचना की ओर विद्वानों का रुझान दिखाई पड़ा। एकटनिक आलोचना के अतिरिक्त फ्रांस में ऐतिहासिक आलोचना के प्रसार के फलस्वरूप भी अंतर्विधावर्ती आलोचना के बीज पनपने का मौका मिला। इसका कारण है कृति पर वस्तुगत पूर्वहेतु, ऐतिहासिक कालक्रम तथा सामाजिक परिवेश के दबाव को स्वीकार करने पर ही अंतर्विद्यावर्ती चेतना का प्रसार हो सकता था।

भारत में सन् 1920 में काशी में हिन्दी विभाग की स्थापना के बाद यहां भी शास्त्रीय आलोचना का प्रसार प्रारंभ हुआ। उससे अंतर्विद्यावर्ती दृष्टि तो मिली अगर सर्जनात्मक साहित्य से दो कदम पीछे रहने के कारण एवं संतुलन एवं निष्पक्षता के फेर में आलोचना को नुकसान भी पहुंचा। हालांकि, सार-संग्रहवादी दृष्टि एवं अंतर्विद्यावर्ती दृष्टि में काफी अंतर है। सार-संग्रहवादिता साहित्यालोचन के क्षेत्र में बहुत पुरानी बात है मगर वह 'मेटा-क्रिटिसिज्म' (A crificiom of criticitm) कहलाता है, अंतर्विद्यावर्ती आलोचना नहीं।

मेटा-क्रिटिसिज्म को बाह्यवर्ती आलोचना कहते है जहां साहित्यिक कृति के विश्लेषण के द्वारा साहित्येतर उद्देश्य की पूर्ति की जाती है जैसे कृति के माध्यम से लेखक के व्यक्तित्व, उस युग के पाठक अथवा समाज के बारे में जानकारी प्राप्त करना अथवा नीति शास्त्र, धर्म तथा मनोविज्ञान था और किसी अध्ययन का विस्तार करना। 'मेटा- क्रिटिसिज्म' जब बहुत अधिक साहित्येतर तथ्यों पर बल देने लगा तब प्रतिक्रिया-स्वरूप रूपवादी नई आलोचना सामने आयी मगर दो दशकों के गुजरते न गुजरते सार्त्र, पूर्ण आदि ने फिर से दर्शनशास्त्र के आश्रम से आलोचना शुरू की।

अंतविद्यावर्ती आलोचना के अंतर्गत अध्ययन के जाना क्षेत्रों, आंदोलनों को भी स्थान दिया जा सकता है। जैसे 'विचारों का इतिहास' या 'बौद्धिक इतिहास' की दृष्टि निःसंदेह अंतर्विद्यावर्ती है। लोक साहित्य का समूचा अध्ययन अंतर्विद्यावर्ती हैं। कला आलोचक बड़े आराम से दो-तीन अनुशासनों के आश्रय से कला - विवेचन करते है। तुलनात्मक

साहित्य के बारे में तो स्पष्ट कहां जाता है कि उसे अंतर्विद्यावती होना है। तुलनात्मक साहित्य में आलोचना या मूल्यांकन करते हुए समय तुलनात्मक प्रणाली को अंतर्विद्यावर्ती तो होना पड़ेगा। लेकिन आलोचक में अगर तन्मयी भावना-योग्यता नहीं है तो वह आलोच्य कृति की आलोचना में अपने को जोड़ कर नहीं रख पायेगा और 'मोटा-क्रिटिसिज्म' के आश्रय से साहित्यिक कृति के द्वारा साहित्येतर उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में जुट जाएगा।

वस्तुनिष्ठ अध्ययन के रूप में उसे कृति के संपूर्ण विश्लेषण का एक हिस्सा होना है। जब विभिन्न साहित्य जीवन के बारे में विभिन्न धर्मी दृष्टि का प्रसार तथा विभिन्न रूपों को अभिव्यक्ति करते हुए तुलनात्मक साहित्य के घेरे में आ जाते हैं तब उनमें एक 'कामन आइडिटिटी' ढूंढने के लिए अंतर्विद्यावर्ती आलोचना बहुत ही प्रासंगिक प्रतीत होती है। आलोचना कभी मृत तथ्यों पर आधारित नहीं होती, वह सर्वदा प्रासंगिक तथ्यों के आश्रय से प्रसारित होती है।

प्रासंगिकता हमेशा वर्तमान काल से ही जुड़ी होती है। इसलिए आलोचना के बारे में यह कहा जाता है कि यह एक बुद्धिसंगत काल्पनिक क्रिया है। जो कृति की आलोचना करती हुई उसके एक छोर में विद्यमान दर्शन और दूसरे छोर में विद्यमान इतिहास को अपने में समेटता हुई वर्तमान के संदर्भ में उसकी व्याख्या, विश्लेषण तथा मूल्यांकन करती है। आलोचना के प्रति इस दृष्टि के कारण क्रमशः अंतर्विद्यावर्ती आलोचना का सूत्रपात हुआ है।

आलोचना के लिए प्रचुर ज्ञान की जरूरत है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों में यह स्थिति स्पष्ट है मगर प्रचुर ज्ञान से आलोचना के क्षेत्र में सार संग्रहवाद का होता है जिसके परिणाम स्वरूप दार्शनिक अनियतता फैलती है अथवा ज्ञान सापेक्षवाद के विस्तार की संभावना बन जाती है और अंतविद्यावर्ती आलोचना के लिए ज्ञानसोपेक्षवाद अभिशाप है। अंतर्विद्द्यावर्ती दृष्टि विविधता को प्रश्रय देती है और इसीलिए किसी एक दार्शनिक दृष्टि को वह संदेह की दृष्टि से देखती है। मगर यह दृष्टि यह सोचती है कि सत्वमीमांसीय संदर्भ में कई दर्शन ग्रहणीय है।

अतः अंतर्विद्यावर्ती आलोचना दर्शन-केंद्रिक वही तक है जहां वस्तुनिष्ठा यथार्थ रूप को सही ढंग से समझने में वह एक योजना प्रदान करती है। इस आलोचना दृष्टि में सिद्धांत की अपेक्षा कार्यपद्धति को महत्व दिया जाता है एवं उन सब दार्शनिक संप्रदाय के नामोल्लेख से यह दृष्टि कतराती है जिसकी वह सहायता लेता है, भले ही हमेशा नहीं। दूसरे शब्दों में किसी दर्शन को स्वीकार करने का मतलब उसे परिभाषित करना नहीं है एवं इस दृष्टि को पहचानने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि साहित्येतर आच्छादन से ढका होने पर भी अंतर्विद्यावर्ती आलोचक उसमें से एक अर्थ ढूंढ निकालता है। इसका मतलब यह नहीं कि आलोचक का काम केवल अस्तित्ववादी गूढार्थ को ढूंढ निकालना है। अंतविध्यावर्ती आलोचक का विश्वास है कि औचित्य ही सर्वमान्य सिद्धांत है।

आलोचक को पहले कृति को समझना चाहिए। आलोचक की कार्य पद्धति की विशेषता ही यह है कि कृति में निहित किसी विचार या बिंब में निहित दार्शनिकता को विभिन्न अनुशासनों के आश्रय से विश्लेषित किया जाए। इस दृष्टि के अनुसार भाषिक विश्व के श्रृंखलित संगठन के साथ जुड़ने के लिए भाषा- विज्ञान, इतिहास, समाज-विज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा मानव-विज्ञान के साथ आलोचक का परिचय होना चाहिए। दूसरे शब्दों में अंतर्विद्यावर्ती आलोचना की कार्य पद्धति का फ्रेमवर्क 'सोशलौजी ऑफ नॉलेज' है जिससे कृति में निहित महत्वपूर्ण साहित्येतर सामग्री का विश्लेषण हो पाता है।

अंतर्विद्यावर्ती आलोचना की कार्य-पद्धति में किसी निश्चित सिद्धांत का आश्रय नहीं होने के फलस्वरूप जहां सिद्धांत निरूपण से यह दृष्टि बची रही वहां बिना किसी 'लेबुल' के यह दृष्टि विशिष्ट आलोचकों की आलोचनात्मक अंतर्दृष्टि से हमें परिचित कराती रही। भले ही उस दृष्टि में व्यवस्था का अभाव रहा हो मगर किसी कृति के विश्लेषण के

माध्यम से इस दृष्टि ने आलोचना को जो 'चरित्र' प्रदान किया है उसका महत्व काफी अधिक है । अंतर्विद्यावर्ती आलोचना अपने में बहुत ही विस्तृत है । यह नाना सिद्धांतों को स्वीकारती है मगर अपने आप में कोई सिद्धांत नहीं बनाती । कदाचित् इसीलिए इसको कोई आलोचनात्मक धारा न मानकर आलोचनात्मक पद्धति मानना ही ठीक प्रतीत होता है ।

4.7. सारांश

तुलनात्मक साहित्य के द्वारा विभिन्न भाषाओं के साहित्य और विभिन्न काव्यधाराओं के साम्य और वैषम्यताओं का अध्ययन कर पाते हैं । तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को मूल रूप से ऐतिहासिक अथवा काल क्रमिक न मानकर एक कॉलिक अथवा कलात्मक दृष्टि से एक स्वतंत्र संपूर्ण प्रणाली ही माना जाता है तभी तुलनात्मतावादी आलोचक तुलनात्मक साहित्य को जाति, परिवेश तथा काल के स्थान पर एक संस्था के रूप में प्रकाशित कर पाता है । तुलनात्मक साहित्य के बाद तुलनात्मक साहित्य का आलोचना भी मुख्य आलोचना पद्धति है । इसके सहारे आलोचना कार्य संपूर्ण काव्य के समग्र यानी अंतर्मुखी, बहिर्मुखी विशेषताओं का विश्लेषण कर पाते है ।

4.8. बोध प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की अवधारणा के बारे में लिखिए ।
2. तुलनात्मक भारतीय साहित्य का अर्थ, विषय क्षेत्र के बारे में चर्चा कीजिए ।
3. तुलनात्मक आलोचना का अर्थ क्या है? इसमें अंतर्विद्यावर्ती आलोचना का संकल्प के बारे में विचार कीजिए ।

4.9. सहायक ग्रंथ

1. तुलनात्मक शोध और समीक्षा: पी. आदेश्वर राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा ।
2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन: शिव सत्यनारायन ।
3. तुलनात्मक साहित्य-डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली ।
4. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- इंध्रनाथ चौधरी ।

डॉ. एम, मंजुला

5. हिन्दी - तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

5.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में हम भारतीय साहित्य, तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के बारे में पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत हिन्दी - तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन के बारे में चर्चा करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम-

- हिन्दी - तेलुगु साहित्य के आदिकाल के बारे में,

- मध्यकालीन साहित्य के बारे में,

- आधुनिक काल के साहित्यिक इतिहास के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2. हिन्दी और तेलुगु भाषाओं की उत्पत्ति एवं विकास

5.3. लिपियों की उत्पत्ति और विकास

5.4. कालखंड

- 5.1. आदिकाल
- 5.2. भक्तिकाल
- 5.3. रीतिकाल
- 5.4. आधुनिक काल

5.5. सारांश

5.6. बोध प्रश्न

5.7. सहायक ग्रंथ

5.1. प्रस्तावना

भारत बहु भाषी राष्ट्र है। इस संघ की भाषाओं में तेलुगु बोलने वालों की संख्या दूसरे नम्बर पर है। 3 करोड़ से अधिक तेलुगु और आंध्रा के लोग है। देश की एकता के लिए, भाषाओं के विकास के लिए साहित्यिक आदान- प्रदान की अत्यंत आवश्यक है। सभी भाषाओं में रचित उत्तम साहित्य की कृतियों को अन्य भाषाओं में अनुवाद करने से ज्ञान का आदान-प्रदान समृद्ध होते हैं। सभी भाषाओं के उत्तम ज्ञान भंडार से रूपांतर द्वारा अपनी- अपनी भाषाओं को सुसंपन्न कर उन्हें परिपृष्ट बना सकते हैं। इस कार्य को सुसंपन्न करने के लिए राजभाषा और प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। दोनों साहित्यों की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं से परिचित होने पर ही एक भाषा एवं साहित्य की उत्तम - कृतियों को दूसरी भाषा एवं साहित्य में लाने का प्रयन्त किया जा सकता है। अतः दोनों भाषा एवं साहित्यों से संबंधित गवेषणात्मक, प्रामाणिक एवं तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य - सा हो गया है। इस से देश की एकता

एवं राष्ट्रीय जीवन की एकता के लिए यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। अतः तुलनात्मक अध्ययन के दौरान इस इकाई में हम हिन्दी - तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन पर, साहित्य - काल विभाजन और विभिन्न साम्य और वैषम्यों के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2. हिन्दी – तेलुगु भाषाओं की उत्पत्ति और विकास

विश्व की भाषाओं के वर्गीकरण के अनुसार तेलुगु द्रविड़ परिवार की भाषा है तो हिन्दी आर्य परिवार की। ये दोनों भाषाएँ जन्म से भिन्न परिवारों के होते हुए भी अनेक विषयों में समानता रखती हैं। आज के भारत में संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी के बाद तेलुगु बोलनेवालों की संख्या अधिक हैं। सन्1951 की जन गणना के अनुसार हिन्दी बोलने वालों की संख्या 18 करोड़ है तो तेलुगु भाषा बोलने वाले $3\frac{1}{2}$ करोड़ है। इस गणना के अनुसार उत्तर भारत में हिन्दी भाषी अधिक है तो दक्षिण भारत में तेलुगु भाषा-भाषी। किन्तु कुछ विद्वान तेलुगु को आर्य परिवार की भाषा मानते हैं। डॉ. चिनुकूरि नारायणराव ने तेलुगु को आर्थ - परिवार की भाषा सिद्ध करते हुए "आन्ध्र भाषा चरित्र" नामक एक ग्रंथ लिखा था। परंतु विशप कॉल्डवेल तथा श्री कोराड़ रामकृष्णय्या ने यह प्रामाणित कर दिखाया है कि तेलुगु द्रविड़ भाषा परिवार की है। डॉ. नारायणराव का कथन है कि तेलुगु में 70 प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं तथा वर्णमाला एवं व्याकरण की दृष्टि से भी तेलुगु संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं के निकट है। दूसरे पक्ष का कथन है कि वाक्य - रचना तथा अन्य भाषा - संप्रदायों के अनुसार तेलुगु द्रविड़ भाषाओं से मिलती-जुलती है। केवल शब्द संख्या के आधार पर किसी भाषा के परिवार का निर्धारण करना उचित प्रतीत नहीं होता। उनके मूल - शब्दों के सर्वनाम और प्रत्यय इत्यादि रूपों के आधार पर ही यह संभव हो सकता है। उपर्युक्त सिद्धांतों की कसौटी पर तेलुगु द्रविड़ भाषा की सिद्ध होती है।

तेलुगु को आर्य - भाषा परिवार की भाषा मानने में यह भी एक कारण हो सकता है कि आंध्र के पूर्वज आर्य थे। हरिवंश पुराण के अनुसार कृष्ण से लड़ने वाले चाणूर मल्ल आंध्र थे। ये अर्थ क्षत्रिय थे। उन्होंने अपने राज्य को दक्षिण में गोदावरी तथा कृष्णा नदी के मध्य प्रदेश में स्थापित किया था। इनकी भाषा प्राकृत जन्य थी। कालांतर में दक्षिण की संस्कृति एवं भाषाओं के प्रभाव के कारण इसमें भी परिवर्तन हुए। यही कारण है कि आज तेलुगु में संस्कृत भाषा के शब्दों की बाहुल्यता होने पर भी द्रविड़- परिवार के निकट है। उत्तर और दक्षिण के बीच में स्थित होने के कारण आंध्र प्रदेश आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों का संगम होकर अपनी विशिष्टता का परिचय दे रहा है।

आन्ध्र शब्द पहले जातिपरक के रूप में प्रयुक्त होता था। ऐतरेय ब्राह्मण तथा महाभारत आदि ग्रंथों में भी जाति के रूप में आंध्र शब्द प्रयुक्त हुआ है। यही बाद को देश तथा भाषा परक रूप में प्रयुक्त हुआ है। जैसे कि सिंध से हिन्द देशपरक के रूप में प्रयुक्त होकर कालांतर में उस प्रदेश की भाषा हिन्दी के रूप में प्रयुक्त हुई। तेलुगु भाषा जो आज आन्ध्र प्रदेश की राज्य भाषा से व्यवहुत हो रही है पहले उसे तेनुगु कहते थे। यह शब्द भी पहले देशपर में, बांद को भाषा परक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। तैलंग नाम से जाति परक में भी उत्तर भारत में प्रयुक्त हुआ है। तेलुगु, तैलंग नाम उन्हीं लोगों ने दिये हैं। इस शब्द की उत्पत्ति के संबंध में भी हमें अनेक ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक आधार उपलब्ध होते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि इस शब्द का मूल रूप त्रिलिंग अथवा त्रिकलिंग है। उन तीनों का नाम द्राक्षाराम, श्रीशैलम् तथा कालहस्ती हैं। ये तीनों प्रसिद्ध, शैव- तीर्थ स्थान है। इन तीनों तीर्थ स्थानों के मध्य प्रदेश को त्रिलिंग कहा गया है। विद्यानाथ ने अपने "प्रतापरुद्र यशोभूषण" में इसका उल्लेख किया है। "थैर्देशस्ति शिशेष - भाति महती ख्याति त्रिलंगाख्यया" इसके पश्चात् करीब 8 वीं शताब्दी में गुणाढ्य विजयादित्य ने अपने एक शिलालेख में खुदवाया है-

"सदक्षिणापथ स त्रिंकलिंग देशमन्वपालयत्"

इस प्रकार त्रिकलिंग से त्रिलिंग, तेनुगु व तेलुगु रूप में परिवर्तित हो गया है।

हिन्दी भाषा के संबंध में ऐसा विवादास्पद विषय कोई नहीं है। संस्कृत के बाद प्राकृत, और प्राकृत के भी अनेक अपभ्रंश हुए। कालांतर में वे भी साहित्यिक रूप को प्राप्त करते गये। इस प्रकार भाषा में गति-शीलता के कारण शौरसेनी अपभ्रंश से जो भाषा निकली वह कई रूपों में कई प्रांतों में व्यवहृत होने लगी। यही कारण है कि हिन्दी के प्रारंभिक मूल रूप अपभ्रंशों से में थिली, अवधी, व्रज और राजस्थानी आदि भाषायें अवतरित हुई। आज इन सब भाषाओं के साहित्यों को हिन्दी साहित्य के नाम से जाना व माना जाता है।

5.3. लिपियों की उत्पत्ति और विकास

यह सर्व विदित है कि सभी भारतीय लिपियों का उद्‌गम ब्राह्मी-लिपि ही है। मौर्य काल में ही भारतीय लिपि का प्रप्रथम परिचय लोगों को हुआ है। उसके - पूर्व लिपि के अस्तित्व का हमें कोई आधार अथवा प्रमाण नहीं मिलता। कुछ भाषा विज्ञान शात्रियों का कथन है कि प्रारंभ में समस्त भारतीय भाषाओं की एक ही लिपि थी। वही बाद को मांडलिक-भेदों के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हुई। यही ब्राह्मी लिपि ई. के प्रारंभिक काल में आन्ध्र - कर्नाटक लिपि में परिवर्तित हुई। यही कारण है कि आज भी तेलुगु और कर्नाटक लिपियों में बहुत ही साम्य दिखाई देता है। तमिल-लिपि में अल्पप्राण और महाप्राण के भेद दिखाई नहीं देते। 'के' वर्ग में 'क', 'ख', 'ग', 'घ', इन चारों वर्णों के लिए 'क' वर्ग में 'क', 'ख', 'ग', 'घ' इन चारों वर्णों के लिए 'क' ही प्रयुक्त होता है। वैसे ही अन्य वर्गों की बात भी है। अतः तेलुगु लिपि में मौर्यलिपि से उपर्युक्त वर्णों के लिए आवश्यक अक्षरों को ग्रहण कर अपनी लिपि को आन्ध्रों ने पूर्ण बनाया है। इस प्रकार समय-समय पर अपनी लिपि में आवश्यक चिह्न जोड़ते - जोड़ते इसे स्वरांत - भाषा बनाया गया है। तेलुगु सुनने में अत्यंत मधुर होती है। इसलिए देशी विद्वानों ने भी तेलुगु की 'Italian of the east' प्राच्य देशों की इटली भाषा कहकर बड़ी प्रशंसा की है।

हिन्दी की लिपि देवनागरि लिपि है। इस का प्रयोग सर्वप्रथम 8वीं शताब्दी के गुजरात के राजा जयभट्ट के एक शिला लेख में देखा गया था। बाद में अनेक बदलावों के बाद 10 वीं 11वीं शताब्दियों तक देवनागरी का प्रसारण क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया। यह समूचे भारत वर्ष की लिपि रही। हिंदी, मराठी, संस्कृत और हिन्दी की समस्त बोलियाँ इसी लिपि में लिखी जाती हैं। देवनागरी का वर्तमान रूप 16वीं सदी से प्राप्त हुआ है। देवनागरी को आज राष्ट्रलिपि का पद प्राप्त हुआ है।

तेलुगु और हिन्दी लिपियों में काफी समानता है। स्वर, व्यंजन, मात्राएँ समान रूप से उच्चरित किए जाते हैं। हिन्दी के स्वर 13 है तो तेलुगु में 16 है। हिन्दी के व्यंजन 33 है, तो तेलुगु में 36 व्यंजन होते हैं। तेलुगु और हिन्दी में संयुक्ताक्षर और द्वित्वाक्षर लिखने में थोड़ा अंतर पाया जाता है। फिर भी भारत के सबसे ज्यादा लोग प्रयोग करने वाले इन दोनों भाषाओं की लिपियाँ विश्व भर में विख्यात लिपियाँ हैं।

5.4. काल खंड

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अनुसार हिन्दी साहित्य को चार खंडों में विभाजित किया गया है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काला लगभग यह काल 10 वीं शताब्दी से माना गया है। तेलुगु साहित्य को भी कवि और रचनाओं के अनुसार सात युगों में विभाजित किए गए है।

1. अज्ञात युग या शासन युग (प्रग्‌नन्नय्या युग)

2. पुराण काव्य युग (भाषांतरीकरण युग)
3. काव्य युग
4. प्रबंध युग
5. गद्य, गेय, यक्षगान युग
6. दक्षिणांद्रयुग
7. आधुनिक युग -खण्ड काव्य युग।

हिन्दी और तेलुगु युग विभाजन को इस हिन्दी काल विभाजन के अनुसार तुलना करने का प्रयास करेंगे।

5.4.1. आदिकाल -अज्ञात, पुराण युग

हिन्दी और तेलुगु साहित्यों के आदिकाल के ग्रंथ आज तक समग्र रूप में उपलब्ध नहीं हुए हैं। अभी तक उस काल का साहित्य अंधकार के गर्भ में लीन है। इसलिए तेलुगु भाषा की उत्पत्ति का समय निर्धारित करना कहिन ही नहीं, अपितु असंभव-सा प्रतीत होता है। 7 वीं शताब्दी के पूर्व आंध्र में प्राकृत भाषा का ही बोलबाला था। राजा महाराजाओं के दरबारों में प्राकृत और संस्कृत भाषाओं को ही बोलती रही। देशी भाषा, तेलुगु का वहाँ पर आदर न था। कुछ भी हो, तेलुगु में 10वीं शताब्दी के पूर्व का कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। जो कुछ सामग्री मिली है, वह शिला-लेखों में अंकित है। मौर्य - युग के पश्चात् और दसवीं सदी के पूर्व आंध्र में बौद्ध व जैन धर्मों का उत्कर्ष हुआ और पतन भी। इसी बीच अन्य- धर्मावलंबियों के साथ धार्मिक विद्वेष के कारण बौद्ध व जैन साहित्य जो तेलुगु में रचा गया था, जला दिया गया। इसमें हिन्दू - कवियों द्वारा रचित साहित्य भी इसी प्रवृत्ति के कारण नष्ट हो गया है। हाँ, गुणाढ्य विजयादित्य तथा विजयवाडा के शासक युद्ध मल्लु के शिला - लेखों द्वारा हम उस समय की कविता का परिचय पा सकते हैं। ये शिला-लेख भी पद्य में अंकित होते थे। किंतु कुछ विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार के पद्य - साहित्य के अतिरिक्त असंख्य पद एवं गीतों की भी रचना हुई थी। पालकुरिकि सोमनाथ ने इस बात का अपने काव्यों में उल्लेख किया है। परंतु वे गीत और पद अनुश्रुत रूप में परंपरागत प्राप्त होते आये है। उन्हें लिपि-बद्ध करने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। परिणाम स्वरूप वे प्रजादर के अभाव के कारण लुप्त हो गए। इसके अतिरिक्त तेलुगु के आदिकवि नन्न्यभट्ट के प्रादुर्भाव के बाद इन गीतों का शिष्ट- समाज में कोई आदर ही न रहा। इसी समय तेलुगु में देशि - कविता और मार्ग - कविता के (इसमें संस्कृत शब्दों की बाहुल्यता थी) रूप में काव्य के दो रूप जनता के सामने आये।

हिन्दी के संबंध में भी यहीं कठिनाई है। प्राय: हर एक भाषा गीतों के रूप में ही प्रारंभ होती है। गीत और पद ही साहित्य के प्रारंभिक रूप हैं। हिन्दी का प्रथम कवि व ग्रंथ के संबंध में अभी विद्वानों में मतभेद है। क्यों कि जो ग्रंथ उपलब्ध है, वे अपभ्रंश - भाषा में हैं। अतः अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी कहाँ तक मानें, यह विवादास्पद है। किन्तु हिन्दी के विद्वानों का कथन है कि हिन्दी भाषा पर उस युग में अपभ्रंश का प्रभाव अधिक रहा है। महापंडित राहुल सांकृत्यान के मतानुसार हिन्दी का प्रथम कवि बौद्धाचार्य झरस्पा है। ये 8वीं शताब्दी में विद्यमान थे। उनके तीन, काव्य भी उपलब्ध हैं। इनके उपरांत अन्य कवियों में स्वयंभू कवि, कवि पुष्पदंत, शांतिपा, हेमचंद्र सूरि, जैनाचार्य मेरुतुंग और विद्यापति के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं। विद्यापति ने अवहट्ट (अपभ्रंश) भाषा तथा मैथिली दोनों भाषाओं में रचनाएँ कर भावी कवियों का मार्ग अत्यंत सुगम एवं प्रशस्त किया है। इनकी रचनाओं में कीर्तिल्ला, कीर्तिपताका, शिवसिंह सरोज इत्यादि उल्लेखनीय है।

तेलुगु और हिन्दी के प्रारंभिक युगों के काल - क्रम में भी काफी समानता है।

तेलुगु के पुराण युग ई. सन् 1000 से 1380 तक माना जाता है तो हिन्दी के वीरगाथा काल वि. स. 1050 से 1375 तक माना जाता है। दोनों युगों के आविर्भाव का प्रधान कारण धर्म और देश का रक्षा कहा जा सकता है। आन्ध्र देश में जैन व बौद्ध धर्मो का प्रचार इतना बढ़ गया था कि वैदिक धर्म के लुप्त हो जाने की संभावना थी। जैन और बौद्ध धर्मों का स्वरूप भी बहुत बिगड़ा हुआ था। उस समय नन्नयभट्ट ने आन्ध्र के चालुक्य वंशी राजा राजराज नरेंद्र के आदेश के अनुसार मृतप्राय वैदिक धर्म को पुन: प्रतिष्ठापित करने 'आन्ध्र महाभारत' को लिखा था। महाभारत धर्म ग्रंथ है। उसमें धर्म को इस ढंग से प्रतिपादन किया गया है कि धर्मच्युत शेनेवाली जनता के हृदय में अपने धर्म के प्रति आत्मविश्वास का भाव पैदा हुआ है। महाभारत की रचना तीन महाकवियों ने समाप्त की है। एर्राप्रगडा तथा तिक्कना ने भी इस कार्य में अपना हाथ बढ़ाया। नन्नय्या, तिक्कना और एर्राप्रगडा को आन्ध्रा के 'कवित्रय' कहा जाता है। इन तीनों महाकवियों की निर्विराम सेवा के कारण आन्ध्र जनता के लिए संस्कृत महाभारत का स्वाद तेलुगु वाणी में आस्वाद्य हो गया है।

जिस समय दक्षिण भारत में जैन और बौद्ध - धर्मों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, उसी समय उत्तर भारत पर मुसलमानों के आक्रमण देने- लगे थे। यदि उस समय दक्षिण में बिगडे, हुए जैन और बौद्ध धर्मों से लोगों को बचाकर वैदिक धर्म को पुन: प्रतिष्ठापित करने का प्रश्न था तो उत्तर में मान, प्राण, राज्य और धर्म की रक्षा का प्रश्न था। इसलिए दक्षिण के नरेश, धर्माचार्थ एवं पंडित तथा कवि अपने धर्म की रक्षा के लिए उपाय ढूँढकर उन्हें अमल करने लगे तो उत्तर में विदेशी लुटेरों एवं शासकों को रोकने का प्रयत्न करने लगे थे। अतः उत्तर के कवि व पंडित जो राजदरबारों में थे, वे अपने कर्तव्य के पालन के लिए युद्ध के मैदान में भी उतर पड़ते थे। आँखों देखा- देखी दृश्यों का बढा-चढाकर वर्णन किया करते थे । इन कवियों की अधिकांश घटनाएँ कल्पित एवं अतिशयोक्ति - पूर्ण है । इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की खून बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा का पुल बाँध दिया है। उस समय के काव्य व गीत वीर - रस प्रधान होते हुए भी इनमें श्रृंगार - इस का पुट पाया जाता है।

वीरगाथा काल - पुराण युग के साम्यता और भिन्नता :

1. दोनों भाषाओं के कवियों को इस युग में राजाश्रय प्राप्त था।
2. आन्ध्रा में बौद्ध दावं जैन धर्मों के बिगड़े हुए संप्रदायों से वैदिक धर्म की जहाँ रक्षा करनी पड़ी, वहाँ वीर शैव मत के साथ टक्कर भी लेना पड़ा, वैसे ही उत्तर भारत में जहाँ विदेशी मुसलमानों से जाति, धर्म एवं देश की रक्षा का प्रश्न था, वहीं भारत के राजाओं में आपसी फूट का भी सामना करना पड़ा।
3. हिन्दी के चारण और भाट कवि आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा में लगे रहे जब कि तेलुगु के कवियों ने स्वयं भक्त होने के कारण अपने आश्रयदाताओं की प्रेरणा मात्र लेकर समाज को संतुलित रखा। उदाहरण के लिए चंदबरदाई की कविता पृथ्वीराज के गुण - गान तक ही सीमित रही। उस अखिल भारतीय - आदर्श का इसमें समावेश न हो पाया जो नन्नय्या की वाणी की विशेष विभूति है।
4. हिंदी में डिंगल एवं अपभ्रंश भाषा में इस युग में रचनाएँ की गई तो आन्ध्रा में तेलुगु भाषा में मार्ग-कविता (संस्कृत शब्दों मैं की बाहुल्यता होती है) और देशि कविता (ठेठ तेलुगु शब्दों की बाहुल्यता होती है) में रचनाएँ हुई। जैसे गौतम बुद्ध के पहले उत्तर भारत में संस्कृत का बोलबाला था तो बुद्ध ने आम जनता की भाषा 'पाली' में अपने धर्म का प्रचार शुरू किया था वैसे ही मल्लिकार्जुन पंडित व पालकुरि कि सोमनाथ कवियों ने जनता की

बोली में रचनाएँ की। ऐसी साहित्यिक धाराएँ इस युग के हिन्दी - साहित्य में नाममात्र के लिए भी नहीं मिलती ।

5. जिस तरह हिन्दी में वीर इस प्रधान काव्यों की अभिव्यक्ति के कारण इस युग का नाम 'वीर गाथा काल' रखा उसी प्रकार अनेक पुराणों का अनुवाद होने के कारण तेलुगु में इस युग को 'पुराण युग' कहा गया।
6. हिन्दी में 'रासो' काव्यों के अतिरिक्त इस युग में 'आल्हा खंड', 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका', 'विद्यापति पदावली' आदि आयी। तेलुगु में शतक, प्रबंध काव्य तथा पुराणों में वर्णित आख्यानों पर स्वतंत्र काव्य भी रचे गए।
7. तेलुगु साहित्य के यह युग आदिकाल होते हुए भी सभी दृष्टियों से पूर्ण कहा गया था। भाषा से संबंधित व्याकरण ग्रंथों की रचना हुई, पुराणों की रचना हुई, काव्य के लक्षण ग्रंथों की रचना भी हुई। हिन्दी में इस तरह की रचनाएँ रीतिकाल तक नहीं हुई। इस दृष्टि से तेलुगु का प्रथम युग या आदिकाल प्रौढ़-साहित्य से परिपूर्ण कहा जा सकता है।
8. भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी के वीरगाथा काल की अपेक्षा तेलुगु का पुराण-युग काफी विकसित एवं पूर्ण माना जा सकता है। तिक्कन, नन्नया जैसे कवि हिन्दी में उस समय पैदा नहीं हुए हैं।
9. विषय वैविध्य की दृष्टि से भी पुराण युग परिपूर्ण कहा जा सकता है।
10. उत्तर भारत में दिल्ली, अजमीर, कन्नौज इत्यादि केन्द्र जैसे कवियों के आश्रय स्थान थे वैसे ही आन्ध्रा में राजमंड्री, नल्लूर, वरंगल और अद्धंकि प्रधान केंद्र थे।

5.4.2. भक्तिकाल : प्रबंध युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में वि.स. 1397 से 1700 तक के काल को भक्तिकाल कहा गया तो तेलुगु इतिहास में इसे 'प्रबंध युग' (सन् 1381 से सन् 1650 तक) कहा गया। तेलुगु और हिन्दी साहित्यों के बीच करीब 50 साल का अंतर दिखाई देता है। लेकिन हिन्दी में ई. सन् के स्थान पर विक्रमी संवत् का प्रयोग हुआ है। विक्रमी संवत् में से 57 वर्ष घटाने पर दोनों का लगभग एक ही समय ठहरता है। तेलुगु के पुराण युग में अनेक विषयों के ग्रंथ रचे गए। प्रायः समस्त प्रसिद्ध संस्कृत पुराणों का अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत हुआ। किसी पुराण की छायानुवाद है तो किसी का भावानुवाद और किसी पुराण के अनुकरण पर ही काव्य रचना हुई। परंतु हिन्दी की यह बात नहीं। हिन्दी में भक्तिकाल स्वर्ण युग माना जाता है तो तेलुगु में प्रबंध-युग अथवा कृष्णदेवराय युग। कृष्णदेवराय के दरबार में अष्टदिग्गज नाम से विख्यात आठ महाकवि थे। आठों ने अद्वितीय ग्रंथ राजों की सृष्टि की है। कृष्णदेवराय भी स्वयं संस्कृत और तेलुगु के प्रकांड पंडित व कवि थे। उनकी 'भुवन विजय' नामक सभा में वसंत कालीन कवि गोठियाँ इंद्रलोक का स्मरण दिलाती है। इस युग में अनेक महाकाव्य रचे गये।

हिन्दी - साहित्य में भक्तिकाल (1375-1700) स्वर्ण-युग माना जाता है किंतु तेलुगु वाग्डमय में इस प्रबंध युग को दो कालों में विभाजित किया गया है। 1. रेड्डि युग (1380-1500)

2. कृष्णदेवराय युग व स्वर्णयुग (1500-1659)

उत्तर भारत में 1376 से 1700 तक की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न भी। दक्षिण में उस समय उत्तर की भाँति विदेशियों के शासन में कई तरह की यातनाएँ उठानी न पड़ी। यहाँ पर अशांति और

गृह- कल्लोलों का साम्राज्य न था। आंध्र में रेड्डि- युग, रायलुयुग एवं- इन दोनों युगों में कवियों को राजाश्रय प्राप्त था। कवियों का ऐसा सम्मान होता व कि भारत के इतिहास में कहीं भी हमें ऐसे उदाहरण उपलब्ध नहीं होते हैं।

उत्तर भारत में 1376 के बाद 1700 तक का समय मुगल तथा अन्य मुस्लिम शासकों का समय था। हिन्दू राजा तो निर्वीर्थ हो अपनी प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ साबित हुए थे। ऐसी दशा में वहाँ की प्रजा पूर्ण असंतुष्ट थी। वीरगाथा काल के समय में तो हिन्दुओं के देव मंदिर उन्हीं की आँखों के सामने खंडहर बना दिये गये थे। उनके तन, मन और धन की रक्षा न हो सकती थी। उस समय हिन्दू - जनता की दशा दयनीय थी और वह मुस्लिम शासकों के आतंक से जस्त थी। कबीर, जायसी जैसे कुछ कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम जनता के बीच मैत्री स्थापित करने का प्रयत्न किया। कबीर हिन्दू - मुस्लिम दोनों धर्मों की बुराइयों का खुलकर खंडन किया। मूर्तिपूजा, जप, तप, उपवास, गो-वध जातिभेद इत्यादि की कड़ी आलोचलना की। ईश्वर- संबंधी ज्ञान प्राप्त किये बिना मुक्ति प्राप्त करना असंभव है। उत्तर भारत में कबीर के आविर्भाव के पूर्व ही दक्षिण में अनेक धर्माचार्यों का उद्भव हुआ था। आठवीं शताब्दी में तो शंकराचार्थ, दसवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य, बारहवीं शताब्दी में वल्लभाचार्य तथा मध्वाचार्थ इत्यादि पैदा हुए थे। रामानुजाचार्य के एक प्रमुख शिष्य थे श्री रामानंदजी। श्री रामानंद से ही कबीर और तुलसी ने दीक्षा प्राप्त कर ली। एक ओर श्री रामानंद ने वैष्णव संप्रदाय का विशेष प्रचार किया और समस्त उत्तर भारत को भक्ति के प्रवाह में परिप्लवित किया तो दूसरी ओर वल्लभाचार्य ने कृष्णामृत का पान कराकर लोगों को आनंदविभोर किया। कहा जाता कि वल्लभाचार्य ने सूरदास को अष्टाक्षरी मंत्र का उपदेश कर दीक्षित किया। जैसे हिन्दी में, वैसे तेलुगु में भी इस युग में भक्ति-साहित्य की प्रधानता रही। पर तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर हिन्दी में भक्ति - साहित्य की रचनाएँ अधिक संख्या में मिलती हैं। कबीर, जायसी, सूर और तुलसी ने भक्ति मार्ग की भिन्न- भिन्न शाखाओं का जो प्रतिनिधित्व किया था, उसका सादृश्य तेलुगु में बहुत कम मिलते है। किन्तु वेमना और कबीर, पोतना और तुलसी की निस्संदेह समता कर सकते हैं।

5.4.3. रीतिकाल: दक्षिणांध्रयुग और संधियुग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में वि. सं. 1700-1900 तक के काल के रीतिकाल कहते हैं तो तेलुगु साहित्य के इतिहास में इस काल को दो भागों में विभाजित किया गया है। दक्षिणांध्रयुग - ई. स. 1650-1800, संधियुग- ई. स. 1800-1900 तक। इसमें 57 वर्ष जोड़ने पर विक्रमी संवत् बन जाता है। इसलिए लगभग इन युगों में समानता पायी जाती है। विषय व रचना-विधान की दृष्टि से दोनों युग पूर्ण रूप से भिन्न मार्ग पर चले है। 1700 से 1900 तक हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का लक्षण युग माना जाता है तो तेलुगु में प्रारंभ से ही लक्षण-ग्रंथों की रचना होती आयी। अतः यह कहना होगा कि तेलुगु - साहित्य में लक्ष्य एवं लक्षण ग्रंथों की रचना क्रमशः होती आयी है। हिन्दी में बिहारी, देव, पद्माकर जैसे प्रतिभाशाली कवि हुए हैं।

तेलुगु का दक्षिणांध्रयुग भी रायल युग की भाँति समृद्ध रहा। राजा रघुनाथ नायक ने तंजाऊर के अपने दरबार में तेलुगु, संस्कृत एवं संगीत के विद्वानों का पोषण कर साहित्य और संगीत की स्तुल्य सेवा की। वे स्वयं कवि और संगीतज्ञ थे। रघुनाथ नायक के दरबार में कई कवइत्रियाँ भी थीं। उनमें रामभद्रांबा और मधुरवाफी के नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजा रघुनाथ राय और उनके पुत्र विजय राघव नायक भी कवि व पंडित थे। राजा रघुनाथ राय 'संगीत सुधा' नामक संगीत शास्त्र ग्रंथ लिखा तो विजय राघव 'यक्षगान' लिखकर तेलुगु साहित्य में एक नयी शाखा की पुष्टि को इस काल के 'आन्ध्र जयदेव' नाम से विख्यात श्री क्षेत्रय्या के पद कर्नाटक संगीत की निधि कहे जा सकते है। कुरविंजी, यक्षगान इत्यादि देशी रूपकों को प्रादुर्भाव इसी समय में हुआ। राजा कला प्रेमी थे। कलाकारों का पोषण करना और उनका

सम्मान करना अपना कर्तव्य समझते थे। विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद मदुरा, तंजाऊर, चंद्रगिरी आदि दक्षिण के केन्द्रों में तेलुगु साहित्य का अच्छा पोषण और विकास हुआ है। इन राज्यों के पतन के बाद तेलुगु कवियों को राजाश्रय प्राप्त नहीं हुआ। अंग्रेजों के आगमन के बाद एक शताब्दी तक तेलुगु साहित्य की प्रगति रुक-सी गयी। इसलिए 1800 से 1900 का समय तेलुगु साहित्य का संधि युग कहा गया है। फिर भी इस युग में चिन्नय सूर कवि, कंकंहि पापाराजु तिम्मना आदि कवि के नाम अत्यंत आदर के साथ लिये जा सकते हैं। हिन्दी में जिस प्रकार सतसई - परंपरा चल पड़ी, उसी प्रकार तेलुगु में इस काल में शतक परंपरा का विकास हुआ है। शतक के माने 100 स्फुट पद्यों का संग्रह है। यह देशी छंद और संस्कृत के वर्ण-व्रतों में लिखा जाता है। हिन्दी में बिहारी सतसई, वृंद - सतसई आदि जैसे बहुत प्रसिद्ध है, उसी भाँति तेलुगु में दर्जनों शतक प्रसिद्ध हैं। उनका बहुत व्यापक प्रचार हुआ है। ये शतक पहले भक्ति प्रधान होते थे। धीरे-धीरे नीति, धर्म, सदाचार इत्यादि के प्रचारार्थ भी रचे गये है।

हिन्दी रीतिकाल में रची गयी ग्रंथों की ऐहलौकिकता, नायिका भेद और अलंकार - प्रियता आदि प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्रायः सब कवियों ने ब्रज- भाषा को अपनाया है। इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों को लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग में श्रृंगार की प्रधानता रही। यह युग मुक्तक रचना का युग रहा। तेलुगु इतिहास की तरह हिन्दी रीतिकाल में भी कवि राजाश्रित होते थे। वे अधिकतर दरबारी कवि थे। इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। इस काल के प्रमुख कवि भूषण रीति शैली को अपनाते हुए वीरों की पराक्रमा का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय तेलुगु शतक साहित्य के समान नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंध काव्य भी लिखा गया। इस काल के और एक प्रसिद्ध कवि बिहारी ने रीतिसिद्ध शैली में रचनाएँ लिखी। हिन्दी के रीतिकाल में तीन प्रकार, के श्रेणियाँ देखने को मिलते हैं- रीतिबद्ध, रीतिमुक्त कवि, रीतिसिद्ध कवि।

तेलुगु के और एक प्रक्रिया गेय साहित्य है। हिन्दी में 'पद' नाम से प्रसिद्ध गीत ही तेलुगु में 'पाट', 'कीर्तन', 'संकीर्तन' अथवा 'गैय' नाम से प्रचलित है। सूरदास, तुलसीदास, मीरा, कबीर इत्यादि भक्त जैसे पदों की रचना करके गाया करते थे और भक्ति में तन्मय हो जाते थे वैसे ही तेलुगु साहित्य में अन्नमाचार्य, क्षेत्रय्या, रामदास और त्यागराजु ने भक्ति में तल्लीन होकर अपने आराध्य देव पर सैकडों पर, भजन एवं कीर्तन रचकर गाया है।

5.4.4. आधुनिक काल

हिन्दी - तेलुगु के आधुनिक काल का साहित्य करीब-करीब एक ही समय में हुआ। सन् 1875 से लेकर आज तक के साहित्य को आधुनिक काल के साहित्य कहा जाता है। इसलिए दोनों वाङ्मयों की प्रवृत्तियों में समानता का होना भी सहज है। युग की परिस्थितियों का प्रभाव ज्यों-ज्यों साहित्य पर पड़ता गया त्यों-त्यों वे भावनाएँ भी कविता, कहानी इत्यादि रूपों में मुखरित हुई। 20 वीं शती के प्रथम दशाब्द में राजा राममोहन राय के मानवतावाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा और स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द इत्यादि के प्रबोधों द्वारा निद्राण हिन्दू जाति जागृत हुई और लोकमान्य ने हममें प्राचीन संस्कृति की ओर प्रवृत्त कर आत्मविश्वास एवं आत्माभिमान की भावनाएँ पैदा की। इधर राष्ट्रीय आंदोलन ने भी कवि को अपनी ओर आकृष्ण किया। परिणाम स्वरूप साहित्य में प्राचीन और आधुनिक भावनाओं एवं विचारधाराओं का सुन्दर समन्वय हमें दृष्टिगोचर होता है। राजा राममोहन राय का प्रभाव तेलुगु साहित्य के युग निर्माता श्री वीरेशलिंगम पंतुलु पर पड़ा। श्री वीरेशलिंगम जो अपने समय के बहुत बड़े सुधारक थे। इन्होंने समाज की सभी कुरीतियों को साहित्य द्वारा दूर करने का बीडा उठाया। समाज-सुधार के कार्यक्रम में साहित्य का साधन बनाया

। बाल विवाह, वृद्ध-विवाह, स्त्री-शिक्षा इत्यादि आंदोलनों द्वारा उन्होंने आन्ध्र का बहुत बड़ा उपकार किया है। साहित्यिक भाषा को छोड़ जन साधारण की बोली में काव्य रचना कर सर्व-साधारण तक अपने सुधारवादी विचारों को पहुंचाया। पत्र - पत्रिकाएँ चलाकर सुधारवादी आन्दोलन को बल प्रदान किया और सदियों थे समाज द्वारा कुचली जानेवाली नारी -जाति का उद्धार किया। महिलाओं की साक्षर बनाने, उनमें समाज की अन्ध रूढ़ियों का सम्मिलित रूप से सामना करने का बल एवं आत्मविश्वास पैदा किया। यहीं नहीं भाषा, साहित्य इत्यादि के क्षेत्र में भी श्री. वीरेशलिंगम जी ने जो कार्य किया है, वह अद्भुत एवं अनुपम है।

हिन्दी साहित्य में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा आचार्य महावीर प्रसाद जी ने जो कार्य किया है, वह समस्त कार्य तेलुगु साहित्य के लिए अकेले श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने किया है। भारतेंदुहरिश्चंद्र की तरह श्री पंतुलु जी ने तेलुगु साहित्य का प्रथम उपन्यास, प्रथम प्रहसन, प्रथम जीवनी, प्रथम नाटक की रचना की। पत्र-पत्रिकाएँ चलाकर सभा-समाजों की स्थापना कर, तेलुगु साहित्य की उन्नति में अच्छा योगदान दिया है। कवियों की जीवनियाँ लिखकर साहित्यिक इतिहास की रचना का मार्ग प्रशस्त किया। हिन्दी के आधुनिक साहित्य का आरंभ भारतेंदु से हुआ। भारतेंदु ने 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी इस पत्रिका का संपादक के रूप में कार्यरत किया और यह पत्रिका हिन्दी त्याहित्य का सबसे प्रसिद्ध पत्रिका है। भाषा के परिमार्जन में भारतेन्दु ने जो स्वरूप निर्धारित किया, वही रूप बाद को अपनाया गया। इस प्रकार हम भारतेन्दु को आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता करें तो कोई अत्युक्ति न होगी। परन्तु व्याकरण की दृष्टि से भाषा में जो त्रुटियाँ रह गयी थीं, उनका परिमार्जन आगे चलकर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। क्यों कि भारतेन्दु का क्षेत्र इतना व्यापक था कि वे व्यस्त रहने के कारण भाषा की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दे सके। परन्तु तेलुगु में थे दोनों कार्य वीरेशलिंगम पंतुलु जी ने संपन्न किये।

यों तो गद्य का जन्म एवं विकास आधुनिक काल में ही हुआ। यह कथन केवल तेलुगु तथा हिन्दी के विषय में ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय भाषाओं के लिए भी हो सकता है। आधुनिक काल में गद्य के विभिन्न अंग एवं उपांगों की पूर्ति होने लगी। साथ ही इन सभी शाखाओं की उन्नति चरमसीमा तक पहुँची। पत्र- पत्रिकाएँ, मुद्रण शाखा का विकास हुआ। वैज्ञानिक उन्नति के साथ मानव-समुदाय की आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं, उनकी रुचि भी परिष्कृत होती गयी। अनेक प्रकार के शाखों का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा। दोनों साहित्यों में अभिव्यक्तीकरण की पद्धतियाँ, विषय का प्रतिपादन, विचारधारा का परिस्कृत रूप के सामने आया।

इस युग में गए लेखकों की संख्या भी बढ़ती गयी। सबने अपने - अपने ढंग से विभिन्न विषयों पर शोध करके आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत किये। इस काल में अनेक लेखकों ने हिन्दी गद्य की उन्नति में हाथ बंटाया है। उनमें बाबू देवकीनंदन खत्री, पंडित किशोरीलाल गोस्वामी, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय बाबू श्याम सुन्दरदास, पं. रामचंद्र शुक्ल, बाबू जयशंकर प्रसाद, बाबू प्रेमचंद जी आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इस अवधि में तेलुगु गद्य को समृद्ध बनाने में अनेक विद्वानों ने अपना योगदान दिया है। धर्मवीर कृष्ण माचार्युलु जी, श्री जयंति रामच्य पंतुलु श्री वेदम् वेंकटराम शास्त्री आदि का नाम उल्लेखनीय है। बाबू श्यामसुंदर दास काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा अनेक ग्रंथों का प्रणयन कर हिन्दी गद्य के अनेक अंगों की पूर्ति की। तेलुगु गद्य की शैली में सुधार लेने का श्रेय श्री गिड्गु राममूर्ति पंतुलु को है। उनका विचार था कि भाषा-शैली ऐसी हो कि सर्व साधारण जनता को

समझ में आ सके। इसलिए उन्होंने तेलुगु की बोलचाल की भाषा में सुधार लाया। इसी प्रकार आधुनिक काल में हिन्दी - तेलुगु दोनों भाषाओं में विभिन्न लेखक विभिन्न शैलियों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की।

हिन्दी का राजभाषा घोषित करने के बाद हिन्दी में और अन्य भाषाओं में अनुवाद करके लेखक साहित्य की परंपरा में अपना सक्रिय सहयोग दे रहा है। तेलुगु और हिन्दी भाषाओं की वृद्धि में अनेक संस्थाएँ भी कार्यरत है। आन्ध्रा में 'आन्ध्र साहित्य', 'अकादमी', 'तेलुगु भाषा समिति', 'आन्ध्र साहित्य परिषद्', आदि है तो हिन्दी ही श्री वृद्धि में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा', 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 'बिहारी राष्ट्रभाषा परिषद्', 'हिन्दुस्तानी अकादमी' साहित्य अकादमी' आदि उल्लेखनीय है।

5.5. सारांश

हिन्दी - तेलुगु दोनों भाषाओं के साहित्य का इतिहास लगभग एक ही समय में शुरू हुआ था। काल विभाजन, साहित्यिक प्रक्रियाँ, प्रवृत्ति, कथानक, लेखक की विधि आदि में समान दृष्टिकोण को देख सकते हैं। आदिकाल या पुराण काल के साहित्य में रासो ग्रंथों का, पुराणों का उद्भव हुआ तो भक्ति काल - कृष्णदेवरायलु काल में काव्यों की उन्नति हुई। रीतिकाल - दक्षिणांध्र युग में विभिन्न प्रकार की शैलियों का उद्भव हुआ। आधुनिक काल में दोनों भाषाओं के साहित्य का विकास एक जैसा ही हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन, पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से विभिन्न साहित्यिक शैलियों का आगमन हुआ। इन सब को हम दोनों भाषाओं के साहित्य में देख सकते हैं।

5.6. बोध प्रश्न

1. हिन्दी - तेलुगु साहित्य भाषाओं की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में लिखिए।

2. हिन्दी-तेलुगु कालखंडों के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।

3. हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल स्वर्ण युग है तो रायलु युग तेलुगु साहित्य में स्वर्ण युग विवेचना कीजिए।

5.7. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी तेलुगु - तुलनात्मक अध्ययन- सुंदर रेड्डी।

2. भारतीय साहित्य - डॉ. आर. आई. शान्ति, डॉ. प्रकाश. ए.।

3. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- इंध्रनाथ चौधरी।

डॉ. एम. मंजुला

6. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-संक्षिप्त परिचय

6.0. उद्देश्य

हिन्दी राजभाषा के रूप में घोषित होने के बाद उसका महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। राजभाषा हिन्दी का महत्व बढ़ जाने के कारण प्रादेशिक भाषाओं के विकास में कोई अवरोध उपस्थित हो। इन परिस्थितियों में राजभाषा एवं प्रादेशिक भाषाओं को समृद्ध बनाने के लिए साहित्यिक आदान-प्रदान की एवं तुलनात्मक अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है। इसी क्रम में इकाई में हम हिंदी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों के बारे में विस्तृत रूप जानेंगे। हिंदी और तेलुगु में समान प्रवृत्तियों की एक संक्षिप्त तुलनात्मक साहित्य के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों के बारे में जानेंगे;
- हिन्दी और तेलुगु कृष्ण भक्ति-धारा और रीति काव्य-धारा के कवियों के बारे में और अंतः ;
- आधुनिक युग के युग प्रवर्तकों के बारे में संक्षिप्त रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

6.1.प्रस्तावना

6.2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण भक्ति-धारा

6.3.हिन्दी और तेलुगु के रीति काव्य-धारा

6.4. हिन्दी और तेलुगु के आधुनिक कवि

6.5. हिन्दी और तेलुगु काव्य-धाराओं में उपलब्ध समान प्रवृत्तियाँ

6.6. हिन्दी और तेलुगु - तुलनात्मक साहित्य का विकास

6.7. प्रगतिवाद- अभ्युदय कविता

6.8. छायावाद- भाव कविता

6.9. प्रयोगवाद- दिगंबर कविता

6.10. समकालीन हिन्दी -तेलुगु कविता

6.11. सारांश

6.12. बोध प्रश्न

6.13. सहायक ग्रंथ

6.1.प्रस्तावना

सर्वप्रथम हिंदी के प्रसिद्ध कवि विद्यापति और तेलुगु के क्षेत्रय्या की काव्य भूमिका ओका अनुशीलन किया गया है ये दोनों अपने-अपने प्रांत के रससिद्ध कवि हैं दोनों ने राधा कृष्ण की रसमयी लीलाओं का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है और कबीर ओके काव्य में जो तत्व चिंतन प्रतिपादित हुआ है वही वेमना की वाणी में मुखरित हो उठा है कबीर और वे माना दोनों जन कवि थे दोनों की भाषा व्यावहारिक थी दोनों की रचनाओं में भावों कि तीव्रता हृदय की गंभीर अनुभूति जीवन का गहन अनुभव विद्यमान हैं दोनों ने मूर्तिपूजा, बाह्याडंबर, जप, तप, व्रत एवं जाति-पाँति के भेदभाव का निर्भीकता के साथ खंडन कर समाज आशिक क्षेत्र में क्रांतिकारी भावनाओं का प्रचार किया है। ये दोनों अपने-अपने प्रांतों में प्रथम जनकवि ही नहीं युग प्रवर्तक के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। आगे और कवियों के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण भक्ति-धारा

कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने 'सूरदास' और 'पोतना' एक दूसरे के अत्यंत निकट प्रतीत होते हैं दोनों पहले भक्त थे, बाद में कवि हैं। दोनों का हृदय भावुकता और तन्मयता से ओतप्रोत है। श्रीकृष्ण की सरस क्रीड़ाओं तथा लीलाओं में दोनों का भावुक मन समान रूप से रम गया है सूर वात्सल्य रस के सम्राट है तो पोता ना शांत रस के इसी धारा के अंतर्गत 'मीराबाई' और 'अन्नमाचार्य' की तुलना की गई है दोनों की भावधारा एक रही है। मीरा कृष्ण की अनन्य आराधिका है तो अन्नामाचार्य श्री बालाजी के अनन्य आराधक रहे दोनों के गीत उनकी अंतरात्मा की पुकार मात्र है। उनमें हृदय की कसक है भक्त का आत्मकृदंत है, आत्म निवेदन है और मार्मिकता तथा कोमलता का अद्भुत मिश्रण। अपने इष्टदेव ही दोनों के लिए सर्वस्व है दोनों के पद अन्य भक्त कवियों के पदों की तरह लोगों के कठहारे बन हुए हैं।

6.3.हिन्दी और तेलुगु के रीति काव्य-धारा

रीति काव्य-धारा में 'केशव' और 'श्रीनाथ' की तुलना में इन्होंने सुंदर और महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किये गये हैं। नीति तत्व के प्रतिपादक की दृष्टि से वृंद और रहीम और एनुगु लक्ष्मण कवि, गिरिधर राय और मरण वेंकय्या का तुलनात्मक अध्ययन चर्चानीय है। वह अत्यंत समीचीन है। दोनों साहित्यों में नीति और सूक्ति साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। यह कवि स्वभाव से सरल थे अतः उनकी कविता में सर्वत्र सरलता और स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। जिन भाषा में अपनी रचनाओं को लिखने के कारण दोनों भाषा क्षेत्र की जनता के जिक्र पर उनके पद्य रहते हैं उनकी वाणी का प्रभाव जनमानस पर स्पष्ट है।

6.4. हिन्दी और तेलुगु के आधुनिक कवि

आधुनिक युग एक प्रकार से गद्य का ही युग है प्रवर्तन दोनों भाषाओं में उत्पन्न हुए। हिंदी में भारतेन्दु ने जिस प्रकार आधुनिक युग का प्रवर्तन किया इस प्रकार तेलुगु में वीरेशलिंगम पंतुलु। दोनों साहित्य की विविध विधाओं का सृजन कर परवर्ती कवियों तथा लेखन का मार्गदर्शन किया। दोनों ने सुधारवादी आंदोलन, भाषा और स्त्री शिक्षा के आंदोलन को बल प्रदान किया।

हिन्दी के गुप्त जी और तेलुगु के गुरजाड अप्पाराव दोनों का देश-प्रेम और राष्ट्रीयता, संस्कृतिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। देश-प्रेम का जो उदात्त रूप इनकी रचनाओं में विपुल मात्रा में मिलता है। वह अत्यंत दुर्लभ है। दोनों अपने समय के प्रतिनिधि कवि हैं। कवि सम्राट श्री. विश्वनाथ सत्यनारायण, महाकवि जयशंकर प्रसाद के अत्यंत निकट है। दोनों की प्रतिभा अपनी-अपनी रचनाओं में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है। दोनों ने साहित्य के सभी अंगों पर लेखनी चलकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया।

प्रसाद जी का 'कामायनी' महाकाव्य और विश्वनाथ का 'रामायण कल्पवृक्ष' के अनमोल रतन है। कामायनी का संदेश यह है कि मानव को जीवन में सदा समरस रहना चाहिए और यह समरसता बुद्धि और हृदय के संतुलन द्वारा ही प्राप्त होती है। सत्यनारायण ने रामायण कल्पवृक्ष् द्वारा मानव-जीवन के जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थों से संबंधित हैं, उदात्त रूप का संदेश दिया है।

हिन्दी साहित्य के निराला और तेलुगु साहित्य के श्री-श्री ने कविता के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोग किये। दोनों संघर्ष और विद्रोह के कवि हैं। दोनों समाज की विषमता और मानव-जीवन की कुरुपता देखकर अधिक क्षुब्द होते हैं और उन्होंने उसे क्षोभा को अपनी-अपनी रचनाओं में व्यक्त करते हैं। इनके अलावा कविवर 'पंत' और 'कृष्ण शास्त्री' दोनों प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। सौंदर्य-प्रियता और स्निग्ध कोमलता उनकी कविता के विशेष गुण हैं। दोनों मानव के सुंदर रूप के पुजारी हैं। दोनों युग के साथ-साथ चलते हैं। दोनों में समान भाव-धार दृष्टिगोचर होती है।

'रायप्रोलु सुब्बाराव' तथा रामधारी सिंह 'दिनकर' दोनों ओजस्वी कवि हैं। उनकी रचनाओं में नवनिर्माण का आग्रह है। दोनों की कविता राष्ट्रीय भावना से परिप्लुत है। दोनों ने राष्ट्रदेवता की समान रूप से आराधना की है। इस रूप में इन दोनों की तुलना युक्ति-युक्त है।

6.5. हिन्दी और तेलुगु काव्य-धाराओं में उपलब्ध समान प्रवृत्तियाँ

हिन्दी और तेलुगु में भाषा-पारिवारिक दृष्टि से पार्थक्य के होते हुए भी उनकी आत्मा एक है। जैसे समाज में अनेक प्रकार के धर्मों, विचारधाराओं और जीवन- प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है। उसी कारण से अनेक अभिव्यंजना-पद्धतियों के रहते हुए भी हिन्दी और तेलुगु-साहित्य की मूलभूत एकता और चेतना

का अनुसंधान भी सहज संभव है। यहाँ इस एकता के आधारभूत तत्वों का विश्लेषण कर लेना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। दोनों साहित्यों के विकास के चरण प्रायः समान ही हैं।

हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं में ग्यारहवीं शताब्दी से व्यवस्थित साहित्य उपलब्ध होने लगता है। दोनों में काल-विभाजन भी समान रूप में हुआ है-आदि युग, मध्य युग, आधुनिक युग। इन्हीं को चार कालों में विभक्त किया गया है। हिन्दी मैं आदिकाल या चारणकाल, भक्तिकाल या पूर्व-मध्यकाल, रीतिकाल या उत्तर मध्यकाल तथा आधुनिक काल की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। ठीक इसी तरह तेलुगु में भाषांतरीकरण युग, प्रबंध युग, ह्रास युग तथा आधुनिक युग के नाम दिए गए हैं।

इस प्रकार हिन्दी और तेलुगु का सम्पूर्ण साहित्य चार चरणों में विभक्त है-

1. प्रवृत्ति जो हिन्दी और तेलुगु में प्रायः समान मिलती है। वह है-नाथ-साहित्य। दोनों भाषाओं के आदियुग के प्रारंभिक साहित्य के विकास में नाथ-पंथी तथा शैव-साधुओं का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। हिन्दी में सिद्ध तथा नाथपंथी साधुओं की अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। हिन्दी में नाथ-साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है ही। बौद्ध तथा जैन-साहित्य की रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

संभवतः नाथ-साहित्य का सूजन दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा बहुत कम हुआ है। दक्षिण में तो शैव-धर्म का अत्यधिक प्रचार था, किन्तु वहाँ के कवि शैव-योगियों की अपेक्षा शिव भक्त ही अधिक थे। शैव-दर्शन से प्रभावित तांत्रिक घटनाओं का प्रचार वहाँ नहीं था, वरन शिव की सगुण-भक्ति ही प्रमुख थी।

तेलुगु के पालकूरि सोमनाथ तथा उनके परवर्ती कवि तथा कन्नड़ के वीर शैव संप्रदाय के उन्नायक बसवेश्वर आदि उत्तर भारत के नाथ और सिद्ध कवियों से मूलतः भिन्न थे। दाक्षिणात्य कवि, शुद्ध भक्त कवि थे। उत्तर के सिद्ध और नाथ कवि, योगी अथवा तांत्रिक साधक थे। फिर भी नाथ संप्रदाय का प्रभाव सुदूर दक्षिण तक पहुँच गया था। तेलुगु कवि गौरना कृत 'नवनाथ चरितम्' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

2. उभय क्षेत्रीय भाषाओं में यह प्रायः समान है। हिन्दी के आदिकाल को तो इतिहासकारों ने वीरगाथाकाल नाम ही दे दिया है। हिन्दी में आदिकाल में ही नहीं, मध्यकाल में भी निरंतर चारण-काव्यों की रचना होती रहीं। आरंभ में पृथ्वीराज- रासो तथा उनके पूर्ववर्ती, परवर्ती अनेक रासो ग्रंथ और उधर आल्हखंड प्रभूति वीररसपरक आख्यान् गीत तथा मध्य युग में भूषण, सूदन आदि की रचनाएँ चारण-काव्य के इतिहास में अक्षय गौरव की अधिकारिणी हैं।

तेलुगु में श्रीनाथ का अत्यंत लोकप्रिय काव्य 'पलनाटि बीरचरितम्' इस वर्ग का श्रेष्ठ काव्य है। जन-भाषा में द्विपद शैली में रचित यह काव्य पालनाडु के योद्धाओं के शौर्य और साहस का अत्यंत ओज से दीप्त वर्णन प्रस्तुत करता है। बाद को 'विक्रमांक चरित्र' तथा अनेक काव्यों के अन्तर्गत स्फुट साहित्य के रूप में यह धारा मिलती है। आख्यान गीतों के रूप में पलनाटि वीरगीत, काटमराजु, देशिंग राजु, बोब्बिल कथाओं के गीत आदि इसी परम्परा में मिलते हैं।

3. तीसरी प्रमुख प्रवृत्ति संत-काव्य की है। इसकी परम्परा दोनों भाषाओं में प्रायः समान है। उत्तर में संत-काव्य का सर्वाधिक प्रचार, हिन्दी प्रांत और पंजाब में रहा है। पंजाबी में गुरु नानक तथा सिख कवियों और अनेक हिन्दू- मुसलमान संतों की अमृत वाणी से पोषित संत-काव्य का अनंत भंडार विद्यमान है। इसी प्रकार कबीर, दादू, रैदास, मलूकदास आदि की दिव्य प्रतिभा से आलोकित हिन्दी का संत-काव्य भी गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध है। तेलुगु के वेमना, वीरब्रह्मम् आदि इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं।

प्रेमाख्यान- परंपरा उभय क्षेत्रों में प्रायः समान रूप से प्राप्त है। दोनों भाषाओं के अध्येताओं को यह देखकर एक प्रकार का सुखद विस्मय होता है कि दोनों प्रदेशों में प्रायः एक जैसे प्रेमाख्यान काव्य उपलब्ध होते हैं। अनेक कथानक ऐसे हैं जो थोड़े-बहुत परिवर्तन से दोनों भाषाओं में काव्य-बद्ध किए गए हैं। हिन्दी में प्रेमाख्यानों की परंपरा अत्यन्त समृद्ध है। हिन्दी में लगभग चालीस प्रेमाख्यान काव्य हैं। इन सब की मुकुटमणि है-जायसी की 'पद्मावत'। वास्तव में इसका प्रबंध-कौशल और विरह-वर्णन उत्कृष्ट है। शेष में मधुमालती, मृगावती, चित्रावली, अनुराग, बाँसुरी आदि प्रसिद्ध हैं। तेलुगु में राजेश्वर चरित्रम्, प्रभावती प्रद्युम्नम्, कला-पूर्णोदयम्, चंद्रावती परिणयम, रसिक जन मनोभिरामम और चंद्रलेखा-चिलासमु आदि प्रेम-कथाएँ, काव्य और कथानक दोनों की दृष्टि से अत्यंत रमणीय तथा प्रौढ़ हैं।

इसके अलावा वैष्णव-काव्य की प्रवृत्ति उभय क्षेत्रीय भाषाओं में अधिक व्यापक है। भारतीय साधना-पद्धति में भक्ति का विशेष महत्व रहा है और आरंभ से ही यहाँ भक्ति-भाव प्रचुर मात्रा में रहा है। हिन्दी में वैष्णव-काव्य की अतुल संपत्ति है। हिन्दी प्रदेश में कृष्ण-भक्ति के सभी संप्रदायों के अंतर्गत काव्य-रचना हुई। वल्लभ-संप्रदाय का तो ब्रज में एक प्रकार से गढ़ ही था, निम्बार्क, गौडीय और माध्व-भक्त कवियों की वाणी का विस्तार भी कम नहीं है। इनके अतिरिक्त हितहरिवंश का राधा-वल्लभ-संप्रदाय और मधुरा भक्ति को लेकर प्रचलित कतिपय अन्य संप्रदायों का भी योगदान गुण और परिमाण-दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त श्यालाघ्य है।

राम-काव्य का क्षेत्र ब्रज के पूर्व में भगवान राम की जन्म-भूमि अवध था। हिन्दी का राम-काव्य तुलसी की सार्वभौम दिव्य प्रतिभा के प्रकाश से आलोकित है। भक्ति, दर्शन और कवित्व-तीनों ही दृष्टियों से तुलसी का काव्य अद्वितीय है। हिन्दी के राम-काव्य में दो प्रवृत्तियाँ मिलती है। एक तुलसी द्वारा प्रभावित मर्यादावादी प्रवृत्ति और दूसरी माधुर्य-भाव से प्रेरित शृंगारिक प्रवृत्ति जो राम को रसिक नायक के रूप में ग्रहण करती है और इसका साहित्य भी परिमाण में कम नहीं है। वास्तव में मध्य युग का हिन्दी और तेलुगु का साहित्ये प्रायः भक्ति-साहित्य ही है। भक्ति के क्षेत्र में वैष्णव भावना का प्रचार अधिक रहा है और वैष्णव काव्य में भी माधुर्थ से मंडित कृष्ण-काव्य का।

तेलुगु में भक्ति-भावना का प्राबल्य अपेक्षाकृत अधिक है और भक्ति साहित्य अधिक प्राचीन भी है। तेलुगु में वैष्णव-काव्य राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य की धाराएँ अत्यंत समृद्ध हैं। तेलुगु में राम-कथा से संबद्ध छोटे-बड़े डेढ़ सौ से अधिक काव्य देखने में आए हैं। वस्तुतः राम की भक्ति का प्रचार यहाँ अन्य प्रदेशों की अपेक्षा अधिक रहा है।

सुप्रसिद्ध गायक और गीतकार त्यागराजु ने अपने असंख्य कीर्तन राम को ही समर्पित किए हैं। तेलुगु का प्राचीनतम रामायण 'रंगनाथ रामायण' है, जिसकी रचना 17वीं सदी में हुई थी। अतिरिक्त इसके भास्कर रामायण, गोपीनाथ रामायण, निर्वचनोत्तर रामायण, उत्तर रामायण आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

रामकाव्य की परंपरा आगे बहुत काल तक चलती रही है। कुम्हारिन मोल्ला ने रामकाव्य की रचना की जो अपने काव्यगुण, सरल शैली और आकर्षक वर्णनों के कारण आन्ध में बहुत ही लोकप्रिय है। कृष्ण- काव्य का अनुपम ग्रंथ है-बम्मेर पोतना रचित 'महाभागवत'। यह संस्कृत भागवत से प्रभावित होते हुए भी अपने मौलिक कवित्व गुण की दृष्टि से उससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रबंध-युग 1500-1750 ई. में तिम्मना के 'पारिजात- अपहरण' की विशेष ख्याति है।

6.6. हिन्दी और तेलुगु – तुलनात्मक साहित्य विकास

भारतीय इतिहास की नवीनतम घटना है-स्वतंत्रता की उपलब्धि, जिसने सभी भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया है। भारत ने सत्य और अहिंसा के द्वारा प्राप्त अपनी स्वतंत्रता को विश्व-मुक्ति के रूप में ग्रहण किया है। हमारे लिए यह मौलिक विजय का प्रतीक न होकर आध्यात्मिक मुक्ति का पर्याय है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इस अवसर पर मंगलगीत लिखे गए हैं जो सात्विक उल्लास और लोक-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारी विश्व-मैत्री की सफल विदेशी नीति की प्रेरणा से प्रायः सभी भाषाओं में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक प्रवृत्ति की संवेदना मिली है और आज भारतीय साहित्य का प्रधान स्वर यही है, जो काश्मीर से लेकर केरल तक और आसाम से लेकर सौराष्ट्र तक गूंज रहा है। स्वाधीन भारत में भारतीय भाषाओं का महत्त्व बढ़ गया है और देश की बढ़ती हुई शासकीय और प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूति के निमित्त इन सभी के विकास के संगठित प्रयत्न हो रहे हैं।

इस प्रकार हम देखेंगे कि हिन्दी और तेलुगु के साहित्य के विकास-क्रम में कितनी समानता है। विदेशी धर्म-प्रचारकों और शासकों के प्रयत्न के फलस्व- रूप पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के साथ सम्पर्क एवं संघर्ष और उससे पुनर्जागरण युग का उदय राष्ट्रीय अन्दोलन की प्रेरणा से साहित्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का उत्कर्ष साहित्य में नीतिवाद और सुधारवाद के विरुद्ध प्रति- क्रिया और नई रोमानी सौंदर्य-दृष्टि का उन्मेष, चौथे दशक में सामंतवादी विचारधारा के प्रचार से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव, ईलियट आदि के प्रभाव से नए जीवन की बौद्धिक कुंठाओं और स्वप्नों को शब्द रूप देने के नए प्रयोग और अंत में स्वतंत्रता के बाद विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का विस्तार – संक्षेप में यही आधुनिक हिन्दी और तेलुगु-साहित्य के विकास की रूपरेखा है।

अंतः यह कह सकते हैं कि हिन्दी और तेलुगु में उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त कुछ स्फुट प्रवृत्तियाँ भी ऐसी हैं, जिनमें एक प्रकार का सुखद साम्य मिलता है। हिन्दी में तुलसी रामायण और तेलुगु में रंगनाथ-रामायण तथा भास्कर-रामायण आदि एक व्यापक परंपरा के ही अंग हैं। इसी प्रकार महाभारत काव्य की श्रृंखला भी हिन्दी और तेलुगु में फैली हुई है। हिन्दी में मध्ययुग में अनेक महाभारत लिखे गए, जिनमें गोकुलनाथ और सबलसिंह चौहान के महाभारत और आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार भागवते के रूपांतर भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त संस्कृत काव्य शास्त्र का सार्वभौम प्रभाव भी हिन्दी और तेलुगु की समता का स्थायी आधार है।

भारत का नाट्य शास्त्र, आनंद वर्धन का ध्वन्यालोक, दंडी का काव्यादर्श, मम्मट का काव्यप्रकाश विश्वनाथ का साहित्य दर्पण और पंडितराज जगन्नाथ का रसगंगाधर आदि हिन्दी और तेलुगु में समान रूप से लोकप्रिय रहे हैं और इनके समय-समय पर अनुवाद या व्याख्यान होते रहे हैं। इसी प्रकार हिन्दी और तेलुगु में मौलिक समानता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

हिन्दी और तेलुगु में संस्कृत से प्राप्त काव्य-शैलियों-महाकाव्य, खंडकाव्य मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परंपरा की भी अनेक शैलियाँ-जैसे चरित काव्य, प्रेमगाथा-शैली, रास, पद-शैली आदि प्रायः समान रूप से मिलती हैं। अनेक वार्णिक छन्दों के अतिरिक्त अनेक देशी छन्द-दोहा, चोपाई आदि भी लोक-प्रिय छन्द रहे हैं। इधर आधुनिक युग में पश्चिम के अनेक काव्य-रूपों और छन्दों का प्रचार हुआ है। यही बात भाषा के विषय में भी सत्य है।

हिन्दी और तेलुगु मैं अभिव्यक्त विचारधारा एक ही है। इन दोनों साहित्यों में तुलनात्मक अध्ययन का कार्यक्रम संपन्न हो रहा है- यह शुभ-लक्षण है। भारत को राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक एकता का सबसे दृढ़ एवं स्थायी आधार है साहित्य। कृष्ण-लीला तथा अन्य पौराणिक आख्यानों पर आधारित लोक-नाट्यों की परंपरा मध्ययुग में अत्यंत लोक- प्रिय थी और प्रायः सभी भाषाओं में किसी-न-किसी रूप में उसका साहित्य विद्यमान है।

हिन्दी में 'रास' नाम से अभिहित अभिनय आख्यान प्रायः सभी भाषाओं में नाट्य-साहित्य की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। इनकी कथावस्तु का साम्य इतना विचित्र नहीं, जितना शैली और रूप का साम्य। प्रगति-तत्व का प्राधान्य, कार्य- व्यापार की न्यूनता, भक्ति अथवा उसके आभास की प्रेरणा, यहाँ प्रायः सर्वत्र समान रूप से दृष्टिगत होती है। तेलुगु में यक्षगान इस रूप में प्रचलित रहा।

सन् 1857 में आधुनिक साहित्य के विकास की रेखाएँ तो सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग का सूत्रपात समान रूप में दिखाई देता है। स्वाधीनता संग्राम के आसपास इसका प्रारम्भ हुआ। वास्तव में आधुनिक युग का उदय, प्रबुद्ध भारतीय चेतना के उदय के साथ ही होता है और इस दृष्टि से भारतीय साहित्य में आधुनिकता का आरम्भ लग-भग समकालिक ही है। विगत शताब्दी में, स्वतन्त्रता से पूर्व, सन् 1947 तक आधुनिक साहित्य के सामान्यतः चार चरण हैं।

1. पुनर्जागरण,
2. राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना का उत्कर्ष,
3. रोमानी सौंदर्य-सृष्टि का उन्मेष और
4. साम्यवादी सामाजिक चेतना का उदय आदि।

हिन्दी में 19 वीं शती के मध्य में नवजागरण का आरम्भ होने लगा था। हिन्दी के अशासकीय क्षेत्र में भारतेन्दु तथा शासकीय क्षेत्र में शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने शिक्षाक्रम की व्यवस्था करवाया, अंग्रेजी तथा संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद प्रस्तुत करना अथवा समाचार पत्रों के प्रकाशन द्वारा नए ज्ञान के द्वारा प्रसार में लाया गया है। उधर ईसाई-धर्म प्रचार ने भी अपना कार्य। हिन्दी में यह कालखंड भारतेन्दु के नाम से प्रसिद्ध है।

भारतेन्दु और उनके मंडल के कवियों ने साहित्य के प्राचीन रूपों का नवीनीकरण और अनेक नवीन रूपों का सृजन कर नवजीवन की चेतना को अभिव्यक्त किया। यह युग-सृजन के उल्लास और स्फूर्ती का युग था। इस युग में हिन्दी के गद्य तथा पद्य साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हो गया। ईसाई-धर्म प्रचारक और अंग्रेज शासक भी अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस दिशा में प्रयत्नशील थे।

हिन्दी और उर्दू दोनों में ईसामसीह के धर्म-ग्रन्थों के अनुवाद और भाष्य प्रकाशित किए गए। फोर्ट विलियम कालेज और उसके बाहर भी अंग्रेजी शासन की ओर से पाठ्य-ग्रन्थों के निर्माण और प्रकाशन के सत्प्रयत्न हुए। नव-जागृति की ये उमंगें आगे चलकर प्रतिफलित हुई जबकि उर्दू और हिन्दी के साहित्यिकों में राष्ट्रीय चेतना का स्वर ऊँचा और स्पष्ट होने लगा। हिन्दी में यह राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के उत्कर्ष और विकास का युग है। माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन आदि उनके सहयोगी थे। बाद में चलकर सियाराम- शरण गुप्त और दिनकर के काव्य में नए स्वर गूंज उठे।

आधुनिक साहित्य की तीसरी प्रमुख प्रवृत्ति, स्वच्छंदवाद का पूर्ण उत्कर्ष हमें हिन्दी में मिलता है। प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी जैसे विभूतिमान साहित्यकारों द्वारा संबंधित हिन्दी का छायावादी काव्य भारतीय वाङ्मय की अमर उपलब्धि है। इसके बाद समाजवादी प्रभाव का आरम्भ हो जाता है और वामपक्षीय चिंतनधारा से प्रेरित साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आने लगती हैं।

हिन्दी में पंत की युगवाणी और ग्राम्या में और नरेन्द्र, अंचल, सुमन, नागार्जुन आदि की स्फुट रचनाओं में और यशपाल आदि के कथा-साहित्य में मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रेरणा सर्वथा स्पष्ट है। वर्तमान साहित्य की अत्याधुनिक प्रवृत्ति है, प्रयोगवाद की। इसका नामकरण चाहे हुआ हो या न हुआ हो, हिन्दी में इसके प्रति आकर्षण बढ़ रहा है।

तेलुगु में पुनर्जागरण के युग का नेतृत्व वीरेशलिंगम् पंतुलु ने किया। उनका अनेक रूपों में रचित विशाल साहित्य नवीन जागरण की चेतना से अनुप्रेरित है। 'गुरजाड अप्पाराव' ने इस कार्य को आगे बढ़ाया और उनके पथ-प्रदर्शन में अभिनव तेलुगु, आन्दोलन के द्वारा आधुनिक साहित्य का विकास हुआ। 20वीं शती के प्रथम चरण में 'रायप्रोलु सुब्बाराव' आदि की कविता में रोमानी सौंदर्य-बोध की अभिव्यक्ति होने लगी और चौथे-पाँचवें दशक में श्रीरंगम् श्रीनिवासराव, दाशरथि आदि साहित्यिक प्रखर सामाजिक चेतना से अनुप्राणित साम्य भावना का प्रचार करने लगे।

6.7. प्रगतिवाद- अभ्युदय कविता

हिन्दी के प्रगतिवाद कवि- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंद पंत, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्णा शर्मा नवीन, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रंगेय-राघव, शिव-मंगल सिंह सुमन, उदयशंकर भट्ट, राम विलास शर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी और त्रिलोचन आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु के अभ्युदय आन्दोलन 1940-1950 में शुरु हुआ है। तेलुगु के अभ्युदय श्री.श्री., आरुद्र, गंगिनेनि वेंकटेश्वर राव, काळोजी नारायण रावु, दाशरथि कृष्णमाचारुयुलु, रंटाल गोपाल कृष्ण, अनिसेट्टि सुब्बारावु, के.वि. रमाना रेड्डी, वट्टि कोट आळवारु, देवरकोंड बालगंगाधर तिलक, कुंदुर्ति और तेन्नेटि सूरि आदि उल्लेखनीय हैं।

6.8. छायावाद- भाव कविता

हिन्दी के छायावाद कवि- जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, राम कुमार वर्मा,जानकी वल्लभ शास्त्री, हरिवंश राय बच्चन, पंडित नरेन्द्र शर्मा, मुकुंदर पांडेय, शिवमंगल सिंह सुमन और भगवती चरण वर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु के भाव कविता- सन् 1900 में तेलुगु-भाव कविता श्री कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने मुसलम्म मरणं नामक ग्रंथ से शुरुआत मानते हैं।, रायप्रोल सुब्बाराव,देवुल पल्लि कृष्ण शास्त्री, दुव्वूरि रामि रेड्डी, नोरि नरसिंह शास्त्री, गिडुगु सीता पति, कुरुगंटि सीता रामय्या आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

6.9. प्रयोगवाद- दिगंबर कविता

अगर हिन्दी में प्रयोगवाद के कवियों की बात करेंगे तो इनमें से सर्वप्रथम तारसप्तक के कवियों को गिनते हैं और इसके प्रवर्तक कवि सच्चिदानंद हरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ठहरते हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि तारसप्तक 1943 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें सातकवियों को शामिल किए जाने के कारण इसका नाम तारसप्तक रखा गया। इन कवियों को अज्ञेय ने प्रयोग शब्द का प्रयोग किया, जहाँ से प्रयोगवाद की उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। इसके बाद 1951 ई.में दूसरा, 1959 ई. में तीसरा और 1979 में और चौथा तारसप्तक प्रकाशित हुए। जिसका संपादन स्वयं अज्ञेय ने किया है।

पहले तारसप्तक के कवि- अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, निमिचंद्र जैन, रामविलास शर्मा आदि।

दूरसे तारसप्तक के कवि-भवानी प्रसाद मिश्र, शंकुत माथुर, नरेश मेहत्ता, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादुर सिंह, हरिनारायण व्यास, धर्मवीर भारती।

तीसरे तारसप्तक के कवि- प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

चौथे तारासप्तक के कवि- अवधेश कुमार, राजकुमार कुंभज, स्वदेश भारती, नंद किशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम शर्मा और राजेन्द्र किशेर आदि नाम उल्लेखनीय है।

प्रयोगवाद कविता को तेलुगु में दिगंबर कविता रहते हैं। दिगंबर के कवियों के कोटि में- यादवरेड्डी ने 'निखिलेश्वर' नाम से, एम.एच. केशवरावु ने 'नग्न मुनि' नाम से, बद्दं भास्कर रेड्डी 'चेरबंडराजु' नाम से, वीर राघवाचार्युलु 'ज्वाला मुखु' नाम से, कम्मि शेट्टि वेंकटेश्वर राव 'महा स्वप्ना' नाम से और मन्मोहन सहाय 'बैरवय्या' नाम से इन्होंने रचनाएँ किये गये हैं।

6.10. समकालीन हिन्दी -तेलुगु कविता

हिन्दी और तेलुगु की समकालीन कविता मुख्यतः पुनर्जागरण काल से माना जाता है, आधुनिक भारत के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों ने भारतीय जन मानस को भीतर से झकझोर डाला था। हिन्दी और तेलुगु भाषाओं के साहित्य भी इस नवजागरण से अछूत नहीं रहे। इन भाषाओं के साहित्य और कलाओं में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ तेजी का स्वर गूँजने लगा।

हिन्दी में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने यह कार्य किया तो तेलुगु में 'अवधानों' द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। एक ओर जनता में नयी चेतना जाग रही थी, तो दूसरी र हिन्दी और तेलुगु के साहित्यकार जो जनता के हृदय की धड़कन सुन और नब्ज पहचान रहे थे – उनकी वेदना को, उसकी तड़प को और उससे मुक्त होने की छटपटाहट को रचनाओं में वाणी दे रहे थे। इस कार्य को आगे बढ़ाने और पुष्ट करने का दायित्व तेलुगु में 'कंदुकूरी वीशलिंगम पन्तुलु' ने सम्भाला जिन्हें भारतीय नवजागरण का सशक्त स्वर कहा जाता है। वह-काव्य को सौन्दर्यानुभूति एवं आनन्द की वस्तु न मानकर उसे सामाजिक राजनीतिक बुराइयों के उन्मुलन का साधन मानते थे ।

दूसरे तेलुगु कवि जिसने परम्परा का विरोध कर नये विषय और नया शिल्प काव्य अपनाया, वह था जी.वी. अप्पराव (1861-1915)। लोक साहित्य की परम्परा को पुनर्जीवित करने का श्रेय हिन्दी में भारतेन्दु और तेलुगु में जी.वी. अप्पराव को ही है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने अपने ने अपने उदार विचारों तथा त्याग और तपस्या के जीवन से तथा दूसरी ओर अनेक संस्थाओं प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि ने अपने सुधार आन्दोलनों तथा प्रचार कार्य में समाज में फैली कुरीतियों का उन्मूलन कर देश को प्रगति का मार्ग अपनाने की प्रेरणा दी। उनकी दृष्टि समाज सुधार से लेकर स्वदेशी आन्दोलन तक गयी। उन्होंने हर क्षेत्र में नयी चेतना जगायी। बाल विवाद, दहेज, वेश्यावृत्ति, बहु विवाह आदि के विरुद्ध आवाज उठायी।

हिन्दी में भारतेन्दु ने मुकरियाँ लिखकर, प्रतापनारायण मिश्र ने बाबू कल्वर आदि को लेकर व्यंग पूर्ण काव्य लिखकर, सामाजिक कुरीतियों आदि की भर्त्सना का। पन्त ने 'नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन' लिखकर परिवर्तन पर बल दिया। तेलुगु में यह कार्य वीरेशलिंगम पंतुलु (1848-1919) ने किया। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा सामाजिक कुरीतियों के फन्मूलन की दिशा में सराहनी कार्य किया। उनके लिए साहित्य का मुख्य लक्ष्य सौन्दर्यानुभूति नहीं, समाज सुधार था।

एक अन्य तेलुगु कवि वेंकट अप्पराव (1861-1915) ने जात-पाँत का विरोध किया, पुराने नैतिक मूल्यों को चुनौती दी और देशभक्ति की कविताएँ लिखीं। कुल मिलाकर सभी ने समाज सुधार पर जेर दिया और आर्थिक शोषण का विरोध किया।

नवजागरण काल में काव्य की विषय वस्तु में ही परिवर्तन नहीं आया, वे साहित्य रूप भी अपनाए गये थे। भारतेन्दु ने जनता को उद्बोधन प्रदान करने के लिए लोकगीत की शोली पर सामाजिक रचनाओं पर बल दिया-ऐसे गीत छोटे-छोटे छन्दों में और साधारण भाषा में बने। कजली, ठुमरी, कहरवा, होली, लावनी आद् ग्रामीन में उनके गीतों का खूब प्रचार-प्रसार भी हुआ। तेलुगु में गुरजाड़ वेंकट अप्पारावु ने परम्परा गत छन्दों को त्याग देशी छन्दों को अपनाया। आधुनिक तेलुगु काव्य में गीतों और लोक साहित्य की विशेषताओं को पुनर्जीवित किया।

महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन और 'वन्देमातरम' से भी प्रेरणा पाकर हिन्दी और तेलुगु में राष्ट्रभक्ति और देशभक्ति की हजारों कविताएँ लिखी गयीं। हिन्दी में भारतेन्दु युग और द्विवेदी के कवि, तेलुगु के विश्वनाध सत्यनारायण एवं अडिविबापुराजु, वुन्नव लक्ष्मीनारायण, ज.व. कृष्णाराव आदि कवि गाँधी विचारदर्शन से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। इन कवियों ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गीत और महाकव्य गाँधी को आधार बनाकर सृजित किये। 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम के बाद भारत के प्रायः सभी भाषा साहित्यों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारत की संगठित राष्ट्र भावना का स्वर मुखर हो गया। राजभक्ति के स्थान पर देशभक्ति का भाव जागता हुआ।

हिन्दी में हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों तथा तेलुगु में वीरेशलिंगम पंतुलु, बड़डादि सुब्बाराव, जयन्ती, रामय्या सुब्बाराय, वासुदेव शास्त्री, श्रीपाद कृष्णामूरती, वेलुरी शिवराम शास्त्री, विश्वसत्य नारायण पहली बार धर्म, जाती, प्रदेश की संकुचित सीमाओं से निकलकर अपनी साहित्य दृष्टि को नवजागरण के आलोक से आलोकित किया। हिन्दी में गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने देशभक्ति के हजारों गीत लिख ड़ाले हैं। तेलुगु में सुब्बाराव, सीताराम चौधरी, श्री गुरजाड़ अप्पाराव आदि की कविताएँ भी राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

आधुनिक भारतीय साहित्य में स्वच्छन्दवादा अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध काव्य प्रवृत्ति है। यह काव्य स्वाधीनता आन्दोलन की आकांक्षा और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना से प्रेरित होकर लिखा गया। भारतीय स्वच्छन्दतावादी या छायावादी कविता पश्चिमी 'रोमैटिंसिज्म' से प्रभावित होने पर भी अपनी परम्पराओं और परिवेश से जुड़ी हुई है।

प्रगतिवाद चौथे दशक के प्रारम्भ से ही छायावदी की काल्पनिक, वायवीय और रूमानी प्रवृत्तियाँ अपनी अन्तिम परिणति में ह्रासोन्मुख होने लगीं थीं, प्रेम और प्रेमरोदन की बढ़ा आ गयी थी। इसके साथ-साथ भारतीय साहित्यकारों पर मार्क्सवाद और रूप की सफल साम्यवादी क्रान्ति का प्रभाव भी बढ़ रहा था। इन तमाम कारणों ने भारतीय भाषाओं के रचनाकारों को सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख किया। स्वच्छन्दतावाद काल में ही तेलुगु के विरेशलिंतम (मृ.1915) और गुरजाड़ अप्पाराव ने समाजवादी भावबोध जागत किया-मानव के पसीने से ही धनरूपी फसल पैदा होती है-

नस्ल केमचनु तइसि मूलम्

धनम् पटलु पंडवलेनोय

कलुष चित्तवालों को उच्च तथा मैले शरीर वालों को अस्पृश्य कहने वाला धर्म अधर्म है-

मलिन देहल माल लनचुन मलिम-1

देश का अर्थ मिट्टी नहीं मनुष्य हैं-

देशमेटे मेट्टिकादोय

देशमंटे मनुष्य लोय

वैसे ही तेलुगु में प्रगतिशील काव्य-आन्दोलन की संज्ञा अभ्युदय कविता है। जिसके प्रवर्तक श्री. श्री. हैं। हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य की भाँति तेलुगु में भी व्यक्ति प्रधान आत्मपरक कविताओं की प्रतिक्रिया में अभ्युदय कविता का उदय हुआ है। वैसे पुरातन रूढ़ियों के विरुद्ध वीरेशलिंगम और गुरजाड़ अप्पाराव ने ही प्रथम आवाज उठायी है। इन कवियों ने राष्ट्रीय भक्ति और मानव प्रेम को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। रायप्रोलु सुब्बाराय, विश्वनाथ सत्यनारायण, दन्बूरी रामारेड्रिड और गुरजाड़ ने समाज सुधार और देशभक्ति सम्बन्धी कविताएँ लिखकर प्रगतिवादी दृष्टिकोण को समाज सुधार और देशभक्ति सम्बन्धी कविताएँ लिखकर प्रगतिवादी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया है। गुरुजाड़ ने 'मृत्यालुसरम' नामक नये छन्द का सृजन कर प्राची में अरुणोदय की सूचना दी और तरु के पीछे से कलकण्ठी कोकिल बोल उठी-

एक्कडनो ओर चेट्टुमाटुन

नोक्कु कोकुल पलुक साजेतु।

यही बात सुमित्रानन्दन पन्त भी कह रहे हैं-

गा कोकिल बरसा पावक कण।

तेलुगु के कवि श्री.श्री. के काव्य 'प्रस्थानम्' के प्रकाशन से प्रगतिशील काव्यान्दोलन का प्रारम्भ माना जाता है। एक प्रकार से यह काव्य समाजवादी दिशा में समाज की संवेदना के अन्तः प्रयाण की गाथा है। इस काव्य में रामधारी सिंह दिनकर के 'सामधेनी' की भाँति ही समाज की वर्तमान दशा और मानव शोषण के प्रति उसमें आक्रोश है। दर्शन में क्रान्ति है, श्वासों में विप्लव है, समग्र अतीत रक्त और अश्रुओं से लथपथ है। महाकवि श्री.श्री. की क्रान्ति और विप्लव की अनुगूँज गोपाल चक्रवर्ती तथा भीमन्ना में सुनायी देती है।

श्री रंगमनारायण बाबू, दाशरथि, नारायण रेड्डि ने भी दलितों और शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। इन कवियों ने हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों के समान ही एक आदर्श वर्गहीन समाज की परिकल्पना को प्रस्तुत किया है। प्रगतिशील चेतना के अन्य कवियों में अनिशेट्टि सुब्बार (अग्निवीणा), श्री नारायण बाबू (रुधिर ज्योति), पट्टाभिरामा रेड्रिड (अग्निधारा), आजनेयुल (नयीवयन) नये-नये काव्यान्दोलन और प्रयोगबाद से गठबन्धन कर प्रगति चेतना को

व्यक्त किया है। परवर्ती 30 प्रगतिशील कवियों में प्रमुख श्री शेवेन्द्र शर्मा की रचना 'महसूर्यडू' में विसर की विश्वदृष्टि अभिव्यक्त हुई है।

तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो हिन्दी के सुमित्रानन्दन पन्त और श्री.श्री. का प्रगतिवादी दृष्टिकोण बहुत कुछ एक जैसा है। दोनों की सौन्दर्य के प्रति सौन्दर्यधर्मी दिशा एक जैसी है। श्री.श्री. के अनुसार मानवत्व की चरमसीमा में सभी कुछ सार्थक, सुन्दर प्रतीत होता है-

सौन्दर्य के आराधक। कविता में शिल्प में,

कीड़े में, पुष्प में, बिजली में, बादल में,

सौन्दर्य की आराधना करने वाले

मानव-मानव अविभक्त कुटुम्बी।

(अनु. श्री बालशीरिरेड्डी)

और पन्त की काव्यसृष्टि में भी मानव पन धरती के समग्र सौन्दर्य को आयत्त करता है-

इस धरती के रोम-रोम में भरी सहज सुन्दरता

इसकी रज को छू प्रकाश वन मधुर विनम्र

पीले पत्ती टूटी टहनी, छिलके कंकर पत्थर

कूड़ा करकट सब कुछ भू पर लगता सार्थक सुन्दर।

(युगवाणी, पृ. 35)

इस प्रकार सौन्दर्यगगन की वायवी कल्पना अब धरती एवं जीवन के यथार्थ का प्रतीक बनी। कवि पन्त मृत्यु नीलिमा गगन को ताकना बन्द करके अब मानवपुण्यप्रसू स्वर्गिक भू की ओर देखने लगे। तेलुगु के श्री.श्री. भी आकाश के पथ पर गतिशील जगन्नाथ के रथचक्रों को धरती की ओर मोड़ने लगे-

आकाशपुंदारु लट अडा बुडिगि बेल्लि पोये

जगन्नाथुनि रथचक्रान्त भूमार्ग पुट्टिस्तान।

हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने समान रूप से धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था व्यक्त की है। तेलुगु के अप्पाराव ने 'मानव' नामक कविता में कहा था कि लोग अपने हाथ की बनायी मूर्तियों में भगवान को ढूँढ़ते हैं और उस पत्थर से भी तुच्छ मनुष्य को मानते हैं। आँख खोलकर देखेंगे। मानव भगवान की प्रतिकृति है। (आन्ध्रभारती)

अंचल जी सीधे-सीधे आक्रोश के स्वर में कहते हैं-

आज भी जन जन जिसे करबद्ध होकर वाद करते

जाम ले जिसका गुनाहों के लिए फरियाद करते

किन्तु मैं उसका घृणा की धूलि से सत्कार करता।

हिन्दी और तेलुगु के कवियों ने एक मत से यह माना है कि प्रगतिशीलता शब्दों के बाह्य सौन्दर्य में नहीं उलझती, वह अर्थ के भीतरी संस्कार तक पहुँचती है। भाषा का दायित्व जन मन में विचारों का सम्प्रेषण है। तेलुगु के श्री नारायण छन्दों के बन्धन तोड़कर नवीन कविता का आह्वान करते हैं-

छन्दों के बन्धनों से विहीन मेरी बातों को

अमधुर कहकर परिहास करोगे।

व्याकरण युक्त भाषा में गालियाँ हूँ

तो पूँछ हिलाकर प्रसन्न हो जावोगे।

(अनु. बालशौरिरेड्डी)

तो कवि पन्त कहते हैं-

खुल गये छन्द के बन्ध प्रास के रजतपाश

अब गीत मुक्त औ युगवाणी बहती अयास।

वर्ग संघर्ष, शोषकों के प्रति आक्रोश एवं शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रगतिशील कविता का आधारभूत विचार है। कवि दिनकर भूखे बालकों को माँ की हड्डी से चिपक ठिठुरकर जाड़ों की रात बिताते देखकर आक्रोश से भर उठते हैं-

श्वानों को मिलता दूध दही बच्चे भूखे अकुलाते हैं

माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक, जाड़ों की रात बिताते हैं

तेलुगु के प्रगतिवादी कवि श्री. श्री. भी कहते हैं-

अनजानी के अन्धकार में। भूख प्यास के बराबर

किसी शक्ति के संकेतों से, बढ़े चढ़े हैवानों

स्थापित थे जो राज्य बड़े-

नयी शक्तियों के उठने से हो। गये सकल हवा के महल

धनवानों का काल फंदा। अब क्या आगे भी न फलेंगे।

(अनु. भानु)

दक्षिण के साहित्य में विप्लव और आक्रोश के स्वर संयत है। श्री. श्री. का कहना है कि क्षुधा और आवेग के स्वर से जन्मा इतिहास बलवानों के अत्याचारों का कुतन्त्र है। शोषण करने का सामाजिक धर्म आगे नहीं चल सकेगा- पाडिंचे सांधिक धर्म।

हिन्दी और तेलुगु के कवि मुक्ति के अरुणोदय का स्वप्न साकार करना चाहते हैं। तेलुगु के कवि श्री. श्री. के आह्वान में नवयुग का शंखनाद है-

नवयुग का वह बड़ा नगाड़ा

विराम तजकर बजता है।

नाग सर्प से, क्षुधित व्याघ्र से,

अग्नि होत्र से बढ़े चलो।

(अनु. वेभूरि)

इस अरुणोदय की परिकल्पना में क्रान्ति और गणतन्त्र की सीमा रेखा विलीन हो गयी है। बिम्ब केवल श्रमिकों एवं जन चेतना की मुक्ति का उभरता है। अतः यदि तेलुगु के श्री. श्री. नाजीदमन के विरोध में सोवियत सेना का स्वागत करते हुए उत्कण्ठित होते हैं- सुप्त कंकाल जाग उठे हैं, जग फन फैलाकर उठ खड़ा हुआ है, तथा श्रमिक कृषक, पीड़ित हिल्लोलित से क्रान्ति पथ पर अग्रसर हैं-

सुप्त कंकालालु मेलु कोटुन्नायि।

तो हिन्दी के रामविलास शर्मा इसी स्वर में तैलंगाना के जनविद्रोह का स्तवन करते हैं-"आज नयी आशा से आन्ध्र जागा है, युगों-युगों से पीड़ित जन उठ खड़े हुए हैं, नयी चेतना से आन्दोलित प्राणों के स्वर फूट पड़े हैं।"

तेलुगु के कवि देवपुल्लु कृष्णशास्त्री लिखते हैं-

ई नाडि भुवि वानि सीडु मरिलेन लेडु।

"अब कौन किसी का दास मुक्त मानव समाज के सब जन तथा श्रमसाध्य स्वेद की दिव्य धार बनकर गंगा बहती है।"

(आनु.सु.न. पन्त)

इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हैं दिनकर जी-

भारत धूलों में भग, आंसूओं में गीला

भारत अब भी व्याकुल विपत्ति के घर में

मिट्टी फिर कोई आग उगलने वाली है।

रूस और रूमी कान्ति ने भी हिन्दी और तेलुगु है कवियों को प्रभावित किया है। लाल पताका का स्वागत करते हुए तेलुगु के कवि श्री.श्री. लिखते हैं –

उत्चालित लाल पताका

रुद्राली की नयन ज्वाला।

नव कविता को सभी चाहिए। (अनु.वेभूरि)

तो हिन्दी कवि अमर सुमन की दृष्टि फासिस्टों की नियति यही है।

फासिस्टों की कालरात्रि में घोर घटा घिर आयी

चली लाल सेना ज्यों चलती सावन में पुखाई।

तेलुगु के प्रगतिशील कवि श्रीश्री जब नये युग की पुकार पर पददलित जनता को "हरोम हरोम" कहकर निकल पड़ने का आह्वान करते हैं तो लाल ध्वजा में वे होमज्वाल की प्रदीप्ति देखते हैं-

नजर न आयी नव जग के उस अग्नि मुकुट की तड़क भड़क

लाल ध्वजा की चमक दमक होम ज्वाल की घधक भभक।

(अनु. वेभूरि)

हिन्दी के सुमित्रानन्दन पन्त भी मार्क्स का स्तवन करते हैं-

धन्य मार्क्स चिरतमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर

तुम त्रिनेत्र के ज्ञानचक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर। (युगवाणी)

दक्षिण भारतीय साहित्यों में भी हिन्दी के समान प्रगतिशील चेतना पर गाँधीवाद का कम प्रभाव नहीं है। एक आलोचक का कहना है कि "साम्यवादी विचार तो उधर भी है, पर उसका ठेठ अपरिष्कृत रूप दक्षिण साहित्य में ग्राह्य नहीं है। अतः वहाँ के साहित्य में साम्यवाद को समाजवाद तथा गाँधीवाद के आधार पर संशोधित करके उसका एक अहिंसात्मक ग्राह्य रूप बना लेने का प्रयास स्पष्ट होता है।"

प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिक भारतीय भाषाओं में स्वाधीनता प्राप्ति के आसपास की नयी काव्य चेतना को प्रयोगवाद या नयी कविता के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके पूर्व की भारतीय कविता स्वाधीनता आन्दोलन की आशाओं-आकांक्षाओं की प्रबल अभिव्यक्ति रही है। इस दौर की कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रतिवादी प्रवृत्तियों की सृजनात्मक चेतना विकसित होती रही है। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकर विभीषिकाओं ने अपने प्रभाव दबाव में विश्वंभर में परिवर्तन ला दिया। फलतः नयी सम्वेदना नयी काव्य भूमि खोजने लगी।

भारतीय नयी कविता इस नवीन सम्वेदना (नये रूपों, प्रतीकों, बिम्बों, शैलियाँ-विचारधारा भी) की ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। प्रयोगवाद तथा नयी कविता में विद्रोह का यह प्रबल पर हिन्दी के कवि अज्ञेय, मुक्तिबोध और तेलुगु के शिष्टाला, अनसोद्ध नयी काव्य प्रवृनियों के प्रवर्तक के रूप में उभरते हैं। ये सभी सौन्दर्य की अभिरुचियों पर प्रहार करते हुए काव्य सृजन करते हैं। यहां ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दी और तेलुगु में प्रयोगधर्मी नयी कविता एक साथ विकसित नहीं होती।

हिन्दी में नयी काव्य प्रवृत्तियाँ पहले विकसित होती हैं। तत्पश्चात तेलुगु में उभरती पनपती हैं। समय का थोड़ा बहुत अन्तराल होने पर भी दोनों भाषाओं की नयी कविता में प्रवृत्तिगत आन्तरिक एकता है। हिन्दी में प्रयोगधर्मी नयी कविता और तेलुगु में अभ्युदय कविता तथा वचन कविता नाम दिया गया है। ये दोनों भाषाओं की कविताएँ पुरानी मान्यताओं से हटकर नयी शैलियों, नयी विचारधाराओं, नये विषयों से काव्य सृजन करते हैं। इनकी कविताएँ पुरानी कविता की तुलना में अधिकाधिक जुझारू और द्वन्द्व की स्थिति का संकेत करती हैं। अज्ञेय जी ने 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंद हुए' जैसे काव्य संग्रहों से कविता की नयी और परती जमीन तोड़ी है। वे लिखते हैं-

मैं वह धनु हूँ, जिसे साधने में प्रत्यंचा टूट गयी है।

दूसरे तार सप्तक में नयी कविता को महत्व और प्रतिष्ठा मिली है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुँवर नारायण, जगदीश गुप्त, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, श्रीकान्त वर्मा, शमशेर बहादुर सिंह आदि कवियों ने लोकभाषा के नजदीक जाकर संत्रास, व्यंग्य, तनाव-संघर्ष, अँधेरा अवसाद आदि को कविताओं में अभिव्यक्त किया है। अज्ञेय अपनी दृष्टि में बदलाव लाते हुए लिखते हैं-

ये उपमान मैले हो गये हैं।

तेलुगु में शिष्टला की कविताओं में भावकवित्वम् के विरुद्ध विद्रोह मिलता है और इनकी कविताएँ प्रयोगवाद का शिलान्यास करती हैं। 'नवामि चिलका' काव्य संग्रह की कविताओं ने नये प्रयोगों की प्रतिष्ठा की है। इन कविताओं पर फ्रायड़ के सिद्धान्तों का प्रभाव लक्षित होता है। मुक्तिबोध के समान ही अनुसद्धि आदि ने शहरी जीवन की उदासी पर 'राक्षस नगरम्' जैसी कविताएँ लिखी हैं। डाडावाद, निराशावाद और भविष्यवाद तो हिन्दी की नयी कविता के समान ही रमणरेड्रिड के काव्यसंग्रह 'अरवि' (जंगल) में व्यक्त हुआ है।

तेलुगु की 'वचन' कविता हिन्दी की नयी कविता के समान ही परम्परागत रूढ़ियों को तोड़कर शब्द अर्थ की लय पर केन्द्रित है। अज्ञेय और मुक्तिबोध के समान ही ये शब्द चयन के प्रति विशेष रूप से जागरूक हैं और घिसे शब्दों के स्थान पर नये टटके शब्दों को खोजकर लाते हैं। हिन्दी की नयी कविता के समान ही 'वचन कविता' भी गद्य कविता ही है। दोनों भाषाओं की कविताएँ सम सामयिक जीवन के समस्त विचारों को रचती है।

सन् 1960 के बाद हिन्दी में अकविता चला जिसके प्रवर्तक जगदीश चतुर्वेदी हैं। इस धारा में श्याम परम्परा, सौमित्र मोहन, राजकमल चौधरी आदि ने सक्रिय हिस्सेदारी की है। इन कवियों ने बंगला की 'भूखी पीढ़ी' की भाँति ही बयान दिये हैं। अकविता पूरी तरह गद्यात्मक कविता है। इसमें न लय है न गीत है। इनमें जीवन के अनेक अनजाने पहलू उभरकर सामने आये हैं और अनेक पुराने पाखण्डों की कलई खोली गयी है। असन्तोष, त्रास, आक्रोश, फ्रस्टेशन, ऊब, विक्षोभ, अनास्था निराशा आदि से व्यथित आज के मानव को अकविता ने अपना लक्ष्य बनाया है।

सन् 1960 के आस पास तेलुगु में भी नयी कविता या गद्य कविता पूरी तरह प्रतिष्ठित हो जाती है जिसमें न लय है, न गीत है। तेलुगु के नये कवि रमणारेड्रिड ने इस गद्य कविता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि समाज के सभी वर्गों का चित्रण केवल गद्य गीत ही कर सकता है। प्रसिद्ध गद्य कवि श्री तिलक और आरिपिराला विश्वम् की कविताओं में हिन्दी की अकविता के समान ही पीड़ित जनता के प्रति करुणा भाव व्यक्त हुआ है-

नगर स्मृति चित्र

मेगिरि पडेनुला कवला

तो दुष्यन्त कुमार लिखते हैं-

नगर में शोर है

विषैला धुआँ आँखों से निकल रहा है।

तेलुगु की वचन कविता के कवियों में श्रीराम शास्त्री, विश्वम्, रामुलुरेड्रिड, दाशरथि आदि उल्लेखनीय हैं।

साठोत्तरी हिन्दी की अकविता एवं तेलुगु की दिगम्बर पीढ़ी में घृणा, आक्रोश और हिंसा के विम्ब अनर्गल यौन आचरण के माध्यम से भी समाज तन्त्र के खिलाफ कवि की जद्दोजहद् को ही प्रमाणित करते हैं। इस दौर के जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परम्परा आदि अकविता के कवि और दिगम्बर पीढ़ी के कवियों ने अमर्यादित यौन बिम्बों का सायास विस्फोटक उपयोग किया है। चतुर्वेदी लिखते हैं-'हम एक दूसरे का नग्न शरीर, आलिंग्न के लिए क्यों खोजते रहते हैं, - ताकि शिकारी कुत्तों की तरह झपटें, एक दूसरे पर काटें।'

तेलुगु के दिगम्बर पीढ़ी के प्रमुख कवि बंडुराज, भैरवय्या और नग्न मुनि हैं। समाज के कुत्सित रूप के अनावरण में इनकी अभिव्यक्ति आक्रामक बन गयी है। इनका विश्वास है कि 'दिक्' कविताएँ ही मानवता का असली मानदण्ड हैं। यौन क्रान्ति के प्रतीक हैं।

नारायण बाबू और पठामि की रचना में यौन क्रान्ति का यह विस्फोट अधिक प्रखर है। हिन्दी के जगदीश चतुर्वेदी जैसे कवियों की तरह संत्रस्त मनः स्थिति के बिम्ब को यौन और मृत्युबोध की मुद्राओं में ये उभारते हैं- "जीवित मिट कामातुर ककाल केलि प्रेमेतर मृत्तिकातरै कपालाल कृष्णधूलि (वैरागी)।"

6.11. सारांश

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिन्दी और तेलुगु साहित्य में अभिव्यक्त प्रवृत्तियाँ समान रूप से एक ही हैं। यह समानता न केवल हिन्दी और तेलुगु साहित्य में ही है, अपितु समस्त भारतीय साहित्य में विशिष्ट सामान्य प्रवृत्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं। आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि समस्त भारतीय साहित्य का सम्यक् एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाए। इससे पारस्परिक सौहार्द्रता एवं समादर की भावना बढ़ेगी और दूरियाँ कम हो सकेंगी। यह प्रसन्नता का विषय है कि इधर तेलुगु और हिन्दी के साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन का कार्यक्रम संपन्न हो रहा है। इस तरह राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने की दिशा में, साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक एकता का यह प्रयास अभिनंदनीय है।

6.12. बोध प्रश्न

1. हिन्दी और तेलुगु काव्य-धाराओं में उपलब्ध समान प्रवृत्तियों के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

2. हिन्दी और तेलुगु - तुलनात्मक साहित्य का विकास के बारे में लिखिए।

3. प्रगतिवाद- अभ्युदय कवियों पर टिप्पणि लिखइए।

4. प्रयोगवाद- दिगंबर कवियों पर टिप्पणि लिखइए।

5. तेलुगु काव्य-धारा के प्रवृत्तियों के बारे में टिप्पणि लिखिए।

6. छायावाद- भाव कविताओं के बारे में टिप्पणियाँ लिखिए।

7. समकालीन हिन्दी -तेलुगु कविताओं के बारे में टिप्पणियाँ लिखिए।

6.13. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन -शिव सत्यनारायण।

2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

4. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

5. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. के. रामनाथन विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

7. विद्यापति-क्षेत्रय्या और कबीर-वेमना का तुलनात्मक अध्ययन

7.0. उद्देश्य

भारतीय काव्य-जगत में 12 वीं शताब्दी से एक नई गतिविधि, एक नई शैली और एक नए विषय के दर्शन होने लगते हैं। नायक-नायिका के प्रतिष्ठित पद पर राधा-कृष्ण, गोपी-कृष्ण शिव-पार्वती इत्यादि विशिष्ट पात्रों को अधिष्ठित कर दिया गया है। वस्तुतः यह काल राजनीतिक पतन, सामान्य दैन्य और नैतिकता के दारिद्रव्य का था। जाति असहाय और निरवलम्ब होकर भगवदुन्मुखता के लिए बाध्य थी। धार्मिक जगत में बौद्ध, जैन और मुसलमानों का भारतीय समाज से संपर्क हुआ। शंकर के मायावाद और ब्रह्मवाद के प्रतिरोध में अनेक आचार्य उत्पन्न हो गए थे। इन आचार्यों ने शास्त्रीय पद्धति पर भक्ति का प्रतिपादन कर दिया था। विशेष रूप से कृष्ण-भक्ति के प्रसार की दिशा में आचायर्यों का महत्व पूर्ण योगदान रहा। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम-

- हिन्दी और तेलुगु कवियों के बारे में जानेंगे
- विद्यापति और क्षेत्रय्या के बारे में जानेंगे
- कबीर और वेमना के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

रूपरेखा

7.1. प्रस्तावना

7.2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

7.3. विद्यापति और क्षेत्रय्या

7.4. कबीर और वेमना

7.5. सारांश

7.6. बोध प्रश्न

7.7. सहायक ग्रंथ

7.1. प्रस्तावना

इस युग के वैष्णव-काव्य पर जयदेव के गीत-गोविद का जितना प्रभाव पड़ा है, ना किसी अन्य ग्रंथ का नहीं। इसकी रचना से साहित्य की धारा ही बदल गई और काव्य-जगत में एक नवीन चेतना स्थायी रूप से घर कर गई। इतनी प्रतिष्ठा एवं व्यापकता का हेतु है, इसकी सर्वांगीण मौलिकता। गीत-पद्धति, तुकबन्दी इत्यादि सभी कुछ इसमें नवीन ही हैं। इसी से सर्वप्रथम राधा प्रकाश में आती है और कृष्ण की गोप-लीला काव्य में ही नहीं, जन-मानस में स्थायी रूप से अंकित ही गई है। शताब्दियों में चली आती हुई, रसात्मक मुक्तक-परंपरा को राधा-कृष्ण परक बना देने का श्रेय भी जयदेव को ही है। गौत-गोविन्द का पर्द-गुम्फन बड़ ही मनोरम और उदात्त बन पड़ा है। भावनाओं की उद्दाम धारा गीतों में फटकर बही है और प्रसंग-योजना के लिए अन्य पद्यों के प्रयोग से नीरसता का स्वतः

निराकरण हो जाता है। इसमें विरहोत्कंठिता, मानिनी, प्रोषितपतिा, बासकसज्जा, विप्रलब्धा, कलहान्तरिता इत्यादि नायिकाओं का विशद चित्रण किया गया है।

7.2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

हिन्दी के 'विद्यापति' और तेलुगु के 'क्षेत्रय्या' दोनों इस विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। इन दोनों में यद्यपि कालगत और भाषागत अन्तर हैं तथापि भावना और प्रवृत्ति की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। विद्यापति विसौ, जिला दरभंगा के रहनेवाले थे। ये शिवसिह, लखिमा देव्री, विश्वासदेवी, नरसिहदेवी तथा सिविला के कई आश्रय दाताओं के संरक्षण में रहे थे। शिवसिंह ने इन्हें विसपी गाँव तथा 'अभिनव जयदेव' की उपाधि एक ताम्र-पत्र द्वारा प्रदान की थी। ये संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे और इनकी लिखी हुई संस्कृत की 22 पुस्तकें उपलब्ध होती है। मैथिली भाषा में इनके पद अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनका रूपांतर बंगाली में पाया जाता है। इनके पदों की महत्ता इसी से प्रकट होती है कि बंगाली लोग इन्हें अपनी ओर घसीटने रहे है।

7.3. विद्यापति और क्षेत्रय्या

तेलुगु के गीतकारों में कृष्णा जिले के मोव्वा नामक ग्राम के निवासी थे। इन्होंने अधिवास पद मोव्वा ग्राम के गोपाल को समर्पित किये हैं। इन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा की थी। जब ये कंचीवरम पहुंचे तो इन्होंने वहाँ के मुख्य देवता वरदराजस्वामी तथा अन्य देवताओं की स्तुति में गीत लिखे। क्षेत्रय्या जब तंजौर के राजा विजयराघव के आस्थान में पहुँचे तो इनका बहुत आदर-सत्कार किया गया। इन्होंने हजारों त्रिपद लिखे, जिनकी जयदेव के अष्टपदों से तुलना कर सकते हैं। क्षेत्रय्या के त्रिपद नृत्य के लिए जितने उपयोगी सिद्ध हुए है, उतने संस्कृत तथा भारत की अन्य भाषा के पद नहीं। नर्तक को क्षेत्रय्या के पदों से जो सहायता मिलती है, वह अन्य किसी कवि के पदों से नहीं मिलती। इनके पदों में संगीत और साहित्य का मणि-वाचन संयोग हुआ है। संगीत की अनुकूलता के कारण क्षेत्रय्या के पदों में कोमलता और माधुर्य स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। संस्कृत के लक्षणकार तथा कवि पडितराज जगनाथ तेलुगु भाषा-भाषी थे। क्षेत्रय्या पंडितराज जगन्नाथ के समकालीन थे। यदि हम पडितराज जगन्नाथ के 'रस गंगाधर' और क्षेत्रय्या के पदों को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ तो ऐसा प्रतीत होता है कि पंडितराज ने क्षेत्रय्या की रचना को दृष्टि में रखकर हो नायक-नायिका के लक्षण लिखे थे। क्षेत्रय्या को नायक-नायिका के स्वभाव-चित्रण में बड़ी सफलता मिली है।

विद्यापति और क्षेत्रय्या-दोनों ने राधा-कृष्ण की तरुणाई को लेकर प्रेम और सौंदर्य के गीत गाए हैं। ये गीत राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना से प्रेरित होकर नहीं लिखे गए, परन्तु इनमें शत-प्रति-शत विशुद्ध श्रृंगार की रसमयी व्यजना है। हिन्दी में विद्यापति और तेलुगु में क्षेत्रय्या ने पहली बार राधा-कृष्ण पर श्रृंगारी काव्य-धारा का सूत्र किया। विद्यापति और क्षेत्रय्या का काव्य भी उसी आदर्श को लेकर उसी आदर्श हो लेकर चला है। विद्यापति ने यौवन और वासना की तरंगों से उद्वेलित राधा और कृष्ण के रूप में दो प्रेमी-जनों की विलास-लीलाओं और केलि-क्रीडाओं को ही अपनी सुकुमार वाणी प्रदान की है। विद्यापति की समस्त काव्य-प्रतिभा राधा और कृष्ण के यौवन के रस में डूब गई है। उनका रसिक हृदय कृष्ण और राधा के मदन रूप पर रीझा है और उनके इसी रूप का उन्होंने सौ-सौ प्रकार से बखान किया है। राधा और कृष्ण के सरस प्रेम से उद्वेलित तरुण हृदयों में बैठकर विद्यापति ने भौतिक प्रेम और विलास के बड़े संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किये हैं। यौवन के मदमाते प्रांगण में प्रवेश करनेवाली तरुणी के हृदय में

वासनामय प्रेम की जो मंदिर रागिनी बजती है, वयः संधि को प्राप्त कर उसके हृदय में केलि-क्रीडाओं की जो लहरे तरंगित होती हैं, अपने प्रेमी से अभिसार के लिए जो तीव्र आकांक्षाओं का ज्वार उमड़ता है, प्रिय के समागम से उसे जो रसानुभूति होती है, प्रिय वियोग से उसके हृदय में वासनाजनित जो प्रेम की भूख जगती है, उन सब का विशद और माधुर्य पूर्ण मनोवैज्ञानिक अध्ययन कविता का रूप लेकर कवि के हृदय से प्रवाहित हुआ है।

क्षेत्रय्या ने रति भाव का आश्रय लेकर अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है। अष्टविध श्रृंगार नायिकाओं के मनोभावों के अतिरिक्त वेश्याओं तथा परकीया नायिकाओं के वर्णन मैं चरमसीमा तक पहुंच गए हैं। इनके पदों में यत्र-तत्र अश्लीलता दिखाई देती है, किन्तु हमें शब्द का तात्पर्य समझने के पश्चात ही ऐसी धारणा बनानी चाहिए। अश्लीलता दो प्रकार की होती है। एक तो अपभ्रंश अथवा ग्राम्य भाषा का प्रयोग अश्लील कहलाता है और दूसरी कुत्सित अर्थ देनेवाला शब्द भी अश्लील कहलाता हैं। रसराज श्रृंगार के रहस्यों का उद्घाटन करना अश्लीलता नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसे स्थलों को बिना सोचे-समझे हम अश्लील मान बैठेंगे तो संसार में उच्चकोटि का साहित्य बहुत कम परिमाण में मिलेगा, जो इस अर्थ में प्रयुक्त होनेवाली अश्लीलता से मुक्त -हो। इनसे अस्पृश्य कोई भी नायिका भाव नहीं रह गया है -

'कितना सुन्दर हैं मेरा स्वामी!'

हे सखि ! सदा मुव्वा गोपाल मन मेरा संतुष्ट करता है। वह मंदस्मित वदन और तुतली बोलीवाला है। आलोकपूर्ण कपोलवाला है: सिलयों की कोमलता से परिहास करनेवाले अधरोंवाला है। पद्मपत्र जैसे नेत्रवाला है। छोटी उम्रवाला है। द्वितीया के उज्ज्वल चंद्रमा को मुख पर शोभित करनेवाला है। मन्मथ को देख आये प्रभु जैसा है श्यामवर्णवाला है, लाल पद्मों जैसे चरण और शेर की जैसी कमरवाला है। हाथी के सूंड जैसे हाथ वाल्क है। हे सखि ! मुव्व गोपाल कितना सुन्दर है।

क्षेत्रय्या विप्रलंभ श्रृंगार के वर्णन में पराकाष्ठा पर पहुँच गए हैं। समस्त काव्य विभिन्न नायिकाओं की मनोदशाओं के चित्रण से परिपूर्ण है। नायिका अपने प्रिय के प्रति यह उद्गार प्रकट करती है- स्वामी ! रह जाओग क्या मेरे प्राणनाथ ! वहाँ न रहकर शीघ्र ही लौट आने की शपथ खायी है न ?

यदि तुम जल्दी न आओगे तो आँसुओं की सरिता बहेगी। तुम्हारे अधरामृत का पान न करूँगी तो मेरा गला सूख जाएगा।

क्या करूँ ? मैं क्या करूँ ! चाँदनी को कैसे सह सकती हूँ ? शुकों के कल- कलरव, भौरों की गुंजार में सूर्योदय अभी क्यों न होता ?

तेलुगु में क्षेत्रय्या के समय तक पद मधुर-भक्ति और श्रृंगार-रस से संपन्न गीत के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। इनका जन्म सत्रहवीं सदी के प्रथम भाग में हुआ था। इन से दो सदियाँ पूर्व ही पद-रचना प्रारंभ हुई होगी। हमारे देश में चिरकाल से भक्ति-पद्धति, ईश्वराधन के लिए प्रमुख साधन के रूप में प्रख्यात रही है। इसी भक्ति-साधना में अनेक विधाएँ हैं। ईश्वर को माता, पिता मित्र आदि के रूप में तथा राम, कृष्ण आदि अवतारों के रूप में अर्चना करनेवाले संप्रदाय तो सर्वत्र प्रचलित ही हैं। परमेश्वर को प्रियतम या प्रेयसी के रूप में उपासना करनेवाले संप्रदाय भी प्रचार में रहे। मीराबाई, चंडीदास, कबीरदास आदि भक्तों के चरित्र उन विभिन्न भक्ति-पद्धतियों के अनुरूप परिलक्षित होते हैं।

ईश्वर को प्रेयसी या प्रियतम के रूप में मानकर अर्चना करने की जो पद्धति है, वही मधुर भक्ति है।

विद्यापति और क्षेत्रय्या दोनों ने गीत गोविन्दकार जयदेव की शैली को ही अपनाया है। अपनी माधुर्य-पूर्ण कोमल-कांत-पदावली की सरसता के लिए जयदेव के गीत संस्कृत साहित्य में अद्वितीय हैं। इन गीतों में राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं की बड़ी मधुर अभिव्यंजना हुई है। विद्यापति और क्षेत्रय्या-दोनों ने भी जयदेव की ही भाँति उन्मत्तविलासी कृष्ण और केलि-क्रीड़ाओं की पुतली राधा के प्रेम और रूप-सौंदर्य का चित्रण किया है। अतः इन कवियों के लिए माधुर्य रस से मंडित जयदेव की कोमल-कांत शैली का अनुकरण स्वाभाविक ही था। परन्तु गीतकार विद्यापति और क्षेत्रय्या गीतकार जयदेव से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। इन दोनों के गीतों की सरसता जयदेव के गीतों से भी आगे बढ़ गई है। यह सत्य है कि जयदेव ने अनुप्रासों की मधुर झंकार से मुखरित अत्यन्त ही मधुर कोमल-कांत पदावली की सृष्टि की है, परन्तु संस्कृत के आघोष अल्प प्राण वर्णों, संयुक्ताक्षरों और समासांत पदावली के कारण गीतों का सरस प्रवाह अवरुद्ध हो गया है। परन्तु लोक भाषा में होने के कारण विद्यापति और क्षेत्रय्या के गीतों में गति का यह अवरोध नहीं है। इसके अतिरिक्त जयदेव के गीतों में जहाँ वर्णन की प्रधानता है, वहाँ विद्यापति और क्षेत्रय्या के गीतों में रागात्मिका वृत्ति की प्रधानता है।

अपनी इस गीत-पद्धति को इन दोनों कवियों ने अधिक से अधिक सुन्दर रमणीय बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। माधुर्य इनके गीतों की आत्मा है। संगीत-मधुर स्वर-लहरी ने इन गीतों को रूप रस दिया है। इस प्रकार काव्य और संगीत के मधुर समन्वय से दोनों के गीतों का जन्म हुआ है। वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, भाषा और भावों की स्पष्टता, सरस और माधुर्य पूर्ण शब्दों का -प्रयोग आदि गीति-काव्य के लिए अपेक्षित सभी गुण इन दोनों कवियों के गीतों में उपलब्ध हुआ है।

विद्यापति हिन्दी की इस गीत-काव्य-परम्परा के जनक हैं। उनके गीतों ने कृष्ण-मक्तिपरक समस्त काव्यधारा को प्रभावित किया है। क्षेत्रय्या को तेलुगु के गीत-काव्य-परम्परा के जनक होने का श्रेय-तो नहीं मिला, पर गीतकार अन्नमाचार्य द्वारा प्रचलित परम्परा को आगे ले चलने का अपूर्व गौरव उन्हें उपलब्ध हुआ है।

7.4. कबीर और वेमना

संसार के अन्य देशों से भारत आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ा हुआ है। इस पुण्य-भूमि पर समय-समय पर कई साधु-संत पैदा हुए, जिन्होंने देश में व्याप्त अज्ञानांधकार को दूर कर ज्ञान की ज्योति जलाई। ऐसे महात्माओं में उत्तर- भारत के कबीरदास और दक्षिण के योगी वेमना प्रसिद्ध हैं। कबीर और वेमना दोनों का जन्म समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हुआ था। दोनों अपने समय के प्रतिनिधि संत कवि थे। दोनों उपदेशक, सुधारक, विचारक तथा कवि थे। दोनों महानुभावों के विचारों तथा उपदेशों में अत्यधिक भाव-साम्य तथा सामीप्य है। इस कारण उनको एक दूसरे का प्रतिबिम्ब ही कह सकते हैं।

कबीर और वेमना-दोनों पन्द्रह्वीं सदी में पैदा हुये थे। कबीर के समय उत्तर भारत में जो स्थिति रही, बहुत कुछ उसी तरह की परिस्थितियाँ तेलुगु प्रदेश में वेमना के जन्मकाल में दिखाई देती हैं। उत्तर भारत में हिन्दू-मुसलमान के भेद-भाव ने उग्र-रूप धारण किया था तो आंध्र में शैवों तथा वैष्णवों की आपस की कट्टरता एवं शत्रुता ने उग्र-रूप धारण किया। ऊँच-नीच का भेद-भाव, परस्पर विद्वेष, अहंकार, आत्म-स्तुति एवं परनिंदा की मलिनता से देश का समग्र वातावरण कलुषित हो गया था। पंडितों की पंडिताई एवं कलाविदों की कला-कुशलता वाग्विलास-प्रदर्शन-

मात्र रह गयी थी। अज्ञान तथा नैतिक पतन का नग्न तांडव होने लगा था। कोई किसी की सुनने को तैयार न था। सब कोई अपनी-अपनी ढ़पली बजाते, अपने ही राग आलापते हुए अपनी खिचड़ी अलग पकाने में मस्त थे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में कबीर और वेमना का आविर्भाव हुआ।

कबीरदास काशी में पैदा हुये। वे अपढ़ थे। "मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहि हाथ।" कहा जाता है कि इनके गुरु रामानन्द थे। इनके शिष्य इनसे कहे गये बचनों को ग्रंथस्थ किया करते थे। इनका शैशव बिल्कुल सुरापूर्ण न रहा।

वेमना का जन्म कोंडवीडु के सुसम्पन्न रेड्डि वंश में हुआ था। वे सोमेश्वर पडित के शिष्य थे। वेमना गीतों को गंगा करते थे तो उनके शिष्य उनको पंतस्थ किया करते थे। वे अवश्य पढ़े-लिखे थे। इनका पठन-पाठन तेलुगु के महाभारत, रामायण तथा भागवत तक सीमित रहा। वेमना का शैशव सुखपूर्ण रहा। उन्होंने अपने यौवन-काल को अनेक 'भोग-विलास' में बिताया। दोनों में यह अंतर था कि कबीर बिल्कुल अपढ़ थे, तो वेमना कुछ पढ़े-लिखे थे।

दोनों को पारिवारिक जीवन में सुख प्राप्त नहीं हुआ था। दोनों को परिवार के कटु अनुभव को चखने का अवसर प्राप्त हुआ। कबीर को अपने पुत्र कमाल से बड़ी शिकायत रही -

'बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल

हरि का सुमिरन छाड़िके, घर ले आया माल।'

वेमना पहले वेश्या-लोलुप थे। पर अंत में मातृतुल्य भाभी नरसमाँवा के संजीवनी सदृश उपदेश पाकर भोग और विलासमय जीवन से विरक्त हो गये फलस्वरूप अपना समस्त ऐश्वर्य विद्रोही परिवार के पीछे फूंकने की अपेक्षा परोपकार के द्वारा उसका सदव्यय कहीं उत्तम समझा -

'आकलन्न वानि कन्नवु पेट्टिन

हरून कपितमगु नारगिचु...'

अर्थात् भूखे को दिया जानेवाला अन्न, शिवजी की अक्षय तृप्ति क साधन बनेगा।

दोनों संतकवि स्पष्टवादी थे। दोनों ने परिवार को त्याग कर देशाटन किया। साधुओं के सत्संग, श्रवण, मनन, चिंतन तथा देशाटन द्वारा ज्ञान प्राप्त किया। दोनों का पांडित्य अनुभव प्रसूत था, दोनों की उक्तियों पर लौकिक व्यापार तथा अनुभव की गहरी छाप दिखाई देती है।

घड़े बनाते समय मिट्टी को पैरों तले रौंदनेवाले कुम्हार की तरफ कबीर का ध्यान गया था:

'माटी कहै कुम्हार सों, तू च्या हृदे मोहि

एक दिन ऐसा होवेगा, मैं संदूंगी तोहि।'

इसी तरह जिला पर कपड़े पटक-पटककर अस्त-व्यस्त बनाने पर भी। उसके काम से कपड़ों को लाभ ही होता है। उनका मैल ही छूट जाता है। इसी तरह मनुष्य को आवश्यकता पड़ने पर अपने हितैषी की मार खाकर भी उपदेश ग्रहण करना चाहिये-पथा -

चाकि कोकलुदिकि चीकाकु पडजेसि

मेल दीसि लेस्स मडचिनट्टु

बुद्धि चेप्पुवाडु, गुद्दितेने मया

विश्वदामि राम बिनुर बेमा।

दोनों को सांप्रदायिक समस्याओं से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। हिन्दू मुसलमानों के बीच की खाई कबीर को पाटनी पड़ी तो वेमना को शैव और वैष्णव ब्राह्मण और शूद्र के भेद-भाव को दूर करने का प्रयत्न करना पड़ा। उस विभेद की अग्नि में उभय क्षेत्रों के सरदार सांप्रदायिक पक्षपात का घी डालने लगे। ढोंग, पाखंड और कर्मकाण्ड के कट्टर विरोधी, लोक-कल्याण दृष्टिवाले इन महात्माओं के लिए समाज की दुस्थिति असह्य हो गयी। संसार को धोखा देने का प्रयत्न करनेवाले उन आत्म-वंचकों के अज्ञान तथा धूर्तता की कलई खोलने के लिए दोनों ने कमर कस ली।

स्वभाव से वे उद्दण्ड थे ही। धर्म की धाँधली और नकली दीनदारी से उन्हें स्वभावतया चिढ़ थी। ऐसों की तीव्र से तीव्र आलोचना करने की खुजली हर वक्त उनकी जबान में लगी रहती थी। ऊपर से कविता का अमोघ शस्त्र पास में था ही। फिर क्या था, वे दुनियावालों की निदा-स्तुति को ताक पर रखकर खुले तौर पर सब की खबर लेते थे। उनके सत्य-भाषण में कटुता भरी रहती थी। चीनी से पुती हुई कुनैन की गोलियों की तरह बातें करना वे नहीं जानते थे। 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूवात् सत्यम प्रियम्' वाली सूक्ति के वे कायल न थे।

साम्प्रदायिक कट्टरता की तरफ सबसे पहले वेमना का ध्यान गया था, जिसकी उन्होंने अनेक बार कटु आलोचना की थी। वेमना ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि शिवमंत्र और विष्णुमंत्र में कोई भेद नहीं है- 'धूर्त वैष्णव शंख-चक्रों की छाप लगाकर ललाट पर तिलक धारण कर भक्ति का ढ़ाग रचते हैं। भक्ति तो पूर्वजन्म के पुण्य से ही प्राप्त होती है।'

इन विचारों की प्रतिच्छाया कबीर की वाणी में भी लक्षित होती है-

'माला पहिरै, टोपी पहिरै छाप तिलक अनुमाना

साखी सबदे गावत भूले आतम सबहि न जाना।'

दोनों महानुभावों ने चित्त-नैर्मल्य के अभाव में निर्जलाव्रत की निरर्थकताप्रति पादित की है। हृदयस्थ ईश्वर की खोज में लग जाने तथा विभिन्न सांप्रदायि भूलभुलैयों में से बचकर रहने की सलाहें दी-

'आपुन पै आपुहि बिसरो'

जैसे ज्वान काँच मदिल मंह भ्रमि श्रमि भूनिमरों !

'अपुनपौ' भूलनेवाले अंध कर्मठों की प्रकृति का कैसा प्रभावकारी वर्णः कबीर ने किया है। आश्चर्य यह है कि अक्षरशः उनसे मिलता-जुलता वेमना म भी पद्य मिलता है-

"तत्वज्ञान न रखने से मूर्ख सांप्रदायिक भूल भुलैया रचकर दुःखी हो र है। जिस प्रकार काँचगृह में प्रवेश कर कुत्ता अपनी असंख्य परछाइयों को भ्रमबर असली कुत्ते समझकर भूक-भूक मरता है।'

कबीर और वेमना दोनों संत थे और नीतिकार थे, दोनों में पारिवारिक नीति की अपेक्षा सामाजिक नीति की प्रचुरता पाई जाती है। इन दोनों ने सामाजिक नीति के अन्तर्गत साधु, पंडित-मूर्ख, गुरु-शिष्य, सज्जन-दुर्जन, वणे-जासि आछूत, परनारी, संग-कुसग आदि विषयों पर अपनी अनुभूति के आधार विस्तार से लिखा है।

कबीर और वेमना दोनों ने जहाँ संतों के कर्तव्यादि का निरूपण किया वहाँ पाखंडियों से दूर रहने के लिए लोगों को सतर्क भी किया है। साधुओं में विषय में जाति-पाँति का विचार करना बुद्धिहीनता कहा है। कबीर का एवं दोहा-

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान,

मोल करो तलवार का. पडा रहन दो म्यान।'

वेमना का एक पद्य ऐसा ही है-

'गुणमुल कलवानि कुलमेंचगानेल

गुणम् कलिगेनेनि कोटि सेयु

गुणमुलेक युन्न गुड्डि गब्बयु लेदु

विश्वदाभिराम विनर बेमा।'

भाव यह है कि गुण प्रधान है, कुल नहीं। गुणी किसी भी कुल का हो, पूजनीय ही है, उसकी जाति से मतलब नहीं। गुण के रहने पर व्यक्ति नीच कुल के होते हुए भी पूज्य है। गुण के अभाव में वह एक कौड़ी का होता है। अतः गुण होने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

गुरु को कबीर और वेमना दोनों ने बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया है। शिष्य को गुरु के प्रति सर्व समर्पण की भावना होनी चाहिए और गुरु को शिष्य के प्रति वात्सल्य एवं विनीत भाव होना चाहिए।

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लगैं पाय

बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिये बताया।'

वेमना के उद्देश्य में गुरु ही देवता है। इस रहस्य को बह्म है। इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं।

इन दोनों सन्तों ने सत्संग, कुसंग पर विस्तार से प्रकाश डाला है इनने सत्संग में प्रवृत्त होने तथा कुसंग का परिहार करने की प्रबल प्रेरणा दी है। इनका मत है कि सत्संग से दुःख दूर होते हैं और कुसग से प्राप्त। सत्संग में रहते हुये जो की भूसी प्राप्त हो तो अच्छी, परन्तु कुसंग में रहकर मिष्ठान्न भोजन भी बुरा।

कबीर -

कबीर संगत साधु की, जी की भूसी खाय

खीर खाँड भोजन मिलै साकट संग न जाय।

बेमना कहते हैं कि जो व्यक्ति जीवन पर्यंत सत्संग करते हुये, परोपकार करता रहता है, उसी का जीवन सफल है।

दोनों महानुभावों ने स्पष्ट रूप में स्त्री की निदा की है। स्त्री का चरित्र अत्यन्त दुर्बोध है और स्त्री से प्रेम करनेवाले महामूले होते हैं। स्त्रियाँ संघर्ष का कारण है। साधना-मार्ग में सबसे बड़ा विघ्न कंचन और कामिनी है। दोनों ने समान रूप से इनकी निंदा की है। कनक और कामिनी पर दृष्टि पड़ते ही ब्रह्म- ज्ञानी के भी दिमाग को कीडे-कुरेदने लगते हैं। कबीर कहते हैं-

एक कनक अरु कामिनी जग में दुइफंदा

इनमें जो न बँधावई ताकर मैं बंदा।

वेमना -

आडु दानि जूड नर्थबु जूडंग

ब्रह्मर्कन बुट्टु रिम्म तेगुलु।

कबीर और वेमना दोनों निराकार ईश्वर के उपासक थे। कबीर की दृष्टि में धर्म की आधार शिला दयाभाव है। दया और धर्म एक दूसरे के पूरक और पर्याय हैं। उसी प्रकार क्षमाशीलता मानव का दैवी गुण है -

"जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप

जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहें अप।

दोनों सतों ने काम, फोध और तृष्णादि से दूर रहने तथा शील, क्षमा. धैर्य, नम्रता आदि गुणों को ग्रहण करने की प्रबल प्रेरणा दी है-

काम, क्रोध, त्रिष्णा तजै, ताहि मिलै भगवान्।

वेमना कहते हैं-

काम क्रोधमूलनु कलिगियुडु बरूलु

इप्टदैव गुरुनि एरूगलेरू।

भाव यह है कि जो लोग कामी, क्रोधी होते हैं, वे भगवान् को नहीं पा सकते। अर्थात् जो मनुष्य अरिषट वर्ग पर विजय पा लेता है, वही भगवान् को पा सकता।

क्षमा गुण की प्रशंसा दोनों ने की है। क्षमा ही सच्ची वीरता की कसौटी है।

कबीर कहते हैं-

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल

तोहि फूल को फूल है, बाको है तिरसूल।

वेमना कहते हैं-हतव्य शत्रु भी यदि संयोगवश हमारे हाथ लग जाय तो भी उसकी तनिक हानि नहीं करनी चाहिये। इसके विपरीत यथासभव उसकी सहायता करके भेजना उचित है।

दोनों की दृष्टि में सत्य ही सर्वेश्वर है, सत्य से बढ़कर पुण्य और असत्य से बढ़कर पाप नहीं -

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप

जाके हिरदै साँच है, ता हिरदे गुरु आप।

वेमना कहते हैं-सत्य से ही मानव द्विज होता है, जीवन और मरण में सत्य ही साथ देता है। सत्य से बढ़कर धर्म, कर्म नहीं।

कबीर और वेमना दोनों की दृष्टि में जगत के सभी सुख झूठे है और उन्हीं को पाकर लोग मोहवश अपने को सुखी मान बैठते हैं। इनमें सुख कहाँ ? सच्चा सुख तो उन्हीं को है, जो प्रभु नाम के जप में लीन हैं। मनोहर रूप, मधुर संगीत, सरस भक्ष्य, सुगंधित द्रव्य, स्त्री संस्पर्श आदि जो सामान्य जनों के लिए आकर्षक हैं. इनके लिए किसी काम के नहीं, वे वमन के समान जघन्य हैं। उनमें मूढ़ जन हो लिप्त होते हैं, विवेकी नहीं-

वासर सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहि

जो नर बिछुड़े नाम से, तिनको धूप न छाँहि।

वेमना कहते हैं-"यहाँ पर सुख है ही नहीं, पर उस लोक में सुख के मिलने की आशा करता है, कैसे ? जो सुख पहले नहीं, वह बाद को कहाँ से ? अतः इसी जीवन में भगवान का नाम जपो, दुःख दूर होगा, सुख मिलेगा।"

इनके विचार में तो जो ईश्वर ने दे दिया है, उसी पर संतुष्ट रहना उचित है और यदि कोई पुरुषार्थ भी करे तो भी उससे क्या बनता है ? उपलब्धि तो उतनी ही होगी, जितनी कि भाग्य में अंकित की जा चुकी है।

जाको जेता निरमया, ताको तेता होइ

रत्ती घटै न तिल बढ़े जो सिर कूटे कोइ।

वेमना कहते हैं कि- ललाट पर ब्रह्मा ने जो लिखा है, उसी के अनुसार होता है ! दोनों ने मधुर वाणी के प्रयोग पर बल दिया है-

मधुर वचन है औषधि कट् वचन है तीर

श्रवण द्वार है, संचरै, सालै सकल शरीर।

वेमना कहते हैं कि-मधुर वचन से ही मोक्ष, श्रेष्ठता, वैभव आदि प्राप्त होते हैं।

दोनों संतों ने तत्वज्ञान से विहीन वेद एवं शास्त्रों के शुक पाठवत् अध्ययन को निरर्थक बताया है। प्रेम के एक ही अक्षर में यदि कबीर ने जगत भर के पांडित्य का सार पाया, तो वेमना 'शिव' के दो ही अक्षरों में मुक्ति का सरलतीप्र मार्ग दिखा बैठे-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय

एकै अक्खर प्रेम का, पढ़ें सो पंडित होय।

वेमना -

ईक्षिति शिवइत्य निपेड रेंडक्षरमुळे

परिढविल्ल नरयमु वेमा।

कबीर निर्गुण राम के उपासक थे तो वेमना निर्गुण शिव के। गुरु तथा नाम की महिमा का गान दोनों ने गाया है। दोनों हठयोगी थे। लेकिन दोनों की साधना के मार्गों में अन्तर थोड़ा-सा है। वेगना का पथ शुद्ध ज्ञानपूर्ण रहने से सुष्क-सा लगता है। कबीर की साधना ज्ञानमय होते हुए भी वेदना रजित प्रेम की पटी पर चलती है रहस्यवाद का परिमल उसे रमणीय बनाता है। परमात्मा और आत्मा में पति-पत्नी का संबंध स्थापित कर वास्तव में कबीर ने नीरस लगने वाले अद्वैत मार्ग को सरस तथा रोमैटिक बना दिया है। दोनों ने कविता के लिए कविता नहीं की थी, बल्कि वे जो छन्द बोलते गये, वे ही उत्तम काव्यकोटि में आ गये। दोनों की कविता सीधे हृदय पर चोट करने में समर्थ बनी है। दोनों का काव्य मानव जीवन का स्वच्छ दर्पण है।

7.5. सारांश

इन दोनों के काव्य में मानवता की विविधताओं, सभी व्यापारों और सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। दोनों ने समाज को रीति एवं प्रगति पथ पर ले जाने के लिए सबसे बड़ा त्याग किया था। वेमना ने भी कबीर की तरह अपना एक पंथ अलग चलाया था, जिसका द्वार सबके लिए खुला था। इस पंथ के अनुयायी आज भी यत्र-तत्र देखने में आते हैं। दोनों 'अनाहतनाद' को सुन चुके थे। नीति व उपदेश के लिए कबीर के 'साखी' नाम से दोहों की रचना की। उनके दोहे देखने में सरल है, पर उनका प्रभाव गहरा है।

वेमना के पद्य 'आटवेलदियाँ' है। यह छंद पढ़ने में बड़ा सरल होता है। उनके एकाध पद्य से अपरिचित तेलुगु प्राणी को खोज निकालना असंभव है। दोनों ने नीति व उपदेश संबंधी कविता की रचना कर मानवता के कल्याण में योग देकर जीवन को सफल बनाया है। इस तरह दोनों उच्चकोटि के नीति-कवि ठहरते हैं।

7.6. बोध प्रश्न

1. विद्यापति और क्षेत्रय्या के बारे में उदाहरण सहित लिखिए।

2. हिन्दी के विद्यापति पर टिप्पणी लिखिए।

3. तेलुगु के क्षेत्रय्या पर टिप्पणी लिखिए।

4. कबीर और वेमना के बारे में उदाहरण सहित लिखिए।

5. हिन्दी के गीतिकार कवि कबीर पर टिप्पणी लिखिए।

6. तेलुगु के गीतिकार कवि वेमना पर टिप्पणी लिखिए।

7.7. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन -शिव सत्यनारायण।

2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

4. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

5. हिन्दी और तेलुगु की प्रगतिवादी काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- रामानायुडु, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

6. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. के. रामनाथन विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

8. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और श्रीरंगं श्रीनिवास राव

8.0. उद्देश्य

पिछले इकाइयों में हम भारतीय साहित्य की अवधारणा की विकास क्रम के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इसके अलावा हिन्दी -तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन के अंतर्गत ही हिन्दी-तेलुगु के अंतर्गत हिन्दी -तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन के बारे में संक्षिप्त रूप में चर्चा करते हुए विद्यापति और क्षेत्रय्या और कबीर और पोतना के बारे में चर्चा कर चुके हैं। अब हम इस इकाई में-

- हिन्दी और तेलुगु कवियों के बारे में जानेंगे,
- निराला और श्री. श्री. के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

8.1. प्रस्तावना

8.2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

8.3. निराला और श्री. श्री.

8.4. सारांश

8.5. बोध प्रश्न

8.6. सहायक ग्रंथ

8.1. प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी और तेलुगु काव्यधारा के प्रमुख कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निरालाजी और श्रीरंगं श्रीनिवास राव शीर्ष स्थान ग्रहण करते हैं। इन दोनों के विचारों, भावों तथा कल्पनाओं में पर्याप्त साम्य मिलता है। ये दोनों अपने-अपने क्षेत्र में निराला और श्री. श्री. के नामों से प्रसिद्ध हैं।

8.2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

निरालाजी और श्री. श्री.-दोनों की अवस्था में विशेष अंतर नहीं। इन दोनों को अपने शैशव में बहुत कुछ साहित्यिक वातावरण मिला। दोनों को अध्ययन का सुअवसर मिला। दोनों बचपन से ही अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध रहे। किसी प्रकार के बंधन में पड़े रहना, उनकी प्रकृति के विपरीत रहा। निरालाजी ने बंगला, संस्कृत और दर्शन का गंभीर अध्ययन किया तो श्री. श्री. ने प्राणि-शास्त्र में उच्चतम उपाधि प्राप्त की और पिता की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से संस्कृत, तेलुगु के प्राचीन साहित्य एवं प्रबंध-काव्यों का सुचारु रूप से अध्ययन किया।

दोनों बचपन से ही कविता लिखते रहे। निराला जी का शैशव बंगाल के एक राज-परिवार में बीता। अपूर्व स्वास्थ्य पाने तथा राज-दरबार में रहने के कारण उनमें एक ओर अदम्य पौरुष मिलता है तो दूसरी ओर स्वाभिमान की उदात्तता मिलती है। अतएव निरालाजी की कला पौरुष के दर्प से पूर्ण मानी जाती है। पत्नी की मृत्यु, रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द के सम्मिलित प्रभाव से उनकी भाव-धारा में परिवर्तन हुआ। निरालाजी तथा श्री. श्री. दोनों के स्वभाव में उग्रता मिलती है जो संघपमा जीवन का परिणाम है। समाज को कटुता एवं आर्थिक विषमता से जूंझनेवाला सहृदय प्राणी ही उस उग्रता का भाजन बन सकता है।

8.3. निराला और श्री. श्री.

निराला जी तथा श्री. श्री. दोनों ऐसे युगांतरकारी कवि हैं, जिनकी रचनाओं में तत्कालीन मानव की पीड़ा परतंत्रता एवं परवशता के प्रति उत्पन्न तीव्र आक्रोश की ध्वनि सुनाई पड़ती है, अन्याय एवं असमानता के प्रति प्रलयकारी विद्रोह की घोषणा सुनाई पड़ती है और विषमताओं, विभेदों एवं विपरीत परिस्थितियों से अपने करने की तीव्र गर्जना सुनाई पड़ती है। ऐसे क्रांतिकारी कवि एक ओर अपनी ओजस्विनी कविता द्वारा ज्वालामुखी का विस्फोट भी करते हैं तो दूसरी ओर नारी के दिव्य सौंदर्य की अलौकिक झाँकी प्रस्तुत करते हुए प्रिय के मर्मस्पर्शी गीत भी गाते हैं।

भावना के क्षेत्र में दोनों में करुणा और समवेदना का स्वर मुखरित किया है। दोनों ही कवियों ने मानव की परुष-प्रवृत्तियाँ का चित्रण करने में अपने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। कहीं-कहीं तो दोनों में भाव-साम्य देखकर एक-बारगी दंग रह जाना पड़ता है। दोनों में चिंतन की प्रधानता और वृद्धि की प्रबलता मिलती है। दोनों के भावों में ओज को भाषा अधिक मिलती है। दोनों को काव्य-कला संघर्ष की ही देन है। दोनों को परिस्थितियों के घात-प्रतिघात ने एक उद्बुद्ध, सचेत एवं जाग्रत कलाकार के रूप में ढाल दिया था।

उन्हें जीवन और जगत के प्रति गंभीरता के साथ सोचने एवं समझने के लिए विवश किया था और उन्हें अन्याय, अनाचार एवं असमानता के विरुद्ध आवाज बुलंद करने के लिए प्रेरित किया था। दोनों तत्कालीन मानवता पर होनेवाले अनवरत अत्याचारों से कराह उठे थे, मानव की पीड़ा ने उनको व्यथित और बेचैन बना दिया था और दीनता एवं कातरता ने उनके हृदय में गहन वेदना, टीम, छटपटाहट एवं आक्रोश को कूट-कूट कर भर दिया था। उच्चवर्ग की तानाशाही ने उनको वर्ग- विद्रोह के लिए विवश किया था।

सामाजिक वैषम्य ने उनको तत्कालीन समाज में क्रान्ति उत्पन्न करके एक नए समाज की रचना के लिए प्रेरित किया था, तत्कालीन शासकों के दमन एवं शोषण ने उनको तांडव नृत्य करने के लिए प्रलयंकर शंकर जैसे क्रांतिकारी नव-युवकों का निर्माण करने को प्रेरणा प्रदान की थी, आर्थिक पराजय ने उनको शोषकों के विपुल वैभव में आग लगाने के लिए प्रेरित किया था और सामाजिक कूट-मान्यताओं की अप्रतिहत गति ने उन्हें समाज में भयंकर विस्फोट करने के लिए प्रोत्साहित किया था। इसलिए दोनों ने ऐसे काव्य का सृजन किया है, जिसमें क्रांति एवं विद्रोह का स्वर मुखरित है, जिसमें समाज की व्यथा एवं वेदना की उचित स्थान मिला है और जिसमें विषमता से पीडित मानवता की छटपटाहट अंकित है।

निराला के 'बादल-राग', 'जागो फिर एक बार', 'परिमल गीतिका', 'अपरा' आदि के गीतों में तथा श्री. श्री. के 'मरोप्रपंचम', 'मानवुड़ा', 'महाप्रस्थानम्', 'ज्वालातोरणम्', 'जगन्नाथुनि रखवाल' आदि गीतों में उनकी क्रांतिकारी भावनाओं का पता चलता है। पराधीनता से व्यथित एवं बेचैन होकर समाज में वर्ष क्रांति लाना चाहते है, जिससे सारे समाज में नव-चेतना का उदय हो, सभी समान रूप से सुख-समृद्धि के अधिकारी हों, सब को स्वतंत्रता के साथ जीवन-यापन करने की सुविधाएँ प्राप्त हों और सभी समाज के अभिन्न अंग बनकर संगठित रूप में जीवित रहे।

निरालाजी ने इसी सामाजिक कांति के स्वर को तीव्र एवं प्रखर बनाती हुए 'जानो फिर एक बार' कविता में फिरते भारत को उन चिर-प्रसुप्त शक्तियों को झकझोरा है जो परतंत्रता की गहरी नींद में सोई पड़ी है। कवि उन्हीं भारतीय शूर वीरों को उद्बोधन-मंत्र देता हुआ जागता है।

'जागो फिर एक बार।

पशु नहीं वीर तुम, समर शूर, क्रूर नहीं,

काल-चक्र में हो दबे, आज तुम राजकुंवर ! समरसरताज।'

कवि ने राष्ट्र प्रेम के ओजस्वी भावों से प्रेरित होकर भारत माता के आकार का की वंदना की है -

'भारति जय विजय करे। कनक- शस्य-कमल धरे।

लंका पद तल शतदल सजिनोमि सागर जल।'

कवि समाज को भयंकर विषमता को देख कराह उठा है। कवि को इसी विषमता ने उस पत्थर तोड़नेवाली श्रमिक युवती के जीवन की करुण-गाथा को काव्य रूप देने के लिए बाध्य किया है जो इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोल-कर अपना पेट पालती है -

'वह तोड़ती पत्थर,

देखा मैं ने इलाहाबाद के पथ पर-यह तोड़ती पत्थर।

नहीं छायादार पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।

श्याम तन, भर बंधा यौवन, नतनयन, प्रिय-कर्म-रत मन।'

ऐसे ही कवि निराला का हृदय उस भिक्षुक को देखकर अत्यधिक व्यथित एवं वेचैन हो उठता है, जिसके भूख के मारे, पेट और पीठ दोनों मिलकर एक हो गये हैं -

'वह आता-

दो टूक कलेजे के करता पछताना पथ पर आता।

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,

चल रहा लकुटिया टेक,

मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को

मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये।'

इस तरह निराला के गीतों में युग-युग से प्रताड़ित, प्रपीड़ित एवं प्रवचित मानवता पर होनेवाले वज्राप्रहार की प्रतिक्रिया गूँज रही है।

'जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन, क्या करूँगा तन जीयन हीन?

माँ तू भारत की पृथ्वी पर उत्तर रूपमय माथा तनधर

देव व्रत नश्वर पैदा कर फैला शक्ति नवीन।'

इस प्रहार कवि भारत-माता के बंधनों को काटकर नए स्वर, नये ताल और नये छन्द में स्वाधीनता के नये-नये गीत गाने में समर्थ हुआ है।

श्री. श्री. पहले भाव-गीत लिखते रहे और प्राचीन परंपरा के पद्य रचना करते रहे। 'प्रभव' संग्रह में कई कविताएँ हैं। प्रकृति-गीतों में स्वच्छन्दता, प्रणयगीतों में अभिसारिका, वियोग शान्ति, निरीक्षण आदि कविताएँ है। 'अतिमयात्रा' नामक गीत है। फुटकर गीतों में तांड़व शिव का प्रलय नृत्य प्रमुख है। वे अबतक छन्दोबद्ध कविता करते थे, पर 'सुप्तास्थकलु' संग्रह की कविताओं में नवीनता दिखाई देती है। इसी समय से 'विद्यन्मालिकलु' नाम से गद्यगीत लिखने लगे। सन् 1930 में उन्हें टायफाइड़ हुआ। तब उनमें अपूर्व अंतः संघर्ष प्रारंभ हुआ ! एक और उनमें भाव-कविता के प्रति विरक्ति उत्पन्न हुई तो दूसरी ओर अनवरत मृत्यु से जूझनेवाली वस्त एवं पीड़ित जनता के प्रति अनुरक्ति हुई। उनके अंतराल से -

'मत आओ मत आओ अंदर

गीत एक लिख, रहा हूँ

मत आओ मत आओ अंदर

यह मुझे देखने का समय नहीं

मेरे मन का कारखाना

उगल रहा है आगे के शोले'

-गूंज उठा।

कवि ने 'जयभेरि' गीत में अपनी विजयदुदुभी बजा दी। कवि की सुप्रसिद्ध रचना 'महामस्थानम्' जो 11 अप्रैल सन् 1930 में रची गई थी वह प्राचीन परंपराओं के बंधनों से मुक्त है और तदनंतर कवि की रचनाओं का विषय समाज का दलित तथा पीड़ित वर्ग रहा है। इस संग्रह में प्रसिद्ध गीत-

'मेरो प्रपंचम् मरो प्रपंत्रम् मरो प्रपंचम् ,

दूसरी दुनिया, दूसरी दुनिया, दूसरी दुनिया।'

'निकला' जो प्रबोध गीत के रूप में प्रसिद्ध है, इसमें जो 'महाप्रस्थानम्' गीत है, वह ओज गुण प्रधान है और एक प्रकार से वह विश्व की जनता का गीत है। इसमें जिन सैनिकों का वर्णन है, उनमें युद्ध के प्रति अनुरक्ति नहीं, उनमें वीरता का रक्त खौल रहा है। इसके बाद 'बटसारी' (राही) प्रतिज्ञा, अभ्युदय, व्यत्यास, नवकविता, ओ कविते! ओ कवित ! जगन्नाथ के रथचक्र, आदि गीतों की रचना हुई।

जीवन और समाज की गहरी तथा विषम समस्याओं का हल कवि ने कार्लमार्क्स के भौतिकवाद में प्रस्तुत किया। कवि रूस की क्रांति से भी पर्याप्त प्रभावित है। कवि ने मार्क्स के प्रभाव को स्पष्ट शब्दों में या स्वीकार किया -

'किसी भी देश का इतिहास देखें

क्या है उसमें गर्व का कारण

समग्र मानव जाति का इतिहास

पर पीड़न परायणता हो।'

मार्क्सवाद व्यक्तिगत इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर न होकर उसके पीछे जो शक्ति निहित है, उसे देखता है श्री. श्री. ने -

'इतिहास के अंधकार का कोना

अन्तः निक्षिप्त अलक्षित

कथाएँ सब चाहिये इस समय

छिपाने से न छिपनेवाला सत्य।'

कहकर सचेत किया। विगत समस्त मानवता को इतिहास को रक्त सिक्त अश्रृधारा से परिपूरित कहकर हृदय-विदारक नग्न सत्य को स्पष्ट किया। मार्क्सवाद मानव-जाति का समग्र इतिहास को वर्ग-संघर्ष का परिणाम मानता है-

'परस्पर संघर्ष को शक्तियाँ में इतिहास का आविर्भाव हुआ।'

कवि ने इसी एक वाक्य में कह दिया-

शोषक-वर्ग सदा शोषित-वर्ग का शोषक करता ही रहता है।

कवि के शब्दों में-

मानव जाति का समग्र इतिहास

दुर्बलों को सताना है।

'बलवान ने दुर्बल जाति को

गुलाम बना दिया है

नरहंतक+ धराधिपति

इतिहास में प्रसिद्ध हुए हैं।'

जमींदारी व्यवस्था में जो अव्यवस्था है, उसका कवि ने निराकरण किया है-

'धनवान् के कुतंत्र

अब नहीं, अब नहीं चलेंगे।'

देश चरित्र, प्रतिज्ञा इन दोनों कविताओं में मार्क्स का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित है।

निराला तथा थी. श्री. के हाथ से तत्कालीन जीवन का कोई भी अंग अछूता नहीं रहा। दोनों ने अपने तीव्र व्यंग्यों का प्रहार करते हुए तत्कालीन सामाजिक चेतना को ही नहीं झकझोरा हैं, अपितु तथाकथित प्रगतिशील विचारधारा से ओतप्रोत नेताओं एवं समाज-सेवियों, पूँजीपतियों, बौद्धिक विलास में लीन अवसरवादियों, शोषक जमींदारों एवं धनिकों आदि की भी खूब खबर ली है। कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, बेला, अणिमा आदि काव्य-संग्रहों में निराला की यह व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति अधिक तीव्र एवं प्रखर हो उठी है। श्री. श्री. की अवतार, छायाएँ, ऋचाएँ, गरीब, वह, गर्जना करो रूस, नव कविता आदि कविताओं में ये ही भाव सष्टतः अंकित हुए हैं।

दोनों ने अपने गीतों में जनता को रक्त-कांति करने के लिए प्रोत्साहित किया है। साथ ही कुछ गीतों में पूँजीपतियों बन विरोध एवं मजदूर वर्ग के प्रति सहानभूति प्रकट करते हुए नये समाज का निर्माण करने के लिए, जनता को प्रेरणा प्रदान की है। वर्गहीन समाज की स्थापना इनका चरम उद्देश्य रहा है। सभ्यता, संस्कृति, साहित्य की नवीन परिभाषाएँ की गई जिनमें जनहित वर्ग हीनता का आधार माना गया। व्यक्तिगत चेतना समष्टिगत चेतना के रूप में मुखरित हुई। नवीन छन्द, नवीन उपमान, नवीन प्रतीकों को अपनाया गया। नवीन प्रतीकों में मशाल, प्रलय, तांडव, रक्त, जोंक इत्यादि दिखाई दिये, जिनका अर्थ क्रमशः क्रांति, नाश की कल्पना, कांति का विस्तार बलिदान, महाजन लगाया गया है।

इस प्रकार निराला तथा श्री. श्री. दोनों की काव्यानुभूति में तत्कालीन जीवन और जगत की विविधता भरी हुई है। उसमें एक और क्रांतिकारी विचारों की तीव्र ज्वाला भी धधक रही है, दूसरी ओर उसमें प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों

के विध्वंस का तीव्र सदर भी सुनाई पड़ता है और नवीन समाज-रचना का मधुर राग भी गूंज रहा है। उनकी काव्यानुभूति में शोषकों, साम्राज्यवादियों एवं पूँजीपतियों द्वारा प्रताड़ित सर्वहारा-वर्ग की चीख-पुकार भी सुनाई पड़ती है और अन्याय एवं असमानता को अपने सशक्त बाहू-बल में पूर्णतया समाप्त कर देने का सिंह-गर्जन भी सुनाई पड़ता है। उसमें अन्याय एवं असमानता के प्रति तीव्र आक्रोश का स्वर भी सुनाई पड़ता है और समता, एकता, समवेदना एवं सहानुभूति की मधुर- स्वर-लहरी भी प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है, साथ ही उसमें मानवता का प्रेम है, विश्वप्रेम है तथा रक्त क्रांति की प्रेरणा भी है और नवनिर्माण का शुभ संदेश भी है। यही कारण है कि दोनों की काव्यानुभूति युग-चेतना का साकार रूप धारण करके उनकी सशक्त काव्यधारा के रूप में प्रवाहित हो रही है।

निराला और श्री. श्री. दोनों के काव्य में प्रकृति-चित्रण को समुचित स्थान मिला है, पर इस क्षेत्र में निराला जी ने प्रकृति को रहस्यवादी और अद्वैतवादी दृष्टिकोण से देखा है। निराला ने प्रकृति और उसके परम सुखा की अद्वैतता को माना है। उनके प्रकृति-चित्रण में अव्यक्त सौंदर्य की सुन्दर व्यंजना उपलब्ध हुई है। इसके विपरीत श्री. श्री. की दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौंदर्य पर ही टिकी है। निराला की कविता अद्वैतवेदान्त के मानवता लक्षी तथा 'सर्व भूतहितेरतः' विचारों से परिपूर्ण है।

काव्य विषय की दृष्टि से निराला जी में प्रबंधात्मकता दिखाई देती है। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' उनकी विपुल कीर्ति के केतु हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति का भी पूर्ण आग्रह मिलता है। श्री. श्री. की रचनाएँ सभी मुक्तक हैं। दोनों ने लंबी कविताएँ लिखी है। काव्य-कुला की दृष्टि से देखने पर भी दोनों में साम्य अधिक मिलता है। निराला और श्री. श्री. दोनों को अपनी-अपनी भाषा पर असाधारण अधिकार है। दोनों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को सर्वत्र भावों के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया है।

दोनों के भाव जहाँ अधिक प्रौढ़, सशक्त, गंभीर एवं ओजस्वी रहे हैं, उनकी भाषा में अपेक्षाकृत प्रौढ़ता, ओजस्विता, गंभीरता आदि गुण प्रचुर मात्रा में दिखाई देते हैं, लेकिन जहाँ ये जन-जीवन के अनुकूल सरल भावों को अभिव्यक्त करना चाहते हैं, वहाँ उनकी भाषा सरलता एवं व्यावहारिकता से ओत-प्रोत है तथा जहाँ पर उन्होंने क्रोध एवं आवेश में आकर समाज के तथाकथित शोषकों, अत्याचारियों, अन्यायियों अथवा पीडिकों को जली-कटी सुनाई है अथवा उन पर व्यग्यबाणों की वर्षा की है, वहाँ पर उन लोगों की भाषा में भी अपेक्षाकृत तीखापन, चुभन, कटुता, रूखापन एवं लघुता के अधिक दर्शन होते हैं। प्रौढ़, सशक्त एवं ओजस्वी भाषा का एक उदाहरण 'राम की शक्ति पूजा' में द्रष्टव्य है-

'रावण-प्रहार - दुर्वार-विकल-वानर-दल-वल

मूर्च्छत-सुग्रीवांगदाविभीषण-गवाक्ष-गथ-नल

बारित-सौमित्र,- भल्लपति-अगणित-मल्ल योध

गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत - केवल-प्रबोध'

श्री. श्री. की भाषा का एक रूप प्रलय नृत्य में-इस प्रकार है -

कालंत प्रभवार्क कोटि घृणि संकाश प्रताप स्फुर

त्कालाक्ष ज्वलदग्नि दग्ध सकल ब्रह्मांड भांडंडवै ।'

ज्वाला दीप्त महाप्रभाव गरिमन् ।

सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा के उदाहरण-निराला की 'विधवा' है -

'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी

वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन

वह क्रूर काल तांडव की स्मृति-रेखा-सी,

वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन-

दलित भारत की ही विधवा है ।'

श्री. श्री. के 'आकाश दीप' में -

'कमरे से कोई नहीं

कमरे में नीरव निस्तब्धता

शाम को साढ़े छः बजे

कमरे में बूँदों की भाँति अंधेरा ।'

दोनों की अलंकार-योजना अत्यद्भुत है । उपमा, रूपक, समासोक्ति आदि का विशेष प्रयोग मिलता है । दोनों में अनुप्रास की भरमार है, दोनों ने कई प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

छन्द की दृष्टि से दोनों क्रांतिकारी एवं विद्रोह के कवि हैं । दोनों वे छन्द-संबंधी प्राचीन मान्यताओं में आमूल परिवर्तन करके मुक्त छन्द का श्रीगणेश किया ।

अन्त्यानुप्रासवाली कविताएँ दोनों में मिलती है -

निराला-

'एक दिन थम जाएगा रोदन

तुम्हारे प्रेम-अंचल में

लिपट स्मृति बन आयेंगे कुछ कन

कनक साँचे नयन-जल में।'

श्री. श्री.-

'हिस नचण

ध्वंस रचन

ध्वंस नचण

हिंस रचन '

शब्द-स्थापना एवं वर्ण-मैत्री में दोनों में विशेष कौशल है। शब्द-प्रयोग में लालित्य है और अर्थ-गौरव है। दोनों की भाषा संस्कृतनिष्ठ है, प्रांजल है। दोनों की काव्य-शैली में ओज और पौरुष का अपूर्व संतुलन मिलता है। दोनों में पौरुष है, पुरुष-सुषमा है।

8.4. सारांश

निराला और श्री. श्री. दोनों अधिकतर बुद्धिवादी कवि थे। उनमें भाव-प्रवणता कम दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है कि यदा-कदा उनकी कविता इतनी अधिक दुरूह हो जाती है कि साधारण पाठक के लिए उसे समझना कठिन हो जाता है। जहाँ वे रूप-जगत से अरूप-सृष्टि की ओर जाते हैं, वहाँ भावना अत्यंत सूक्ष्म हो जाती है। हिन्दी और तेलुगु में इस प्रकार की गहन तथा अर्थ से परिपूर्ण कविता की सृष्टि करनेवाले विरल ही हैं।

भाव-चातुर्य, अर्थ की गहनता और सूक्ष्मता में निराला और श्री. श्री. निराला है। निराला और श्री. श्री. दोनों सदैव युग के साथ चलते रहे और प्रत्येक बार उन्होंने युग का नेतृत्व किया। इस दृष्टि से निराला और थी. श्री. दोनों युगान्तरवादी कवि समझे जायेंगे।

दुर्भाग्य से आज निरालाजी नहीं रहे। भाषागत प्रदेशगत भेद के होते हुए भी निराला एवं श्री. श्री. की काव्य-धारा एक रही है।

8.5. बोध प्रश्न

1. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और श्रीरंगं श्रीनिवास के काव्य धारा के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

2. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला पर टिप्पणि लिखिए।

3. श्रीरंगं श्रीनिवास पर टिप्पणि लिखिए।

4. हिन्दी और तेलुगु काव्यधारा के कवियों का तुलनात्मक अध्ययन पर व्याख्या लिखिए।

8.6. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन -शिव सत्यनारायण।

2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

4. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्य-धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

5. हिन्दी और तेलुगु की प्रगतिवादी काव्य-धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- रामानायुडु, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

6. हिन्दी और तेलुगु तुलनात्मक अध्ययन- प्रो. जी. सुंदर रेड्डी।

7. हिन्दी और तेलुगु कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस.एम. इगबाल, ऋषभचरण जैन एवं संपट्टि, दरियागंज, दिल्ली।

8. हिन्दी और तेलुगु नीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन -के. शिव सत्यनायण।

9. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- इन्द्रनाथ चौधरी, नेशनल, दिल्ली।

10. तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉऊस, नई दिल्ली।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

9. राष्ट्रकवि दिनकर और रायपोलु सुब्बाराव

9.0. उद्देश्य

पिछले इकाइयों में हम भारतीय साहित्य की अवधारणा की विकास क्रम के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इसके अलावा हिन्दी -तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन के अंतर्गत ही हिन्दी-तेलुगु के अंतर्गत हिन्दी -तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन के बारे में संक्षिप्त रूप में चर्चा करते हुए विद्यापति और क्षेत्रय्या, कबीर और पोतना, निराला और श्री. श्री. के बारे में चर्चा कर चुके हैं। अब हम इस इकाई में-

- हिन्दी और तेलुगु कवियों के बारे में जानेंगे,
- राष्ट्र कवि दिनकर और रायप्रोलु सुब्बाराव के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

9.1. प्रस्तावना

9.2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

9.3. राष्ट्र कवि दिनकर और रायप्रोलु सुब्बाराव

9.4. सारांश

9.5. बोध प्रश्न

9.6. सहायक ग्रंथ

9.1. प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा में रामधारी सिंह 'दिनकर' का जो स्थान है, वही स्थान तेलुगु की आधुनिक काव्य धारा में रायप्रोल सुब्बाराव जी का है। दोनों युग-प्रवर्तक राष्ट्रीय कवि हैं। हिन्दी और तेलुगु साहित्यों के प्रांगण में दोनों कवियों का पदार्पण तब हुआ, जबकि भारत के सुपुष पराधीनता की श्रृंखलाओं से जकड़ी हुई अपनी जननी-जन्म-भूमि को मुक्त करने के हेतु कटिवद्ध हुए थे। आप दोनों की लेखनी से सच्छी देश भक्ति से ओतप्रोत उत्तम कविताओं के साथ-साथ कई प्रगतिशील काव्य-पक्ष भी निकले हैं।

रायप्रोलु सुब्बाराव तथा रामधारी सिंह दिनकर दोनों ओजस्वी कवि हैं। उनकी रचनाओं में नव निर्माण का आग्रह है। दोनों की कविता राष्ट्रीय भावना से परिप्लुत है।

9.2. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

दिनकर का जन्म बिहार में हुआ तो रायप्रोलु का आंध्र के पश्चिम गोदावरी जिले में। दिनकर ने बी. ए. (अनर्स) तक विधिवत शिक्षा पाई तो रायप्रोलु गुरुदेव की गीतांजलि के प्रभाव से प्रभावित होकर शांति-निकेतन गये, वहाँ पर तीन साल तक रहकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा को प्रस्फुटित करने का सफल प्रयत्न किया। ये दोनों केवल कवि ही नहीं, अनेक विषयों के गम्भीर विद्वान हैं। इतिहास, दर्शन, धर्म, राजनीति, संस्कृति आदि आप दानों के अध्ययन के मुख्य विषय रहे हैं। दोनों बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता है। दोनों में स्वच्छन्दतापूर्ण नवीन तत्त्व तथा परम्परागत प्राचीन तत्त्व का सुंदर सम्मिश्रण रहा।

'संस्कृति के चार अध्याय' और 'मिट्टी की ओर' दोनों दिनकर के प्रौढ़ गद्य ग्रंथ है। रेणुका, हुंकार, द्वंद्वगीत और रसवती जैसी काव्य-कृतियाँ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं, जहाँ हमें काव्य का मुक्त स्वरूप मिलता है। तृणकंकण, तेलुगु तोटा, जड़कुच्चुलु, आंध्रावली आदि सुब्बारावजी के मुक्तक काव्य हैं। 'ललिता' एक खण्ड-काव्य है। स्नेहलतादेवी, कष्टकमला आपके कथात्मक प्रबंध काव्य हैं। दिनकर के प्रबंध काव्यों में कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, ऊवंशी उल्लेखनीय हैं। दिनकर के 'बाप्पू' में विश्ववंद्य बापू के जीवन की झांकी मिलती है।

दोनों की कविता में बाद-विशेष की स्थापना नहीं है। वे मानव-मन और जीवन के स्वतंत्र एवं स्वच्छंद विकास के समर्थक तथा गायक हैं। दोनों के काव्य में ऐतिहासिकता के प्रति आग्रह मिलता है, परिणामस्वरूप उन्होंने अतीत के गौरव की ओर विशेषतः ध्यान दिया है, पर अतीत के गौरव की याद दिलाकर ही उन्होंने साँस नहीं ली है, बल्कि वर्तमान का पतन उनके सामने मौह वायें खड़ा है, जिसे देखकर उनके मन में भारी क्षोभ उत्पन्न होता है और इस क्षोभ के कारण

वे खण्डहरों के चित्र उतारते हैं। कुतुबमीनार और ताजमहल की सीढ़िया पर बैठकर रोते हैं। वे प्राचीन गौरव और वर्तमान पतन का स्मरण करा कर हमें रुलाते हैं -

'रो रो पतझड़ की कोयल, उजड़ी दुनिया की रानी

कैसे श्मशान में हँसता, रे ताजमहल अभिमानी।'

उनके हृदय की पीड़ा नई दिल्ली के साज श्रृंगार को देखकर और भी बढ़ जाती है। परिणाम स्वरूप वे क्रांति की मशाल जलाते हैं। अमीरों के द्वारा गरीबों के लिए जो खाई खोदी गई है, उसे देखकर दिनकर अपने को सम्हाल नहीं पाते-

'हटो व्योम के मंच पंथ से स्वर्ग लूटने हम खाते हैं

दूध-दूध ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम जाते है।'

दिनकर क्रांति का आह्वान करते हैं, फलतः उन्हें क्रांति का पुजारी, अग्रदूत या उसका जागरूक कवि कहा जाता है। क्रांति का नाम बुलंद करनेवाले दिनकर अमूल परिवर्तन की कामना करते हैं -

'नाचो नाचो प्रलयंकर'

जिससे

'ओर-छोर तब सृष्टि भस्म हो, चिता भूमि बन जाय अरे रे

और फिर-

'रच दो फिरसे अहो विधाता

तुम शिव सत्य और सुंदर'

दिनकर न केवल आस्तिक कवि हैं, वरन् आस्तिक कवि होने के साथ-साथ सत्य, शिव और सुंदर के उपासक भी हैं। उन्होंने अपनी शक्ति का अनुभव किया है, उसे पहचाना है और संजोया भी है। इसलिए वे 'आलोक धन्वा' तानकर त्यागर्व कहते हैं-

'मैं विभा पुत्र जागरण गान है मेरा

जम को अक्षय आलोक दान है मेरा।'

इस प्रकार आलोक-दान करनेवाले कवि कुछ-न-कुछ संदेश भी देते हैं जिससे उन्हें आदर्शवाद की श्रेणी में स्थान मिलना है। उनका आदर्शवाद देशप्रेम की भावना जागृत करने में समर्थ है, जिसके लिए उनको याचना है -

'प्यारे स्वदेन के हित अगार माँगता हूँ

चढ़ती जवानियों का श्रृंगार माँगता हूँ।'

दिनकर भारतीय आदर्श, सेवा, त्याग, तपस्या और करुणा को बनाये रखना चाहते हैं, बनाये रखने का आदेश देते हैं -

'आदर्श अगर जल बाद हुआ

कुछ भी न शेष रह पायेगा

मंजिल के पास पहुँचकर भी

भारत खाली रह जाएगा।'

आदर्शवादी दिनकर की भावनाए देशभक्ति की बलिवेदी पर समर्पित है, फलतः वे भारत का जयगान करते है -

'जय हो भारत के नये खग

जय अरुण देश के सेनानी

जय नहीं आज जय नहीं ज्योति

जय नये लक्ष्य के अभिमानी।'

फलतः इसी अर्थ में उन्हें चारणकवि माना जाता है।

ठीक इसी भाँति सुब्बाराव की कविताओं में आदि से अंत तक राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई है -

'एदेशमेगिना एंदु फालिडिना

ए पीठ मेक्किना, एवरमनिना

पाडरा नी तल्लि-भूमि भारतिनि

निलुपुरा नी जाति निडु गौरवमु।'

अर्थात जिस किसी भी देश में जाय, जहाँ कहीं भी आदर पावे, लोग जो भी कुछ कहें, तू अपनी भारत-भूमि का यशोगान गाकर अपनी जाति का मान अखंड रख।

कवि की भारत की मिट्टी के प्रति कैसी पवित्र भावना है -

'ए पूर्व पुष्यमों, ये योग बलमो

जनियिंचिनाड वी स्वर्ग खंडमन

ए मंचि पूवुलूनु पूजिंचिनाओ

निनु मोसे ई तल्लि कनक गर्भमुन।'

किसी जन्म-जन्मांतर के पुष्य से, किसी योगबल से इस स्वर्ग के बंट में तेरा जन्म हुआ। किन्हीं अच्छे-अच्छे फूलों को तू ने चढ़ाया होगा, जिसके फल- स्वरूप इस माता ने अपने कनक-गर्भ में मुझे ढोया है।

भारत भूमि में जन्म लेना ही बड़े सौभाग्य की बात है- इस महान देश की महानता को छोड़ किसी विदेश के बड़प्पन को गाना, हर एक विषय में विदेशियों का अनुकरण करना कैसी मूर्खता है ? तेरी यह जन्म-भूमि कितनी उज्ज्वल है -

'पोलमल रतनालु मोलिचेरा इचट

वार्धिलो मुत्यालु पंडेरा इचट

पृथ्वि दिव्योषधुलू पितकरा मनकु

कानल कस्तूरि कासेरा मनकु

अवमान मेलरा, अनुमान मेलरा

भारतीयुडुननुचु भक्तितो पाड ।'

"रत्न निकलते हैं, यहाँ के खेतों में, मोतियों की फसल होती है, यहाँ के सागरों में, यहाँ की भूमि दिव्यौषधियाँ दुहती हैं। यहाँ के जंगलों में कस्तूरी फलती है। फिर अपमान की क्या बात है और आशंका की क्या गुंजाइश है? भक्तिपूर्ण भाव में घोषणा कर कि-मैं भारत का सपूत हूँ।"

दिनकर एवं सुब्बाराव दोनों की रचनाओं में न केवल देशप्रेम मिलना है, वरन बज कभी वे तत्कालीन राजनीति एवं सामाजिक बुराइयों से भी प्रभावित होते जान पड़ते हैं। दोनों गांधीवाद से प्रभावित है, पर गांधीवाद के विपरीत अपने स्वर और अस्तित्व की रक्षा के लिए मर-मिटने की तैयारी भी करते है। आर्थिक विषमता दूर करने तथा शांति-स्थापना के लिए उनका विचार है, अर्थ का समान वितरण हो-

'शांति नहीं तब तक, जब तक

सुख-भाग न नर का सम हो

नहीं किसी को बहुत अधिक हो

नहीं किसी को कम हो !'

सुब्बाराव के काव्य में भी यत्र-तत्र यही भाव दीखता है।

दोनों प्रकृति की मुरम्य वाटिका के चतुर चितेरे हैं। ग्राम्य प्रकृति का वर्णन बड़ी सरल शैली में करते हैं -

'स्वर्णाचला अहा ! खेतों में उतरी संध्या श्याम परी

रोमन्थन करती गाएँ आ रहीं रौंदतो घास हरी

घर-घर से उठ रहा धुंआ जलते चूल्हे बारी-बारी'

X X X X X X

तितली के पीछे दौडूंगी, नाचुंगी दे दे ताली

मैं मकई की सुरभि बनूंगी पके आम फल की लाली

वेणु कुंज में जुगनु बनकर इधर उधर मुसकाऊँगी

हर सिंगार की कलियाँ बनकर वधुओं पर झर जाऊंगी।'

सुब्बाराव के 'ललिता' नामक खंडकाव्य में प्रकृति के अनेक सुरम्प चित्र देखने को मिलते हैं। आधुनिक काल के कवि प्रकृति के संबंध में जिस नवीन दृष्टिकोण को अपना चुके हैं, उसका परिचय उक्त काव्य में विस्तार से मिलता है। 'तृणकंकण' इस नई धारा का प्रथम काव्य है। शिवशंकर शास्त्री जी ने इस काव्य के संबंध में उचित ही लिखा है-"इस काव्य के कारण साहित्य-क्षेत्र में एक नई परम्परा प्रारंभ होती है और आँखें पौधियाँ जाती हैं। इस प्रकाश की दैदीप्यता के कारण कुछ लोगों की आँखें बंद हो जाती है तो कुछ लोग आनंद-विभोर हो उठते हैं और उनकी आँखें आंसुओं से भर जाती हैं।"

स्वयं सुब्बाराव ने अपनी इस कृति के संबंध में कहा है-"कवि के लिए पार्थिव प्रेम का विशेष महत्व नहीं है। वास्तविक प्रेम के कारण मन-तप और सहिष्णुता को और अवसर होता है और मनुष्य का अहम पूर्णतः निगलित हो जाता है। इस प्रकार का प्रेम स्वतः अपने-आप में दिव्यता रखता है और इस प्रकार के प्रेम के लिए घर से बाहर जाने की आवश्यकता भी नहीं है।"

प्रकृति के सुंदर दृश्यों में रमण करनेवाली कवि की वाणी ने गाया -

'श्रीलु पोगिन जीव गड्डु

पालु गारिन भाग्य सीमयु।'

"पृथ्वी समस्त संपत्तियों से भरी हुई है और घी-दूध की नदियों से सिक्त है।"

कवि की यह कविता इस बात की प्रतीक है कि वह राष्ट्र की वर्तमान दशा से विक्षुब्ध है। गाँधीजी की अहिंसा और शांतिप्रिय नीति पर उसे विश्वास नहीं। यह तो सशस्त्र कांति चाहता है। इसलिए वह कहता है -

'रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दो उनको स्वर्गधीर

पर फिरा हमें गाँडीव गदा, लोटा दे अर्जुन भीमवीर।'

सुब्बाराव जी ने समूचे भारत को विशेष रूप से आंध्र को केवल नदी, पहाड़, घाटियों और जल-मृत्तिका का देश नहीं माना, उसके लिए वह एक सजीव बिराट व्यक्तित्व रखता है, जिसके साथ कवि का तादात्म्य स्थापित हो चुका है। इनकी देशभक्ति की कविताएं 'आंध्रावली' नामक संकलन में संकलित हैं।

दोनों कवियों में राष्ट्रीय भावना श्रनाथ में। दिनकर की हुँकार में सचमुच देश पर मर मिटने की आग और तडप लिये कांति की हुँकार बन गई है। इसलिए कवि अपनी बाँसुरी के छिद्रों से रसीले स्वर नहीं, आग बरसाना चाहता है।

हुँकार की कविताएँ ही दिनकर के कवि व्यक्तित्व का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। दिनकर का प्रखर ताप जैसे इनमें मूर्तिमान हो उठता है। कवि हृदय के भारों की ज्वाला इनमें आग बनकर फूटी है। इन कविताओं में कवि ने भारत के भव्य अतीत के गौरव का स्मरण किया है। वर्तमान दयनीय दशा को मिटाने के लिए क्रांतिकारी विद्रोह मना किया है। उनकी यह क्रांति जन-जीवन की क्रांति है, किसानों और मजदूरों की क्रांति है। क्रांति का यह मूर्तिमान रुप कवि के 'वनफूलों की ओर' कविता में स्पष्ट है -

'सूखी रोटी खायेगा जब कृषक खेत में घर कर हल

तब दूंगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गंगाजल

उसके तन का दिव्य स्वेद-कण बनकर गिरती जाऊंगी

और खेत में उन्हीं कणों से मैं मोती उपजाऊँगी।'

कौन ऐसा नवयुवक होगा जो अपनी ऐसी रत्नगर्भा भूमि को, मोतियों से भरे देश को विदेशियों के हस्तगत होने से न पाये। ऐसी पुण्यभूमि का यशोगान करने में अपमान की भावना क्यों और अविश्वास क्यों ?

जहाँ सुब्बाराव की कविता में स्वतंत्रता आंदोलन के समय की वाणी मुखरित होती है, वहाँ उसमें हर पीढ़ी के लोगों को भारतमाता के दिव्यदर्शन भी होते हैं। श्री. सुब्बाराव भारतमाता के विभिन्न रूपों के चित्र खींचते थकते नहीं। देश के भाई-बहनों को वे आदेश देते हैं-

'वेद शाखलु चेरिगे निच्चट

आदि काव्य मलरे निच्चट

बादरायण चरम पुरुषुला

पादु सुम्मिदि चेल्लेला !'

(वेद-शाखाओं की वृद्धि हुई है यहाँ, आदि काव्य यहीं सम्पन्न हुआ है, भूमि यह तो बादरायण जैसे परम पुरुषों का दिव्य-धाम है।)

जबतक भारत पर सूर्य-चंद्र का तेजोमय प्रकाश पड़ता रहेगा, तबतक भारतवासियों को यह अमर संदेश, रावजी की यह अमृत-वाणी शिरोधार्य रहेगी -

'देश गर्वमु दीप्ति चेंदग

देश चरितमु तेजरिल्लग

देशमरसिन धीर पुरुषुल

तेलसि पाडर तम्मुडा।'

(भैया! देश के धुरंधर नेताओं का यशोगान इस प्रकार से कर, जिससे देश का वैभव बढ़े और देश का नाम उज्जवल हो।)

दोनों कवियों ने प्रेम के उदात्त स्वरूप का चित्रण किया है। 'तुण करुणम्' में सुब्बाराव ने प्रेम के संबंध में विस्तार से किया है -

'कलसिन यंत मात्रमुन गादुसुमी चेलिकाड

मंतरंबुल नतुकंग जालिन यपूर्वपुलंकेये स्नेहमौ।'

(नर-नारी अथवा दो व्यक्तियों के मिलने-मात्र से स्नेह उत्पन्न नर होता, अपितु प्रेम यह पदार्थ है, जो दो हृदयों को एकाकार कर देता है।)

दिनकर के 'ऊर्वशी' काव्य में अनेक मनोरम चित्र देखने में आते हैं सुब्बाराव के कथात्मक प्रबंध काव्यों में 'स्नेहलता देवी' और 'कष्टकमला' अग्रगृष्ण है। दोनों काव्य दुःखान्त है। दिनकर के कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी और ऊर्वशी तो अतुल वैभव के कीर्तिस्तंभ ही है। इन काव्यों में आधुनिक युग की अनेक समस्याओं को स्थान मिला है। कुरुक्षेत्र दिनकर की प्रौढ़तम कृति है। एक प्रकार से यह काव्य समस्या-मूलक प्रबंध काव्य है। युद्ध और अहिंसा के पक्ष-विपक्ष पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। रश्मिरथी वीररसपूर्ण प्रबंध है, जिसमें महारथी कर्ण के जीवन-चरित्र को कवि ने अपने काव्य की भाव-भूमि बनाया है। काव्य में कर्ण, समाज के दीन-दलित वर्ग का प्रतिनिधि बनकर आया है। वह ऐसा व्यक्ति है जो शौर्य, गुण, प्रतिभा में अद्वितीय होते हुए भी सामाजिक जीवन में उचित सम्मान नहीं पाता, क्योंकि वह सूत पुत्र है। समाज के निम्न वर्ग से उसका संबंध है। इसलिए जाति का छोटा होने से उसके सभी गुण छोटे हो जाते हैं -

'हाय! जाति छोटी है तो फिर सभी हमारे गुण छोटे

जाति बड़ी तो बड़े बनें वे, रहें लाख चाहे खोटे।'

सचमुच जाति-प्रथा के अभिशाप पर यह रश्मिरथी रचना बड़ा तीखा व्यंग्य लेकर चलती है। ऊर्वशी दिनकर की अनुपम कृति है, कवि ने नर-नारी की प्रेम-समस्या पर अत्यंत गंभीरता एवं सूक्ष्मता के साथ विचार किया है। नाट्य शैली पर लिखा हुआ यह प्रबंध-काव्य अपनी अभिनव कथावस्तु, अनुपम घटना- वैचित्र्य, नूतन कला-सृष्टि एवं नवीन अभिव्यंजना-पद्धति के कारण आधुनिक- प्रबंध-काव्य की श्रृंखला में उच्च स्थान पाने का अधिकारी है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' काव्य भारत पर चीन के आक्रमण के अवसर पर लिखा गया है।

इस विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कवियों ने व्यापक राष्ट्रीयता की ओर कदम बढ़ाया। दोनों कवि अपनी जातीय समस्याओं में परिचित और उनके प्रति उदार है। राष्ट्रीयता का बिगुल बजाने में दोनों दक्ष रहे हैं। दोनों ने देश के प्रति देव-भक्ति का नारा समान रूप से बुलंद किया है। दोनों ने अतीत और प्राचीन के गौरव को महत्त्वपूर्ण समझा है, और विस्तार से गुण-गान किया है। सच तो यह है कि व्यापकता और प्रभाव की दृष्टि से सुब्बाराव से दिनकर बहुत आगे प्रतीत होते हैं। क्योंकि उनका व्यक्तित्व विराट है, राष्ट्रव्यापी है, और समग्र भारत है।

कविवर दिनकर ओज एवं तेज के कवि हैं। वीररस के अंतर्गत-युद्धवीर, दयावीर, कर्मवीर, क्षमावीर आदि पर विस्तार से लिखा है। अन्य रसों के साथ देश-भक्ति रस का परिचय मिलता है। कवि ने कुरुक्षेत्र में भारत-भूमि की सेवा में अपने जीवन को अर्पित करने की भावना का निरूपण करते हुए देश-भक्ति संबंधी भावना का पूर्ण परिपाक दिखाते हुए देश- भक्ति रस की सजीव अभिव्यंजना की है। महात्मा भीष्म संसार को छोड़कर भागनेवाले युधिष्ठिर से कह रहे हैं -

'क्षत विक्षत है भारत भूमि का अंग-अंग बाणों से

त्राहि-त्राहि का नाद निकलता है असज्य प्राणों से

कोलाहल है, महात्रास है, विषदि आजा है भारी

मृत्यु विवर से निकल चतुर्दिक तड़प रहे नर नारी

इन्हें छोड़ वन में जाकर तुम कौन शांति पाओगे ?

चेतन की सेवा तज जड़ को कैसे अपनाओगे

पोंछों अश्रृ उठो, द्रुत जाओ बन में नहीं भुवन में,

हाथों बड़े असत्य नरों की आशा बन जीवन में।'

नाद सौंदर्य, चित्रोंमता, लाक्षणिवा, प्रतीकात्मकता ध्वन्यात्मकता के द्वारा दिनकर का अभिव्यक्ति-पक्ष बहुत ही सशक्त बन पड़ा है।

दोनों की रचनाओं में अलंकार, रस, छंद और भाषा के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। दिनकर और सुब्बाराव दोनों ही ऐसे कवि हैं, जिनमें महाकवि से भी उदात्त संभावनाएं मिलती है। सुब्बाराव की भाषा जीती-जागती व सुमधुर है। उसमें क्लिष्टता नाम सात्र के लिए नहीं।

उन्होंने व्यावहारिक भाषा में कविता के अनुकूल सुकुमारता व मधुरिमा के द्वारा जान फूंकी है। आपके सभी काव्य मुक्तक हैं तथा प्रबलित व देशी छदों से अनुप्राणित है। पृथक-पृथक पढ़ने पर भी उनकी हर एक कविता अपने में पूर्ण सिद्ध होती है उनमें अर्थ का क्रम नहीं टूटता। राष्ट्रीय भावना जनों के उज्ज्वल चित्र खींचने में वे सिद्धहस्त हैं।

प्रेम-प्रधान, भाव-प्रधान, आध्यात्मिक व संदेशात्मक आदि कई प्रकार के काव्य-रूप उनकी कविता में हम पा सकते हैं। उनकी कुछ कविताओं पर उमर खय्याम का प्रभाव लक्षित होता है। इनके अनूदित काव्यों में कालिदास का मेघ-संदेश, रवीन्द्र कृत ऊर्वशी और भवभूति का उत्तर रामचरित्र उल्लेखनीय है।

वस्तुतः भावना के विकास की दृष्टि से दोनों एक ही जैसे प्रतीक होते हैं। दोनों कवियों ने महत्व संदेश दिया है- 'जीवन कर्ममय है, संसार कर्म-भूमि है' कर्म करते हुए आगे ब की प्रेरणा दोनों ने दी है।

9.4. सारांश

काव्य के स्वरूप की दृष्टि से दोनों कवियों ने मुक्तक की ओर विरंदृष्टि रखी है पर दिनकर ने प्रबंध-हाथों की रचा। विशेष रूप से की है। भाषा की दृष्टि से दोनों का क्षेत्र अधिक व्यापार और विस्तृत है। सुब्बाराव ने प्रसार और माधुर्य गुणों को अपनाया है तो दिनकर जी ने ओज गुण को।

रस की दृष्टि से वीर, श्रृंगार, करुण रसों का परिचय दोनों के काव्य में मिलता है। सरल एवं स्पष्टता उनकी भाषा का प्राण है और उनकी भाषा में भावों का अनुगम करने की असाधारण क्षमता विद्यमान है। दिनकर में उग्र भावों की प्रधानता तो सुब्बाराव में कोमल भावों का प्राधान्य है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह कह सक हैं कि दिनकर में पौरुष है, पुरुष सुषमा है और सुब्बाराव में कोमल मधुरिमा दिनकर तथा सुब्बाराव दोनों की कला की मूल प्रेरणा युग-धर्म में है। पतितों उद्धार की कल्याणमयी वाणी उसमें है, और इस प्रेरणा का मूल उद्गम भावना में है और इसकी अभिव्यक्ति में अपना भी कम सहायक नहीं। दोनों एक ओ झोंपड़ी का रुदन सुनते हैं और संध्या-सुन्दरों के पायल की रुन-झून भी। उनके लिए कला न केवल मिट्टी है और न केवल वायु।

दिनकर और सुब्बाराव दोनों कवियों में भाषागत तथा प्रांतगत भेद के होते हुए भी दोनों के भावों एवं विचारों में पर्याप्त समानता परिलक्षित हैं। यहां कारण है कि भावनात्मक एकता एवं सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भारत को अखंड माना जाता है। कविवर दिनकर एवं सुब्बाराव - हिन्दी और तेलुगु के जन-मान्य वे मूर्धन्य स्थान पर स्थित होकर आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

9.5. बोध प्रश्न

1. राष्ट्रकवि दिनकर और रायप्रोलु सुब्बाराव के कविताओं का विश्लेषण कीजिए।

2. हिन्दी के राष्ट्र कवि दिनकर पर टिप्पणी लिखिए।

3. तेलुगु के रायप्रोलु सुब्बाराव पर टिप्पणी लिखिए।

9.6. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन -शिव सत्यनारायण।

2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

4. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्य-धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

5. हिन्दी और तेलुगु की प्रगतिवादी काव्य-धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- रामानायुडु, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

10. मीराबाई और अन्नमाचार्य-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु

10.0.उद्देश्य

भावना, साधना और प्रवृत्ति की दृष्टि से हिन्दी की मीराबाई तेलुगु साहित्य के अन्नमाचार्य के बहुत ही निकट हैं। दोनों में कई बातों में समानता है और दोनों का मार्ग भक्तिमार्ग ही है। भक्ति की दृष्टि से दोनों का सम्बन्ध सगुणमार्ग है, सगुण की उपासना से है। दोनों के इष्टदेव श्रीकृष्ण या श्रीनिवास है। दोनों ने माधुर्य-भाव की भक्ति को अपनाया है। अतः उन दोनों की भक्ति-भावना में दुराव-छिपाव या अलगाव-विलगाव नहीं, यहाँ तो आत्मीयता है एवं अनन्यता ही है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जो स्थान है, ठीक वही स्थान आधुनिक तेलुगु साहित्य के विकास में श्री वीरेशलिंगम पंतुलु का है। दोनों महापुरुषों में कई बातों में पर्याप्त समानता है। दोनों अपने समय के बहुत बड़े सुधारक थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु दोनों ने समाज की सभी कुरीतियों को साहित्य द्वारा दूर करने का बीड़ा उठाया। समाज-सुधार के महान् कार्यक्रम के लिए दोनों ने साहित्य को माध्यम बना लिया। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- मीराबाई ने इष्टदेव श्री कृष्ण के प्रति उनका भक्ति भावना किस प्रकार थी यह जानेंगे और
- अन्नमाचार्य ने श्रीनिवास के प्रति उनका भक्ति भावना किस प्रकार थी इन बातों को उनके द्वार गये हुए गीतों के माध्यम से विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।
- समाज सुधारकों के बारे में जानेंगे,
- हिन्दी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बारे में जानेंगे और
- तेलुगु के वीरेशलिंगम पंतुलु के बारे में,
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु दोनों ने सामाजिक कुरीतियों का निवारण किस प्रकार किया गया,
- तेलुगु के समाज सुधारक वीरेशलिंगम पंतुलु के बारे में विस्तृत रूप में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

10.1. प्रस्तावना

10.2. मीराबाई

10.3. अन्नमाचार्य

10.4. मीराबाई और अन्नमाचार्य

10.5. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

10.6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु का परिचय

10.7.सारांश

10.8. बोध प्रश्न

10.9. सहायक ग्रंथ

10.1. प्रस्तावना

इस इकाई में हम मीरा और अन्नमाचार्य दोनों ने अपने-अपने भगवान के प्रति वे अपनी भक्ति भावना में किस प्रकार मुग्ध या डूबकर आनंद पाये और वे भगवान से किस प्रकार प्रेमानुभूति में डूबकर आनंद पाये इसकी जानकारी उनकी गीतों के माध्यम से परिपूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु दोनों ने बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, स्त्री-शिक्षा आदि आन्दोलनों द्वारा तत्कालीन जनता का महोपकार किया। दोनों ने साहित्यिक भाषा को छोड़कर जन-भाषा को पना सर सर्वसाधारण तक अपने सुधारवादी विचारों को पहुँचाने का सफल प्रयास किया। दोनों पत्र-पत्रिकाएं पर सुधारवादी आन्दोलन को बल प्रदान किया और शताब्दियों से समाज द्वारा पीड़ित, एवं प्रताड़ित नारी जाति का उद्धार किया। उन्होंने महिलाओं को साक्षर बनाने, उनमें समाज की अंध-रूढ़ियों का सम्मिलित रूप से विरोध करने का बल एवं आत्म- विश्वास उत्पन्न किया। यही नहीं, भाषा, साहित्य, शैली आदि के क्षेत्र में भी भारतेन्दु और वीरेशलिंगम पंतुलु -दोनों ने जो कार्य किया है, वह अद्भुत एवं अनुपम है।

10.2. मीराबाई

मीराबाई और अन्नमाचार्य दोनों में थोड़ा बहुत तो अन्तर है ही, लेकिन दोनों के जीवन-विधान में पर्याप्त साम्य है। मीरा का जन्म कुड़की गाँव में हुआ था ! वह रतनसिंह की इकलौती पुत्री थी। मीरा बचपन से ही कृष्ण की मूर्ति को अपने पास रखा करती थी और कृष्ण को ही अपना पति समझती थी। मीरा का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध राणासांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ था लेकिन दुर्भाग्य से कुछ समय के पश्चात ही मीरा के पति का स्वर्गवास हो गया। वैधव्य ने मीरा की जीवन-धारा ही पलट दी। सब कुछ भुलाकर मीरा गिरधरलाल के प्रेमरस में डूब गयी। साधु-सन्तों के मध्य जाकर बैठने लगी तथा प्रेमावेश में वे कृष्णमूति के समक्ष पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचने लगीं। राजपरिवार को ये आचरण खटकने लगे। फलतः मीरा के मार्ग में विविध रूपों में कष्ट दिए जाने लगे और मीरा के लिए विष का प्याला भेजा गया, उसके साथ-साथ साँप की पिटारी भेजी गयी पर श्रीकृष्ण की कृपा से मीरा का कुछ भी नहीं बिगड़ा :

‘पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे

लोग कहैं मीरा हा गई बावरी, सास कहैं कुल नासीरे

जहर का प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरा हाँसी रे

मैं तो अपने नारायण की आप ही हो गई दासी रे

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वेगी मिलो अविनाशी रे।’

जब मीरा को घरवालों एवं बन्धुओं ने बहुत तंग किया तो उसने गोस्वामी तुलसीदास जी के पास एक पत्र लिख भेजा। तुलसीदास ने समाधान में इस प्रकार लिखते हैं कि -

'जाके प्रिय न राम वैदेही

तजिये ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही।'

बस, मीरा ने मेवाड़ छोड़ दिया और वृंदावन होती हुई द्वारिका धाम गई। कहा जाता है कि डाकौर में जो रणछोड़ रामजी का मन्दिर है, उसी की मूर्ति में मीरा सदा के लिये समा गई।

10.3. अन्नमाचार्य

अन्नमाचार्य का जन्म ताल्लपाका नामक गाँव में हुआ। अन्नमाचार्य के माता-पिता विष्णुभक्त नारायण सूरि और अक्कमांबा। अन्नमाचार्य जी के मन में बचपन से ही भगवान वेंकटेश्वर के प्रति असीम भक्ति भावना रही। इसी से उनके हृदय से जो उद्गार निकला, वही दिव्य काव्य बना। जो गीत निकला, वही दिव्य संगीत बना। श्रीनिवास के परम अनुग्रह से समस्त विद्याएँ अपने आप जिह्वाग्र पर आ थिरकीं, उनकी कविता-रीति- गीत-पद्धति की सभी लोगों ने मुक्तकंठ से स्तुति की। भगवान वेंकटेश्वर पर विविध प्रकार के संकीर्तनों (भक्ति में डूबकर गाने वाले गीतों) की रचना की। बाल्यवस्था में उन्हें बन्धु-बांधवों ने, माता- पिता ने बहुत तंग किया, जिसका उल्लेख इस संकीर्तन में दिखता है --

"चुट्टम्बुला तनकु सुतुलु, कांतलु चेलुलु

वट्टियासल वेट्टुवारे काक

नेट्टुकोनि वीरू कडु निजमनुचु हरिनात्म

बेट्टनेरक वृथा पिरिवीकुलैति .....

तगु बन्धुला तनकु तल्लुलुनु तंड्रुलुनु

वगलबेट्टुचु तिरुगवारे गानि

मिगुल वीरल पोंदु मेलनुचु हरिनात्म

तगिलिंचलेक चिंतापरुडनैति..... अय्यो ..."

उपरोक्त संकीर्तन का अर्थ इस प्रकार है कि -हाय ! बहुत समय बीत गया। मैं मोह में पड़ गया। बन्धु, पुत्र, स्त्री आदि सभी यूं ही आशा में फंसाते हैं। इन्हीं को सच मानकर हरि-स्मरण नहीं किया था, माता-पिता क्या बन्धु है ? ये सभी यूं ही घूमनेवाले हैं। इन्हीं का संग सत्य समझकर हरि को मन में न रखकर दुःख में पड़ गया।

एक दिन खेत में काम कर ही रहे थे कि उनके मन में घर के प्रति बड़ी विरक्ति हुई। बस, वहीं से बिना माता-पिता से कहे ही श्रीवेंकटेश्वरे के दर्शनार्थ चल पड़े। यात्रियों के साथ मिलकर तिरुपति पहुँचे। कई दिनों तक चलते रहने

के कारण वे बहुत थक गये। भूख से पीड़ित हुये। कहा जाता है कि भगवान ने उनकी भूख और थकावट मिटा दी। वे बड़ी सरलता से सात पर्वतों पर चढ़ गये।

भगवान पर अनेक भजन बनाकर गाये। कहते हैं कि भगवान का साक्षात्कार भी उन्हें हुआ भगवान की जो अर्चना प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक हुआ करती है, उसके विविध रूपों पर संकीर्तन रचे। तत्कालीन सम्राट नरसिंहराय ने एक दिन दरबार में अन्नमाचार्य को बुलाकर अपने बारे में कीर्तन रचने का आदेश दिया, तो अन्नमाचार्य ने ललित राग में उनके आदेश का तिरस्कार इस प्रकार किया कि-

'नरहरि कीर्तन नानिन जिह्वा

ओरूल नुतिंपग नोपदु जिह्वा

मुरहरु पदमुल म्रोक्किन सिरमु

परूल वमदनकु परगदु सिरमु।'

उपरोक्त संकीर्तन का अर्थ इस प्रकार है कि -जिस जिह्वा ने भगवान का गुणगान किया, वह अन्यों का गुण नहीं गाता। भगवान के पाद-पद्मों में प्रणत मस्तक अन्यों का वन्दन नहीं करता। इस पर राजा कुपित होकर उन्हें श्रृंखलाबद्ध कराया, पर एक गीत गाते ही भगवान की महिमा से वे मुक्त हुये। अन्त में राजा पश्चात्ताप कर उन्हीं की शरण में आये। अन्नमाचार्य के पोते ने लिखा कि-इनके द्वारा 32,000 कीर्तन, कीर्तनरूप में रामायण, 12 शतक, श्रृंगार-मंजरी ग्रन्थ रचे गये। इन्होंने संस्कृत में 'संकीर्तन लक्षण' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। कहते हैं कि भजन गाते-गाते ही ये श्रीवेंकटेश्वर भगवान में समा गये।

10.4. मीराबाई और अन्नमाचार्य

मीरा और अन्नमाचार्य-दोनों पहले भक्त और बाद को कवि हैं। मीरा की मधुर-भक्ति में चाहे संयोग-पक्ष को लिया जाय या चाहे वियोग पक्ष को भाव-तन्मयता एक-सी मिलती है। उन्होंने स्वकीया के रूप में अपने प्रियतम गिरिधर नागर के वियोग में जैसी कसक और तड़पन की सैकड़ा सजीव तस्वीरें उतारी हैं, वैसी अन्यत्र कठिनता से ही मिल सकेंगी। उनके स्त्री सहज हृदय की भावनाओं की स्वाभाविक उन्मतावस्था का परिचय दो-एक पदों में मिल जाता है। उदाहरण के लिए -

'सोवत ही पलकों में मैं तो, पलक लागी पल में पिऊ आये

मैं जु उठी प्रभु आदर देणा कूँ, जागपरी पिव ढूँढ न पाये

और सखी पिव सूत गमाये, मैं जु सखी पिव जागी गमाये

आज की बात कहा कहें सजनी, सुपना में हरि लेत बुलाये

वस्तु एक जब प्रेम की पकरी, अजिमये सखि मन से भाये

वौ म्हारो सुने अरु गनि हैं, बाजे अधिक बजाये

मीरा कहै सत्तकर मानो, भक्ति मुक्ति फल पाये।'

अन्नमाचार्य के कीर्तनों में इस प्रकार की भक्ति-भावना के अनेक पद मिलते हैं। उनमें भी वैसी ही तन्मयता, तड़प, कसक, छटपटाहट दीखती है। एक उदाहरण के लिए-

'कोलुतुरू मिनु वैष्णवुलु कूरिमितो विष्णुंडनि
पलुकुदुरु मिमु वेदांतुलु परब्रह्ममनुचु
तलतुरु मिमु शैवुलु तगिन भक्तुलुनु शिवुडनुचु
अलरि पोगडुदुरू कापालिकुलु आदि भैरवुडनुचु
सरिनेन्नुदुरू शाक्तेयुलु शक्तिरूपु नीवनुचु
दरिसेनमुल मिमु नाना विथुलनु तलपुल कोलदुल भरिंतुरू
सिरूल मिम्मु ने यल्पबुद्धि तलचिनवारिकि बल्पंबगुदुवु
गरिमेल मिम्मु ने वनमनि तलचिन घनबुद्धुलकु घनुडवु
नीवलन कोरत लेदु, मरि नीरु कोलदि तामरवु
आवलन भागीरथि बावुल आ जलमे वूरिनयट्लु
श्रीवेंकटपति नीवैते चेकोनि वुन्न दैवमनि
ईवलने नीशरणनि येदनिदिये परतत्वमु नाकु।'

उपरोक्त संकीर्तन का अर्थ इस प्रकार है कि -हे श्रीनिवास ! वैष्णव लोग विष्णु के रूप में, दार्शनिक परब्रह्म के रूप में, शैव शिव के रूप में, कापालिक भैरव के रूप में, शाक्तेय शक्ति के रूप में समझकर आपका दर्शन करते हुए आपका नाम-स्मरण करते हैं। धन के मद में आपके महत्व को न पहचाननेवालों के लिए महत्वहीन हो, आपको बड़ा, महान समझने वालों के लिए महान हो, तुम्हारी ओर से कोई कमी नहीं है। जैसा पानी है, वैसा कमल है। तुम वेंकटपति हो, दैव हो (परमात्मा या भगवान)। तुम्हारी शरण में आया हूँ। यही परतत्व है मेरे लिए। यह पद गाकर उन्होंने श्रीवेंकटेश्वर स्वामी के दर्शन पाये।

मीरा और अन्नमाचार्य-दोनों ने भगवान को प्रियतम के रूप में ग्रहण करके माधुर्य-भाव की रस-धारा बहाने में अपनी वाणी के अपार वैभव का परिचय दिया है। यद्यपि मधुर-भाव से ही उनका हृदय ओतप्रोत है, तो भी अन्य भक्त कवियों का अनुकरण करते हुये उन दोनों ने अनेक विनय के पद भी रचे हैं। कृष्ण के चरण रज की महिमा का वर्णन करते हुए मीरा कहती हैं -

'चरण रज महिमा मैं जानी
ये ही चरण से गंगा प्रकटी भागीरथ कुलतारी

ये ही चरण से विप्र सुदामा हरिकंचन धाम दीनी

ये ही चरण. से अहिल्या उधारी गौतम की पटरानी

मीरा के प्रभु गिरधर नागर ये ही चरण कमल में लपटाना।'

अन्नमाचार्य ने भी 'ब्रह्म कडिगिन पादमु' नामक कीर्तन में भगवान श्रीनिवास के पाद-पद्मों की विलक्षण महिमा गायी है। एक कीर्तन में वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं-मुझे अपना दास बना लो, मेरी दुष्टबुद्धि को दूर करो, अपना करुणा रूपी कवच मेरे प्राणों पर पहना दो, अपने चरणों की सेवा का कार्य मुझे सौंप दो और अभय रूपी फूल से मेरे सिर को अलंकृत करो। दृढ़भक्ति की याचना करते हुये मैं बारम्बार तुम्हारे चरणों पर पड़ा रहूं। आँखों की कोर से निहार कर मुझे छोड़ न दो, मेरे चित्त को निर्मल करके मुझे इस, योग्य बना दो कि सदा मैं तुम्हारा ध्यान कर सकूँ। 'शरणागत रक्षक' तो तुम्हारी एक उपाधि है, मेरे सभी संकट दूर करो।

प्रेम-योगिनी मीरा अपने मन को गिरधर नागर के चरणों का आश्रय पाने का प्रबोध देती हुई शरणागत की महत्ता समझती है -

'मन रे परसि हरि के चरण

सुभग सीतल कँवल, कोमल, त्रिविध ज्वालाहरण

जिण चरण ध्रुव अटल कीहे, सखी अपनी शरण

जिण चरण ब्रह्माण्ड प्रभु परसि लीणो तरी गौतम धरण

जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोपी लीला करण

जिण चरण गोवरधन धरयो, इंद्र को गर्वहरण

दासी मीरा लाल गिरधर, आगम तारण तरण।'

मीरा के प्रभु भक्तवत्सल हैं और वे अपने भक्तों की रक्षा के लिए समय- समय पर अवतार लेकर प्रकट होते हैं। शरणागति तथा भगवान की भक्त वत्सलता के सम्बन्ध में मीरा की भी वही धारणा है, जो तेलुगु के अन्नमाचार्य की है।

मीरा और अन्नमाचार्य - दोनों ने राम-नाम का गुणगान करने में वैसी ही श्रद्धा प्रकट को है, जैसी उन्होंने कृष्ण व श्रीनिवास के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में प्रकट की थी।

मीरा कहती है -

'रसयो राम रिझाऊँ, ए भाइ, राम नाम मेरे मन बसियो

विरहै पीड़ की बात सखी री, कासूँ कहूँ समझाई

तन करि लाल रमन करि मिरदंग, खुणतहि मुरति जगाऊँ एमाई।

सीत सिंगार साज तन ऊपर, प्रभु के सनमुख जाऊँ एमाई

लोक लाज कुल संक निवारी, राम जी मिल्या सुख पाऊं एमाई

मीरा के प्रभु तुमरे मिलन कूँ चरण कमल बलि जाऊँ एमाई।'

राम-नाम रूपी रस पीने का उपदेश देती हुई मीरा अपने मन से कहती है -

'राम-नाम रस पीजै, मनु आ, रामनाम रस पीजै

तज कुसंग सतसंग बैठ निज हरि चरचा सुन लीजै

काम-क्रोध मद लोभ कूँ चित्त से बहायदी जै

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर ताही के रंग मीजै।'

अन्नमाचार्य अपने एक गीत में नाम-रूपी बीज इस जगत में कब बोया, कब वह अंकुरित हुआ, कब उससे फूल और फल निकले, किसने उस फल को चखकर आनंद पाया, इसका सुन्दर वर्णन करते हैं -

"हे मन! सदा कह नारायण, हरि नारायण कहो ! इस जगत में नारायण रूपी बीज को प्रथमतः नारद ने बोया, बालक ध्रुव द्वारा वह पल्लवित हुआ, राजा रुक्मांगद द्वारा विकसित हुआ..... जब समस्त फल देनेवाले इस नाम का सहारा है, तब जप, तप, होम, नेम आदि की क्या आवश्यकता है ? अतएव हे मन, तुम निरन्तर श्रीवेंकटेश का ध्यान करो।"

नाम के प्रति लोगों की उदासीनता देखकर अन्नमाचार्य कभी-कभी खीझकर बोल, उठते हैं 'नारायण का नाम क्यों नहीं लेते हो? क्या तुम्हारी जीभ मैं काँटे गाड़ दिये गये हैं? काशी जाने का क्यों कष्ट उठाते हो? देश-देश की यात्रा क्यों करते हो ? मोक्ष-पथ का साधन क्या हरि नाम-स्मरण नहीं? रोज उपवास कर कष्ट क्यों करते हो? जाड़े में गगा में क्यों गोते लगाते हो ? हाथ पकड़े जप-तप क्यों करते हो ? क्या मुक्ति का साधन हरिनाम नहीं ? पत्नी-पुत्रों को छोड़कर सन्यास लेने से क्या लाभ ? व्रत-नियम से क्या लाभ ? क्या इस जगत में श्रीनिवास का स्मरण करना पर्याप्त नहीं है ? उनके विचार में राम-नाम निर्धन का ऐसा धन है, जिसे चोर उठा ले नहीं जा सकता, जो पानी में नहीं डूबता, अग्नि में नहीं जलता, जो सब प्रकार का सुख देनेवाला है।

मीरा के विचार में राम-नाम ऐसा रत्न-धन है, जिसका मोल-भाव नहीं किया जा सकता। गुरु की कृपा से ही वह मिल सकता है। वह जन्म-जन्म की पूँजी है, जो खर्च करने पर घटता नहीं, जिसे कोई चुरा नहीं सकता, जिसका दिन-दिन वृद्धि ही होती है। भवसागर को पार करने के लिए नाम रूपी नाव आवश्यक है। साधना की दृष्टि से मीरा भगवान कृष्ण की अनन्य भक्तिन और उपासिका थी। दोनों की भक्ति-भावना उच्चकोटि की थी। दोनों की भीड़ की तनिक भी चिन्ता न थी। इस प्रकार दोनों की भक्ति में उच्चकोटि की तन्मयता थी, जो सभी वर्ग के प्राणियों को अपने वशीभूत किये रहती है। मीरा संसार की परवाह नहीं करती थी। इसके लिये तो वह स्वयं कहा करती थीं -

'मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई

जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई

भाई छोड्या, बन्धु छोड्या सगा सोई

साधु संग बैठ-बैठ लोक लाज खोई।'

वह अपने को कृष्ण कीं अनन्य गोपिका समझती थी और प्रत्येक प्रकार से उनकी परिचर्या के लिये तत्पर रहा करती थी। मीरा में हमें दाम्पत्य प्रेम के मधुर-भाव की व्यजना मिलती है। उसमें विरह जनित वेदना की प्रधानता है। पदों में हमें मीरा का कृष्ण के प्रति, एकनिष्ठ प्रेम, आत्म-समर्पण की भावना, विरह की कातर व्यंजना, करुणा का हृदयद्रावक पुट, मिलन का उल्लास और प्रकृति का हृदयग्राही चित्र भी मिलता है।

'मीरा व्याकुल विरहिणी रे, पिया दरशन दीवो भाई

मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे

मिल बिधुरन मत कीजै।'

अन्नमाचार्य के कीर्तनों में ठीक इसी प्रकार की भावना मिलती है। वे परमात्मा से दूर होना नहीं चाहते। सदा उनका सानिध्य में रहकर उन्हीं की आराधना में तत्पर रहना चाहते थे। एक समय विजयनगर साम्राज्य पर शत्रु राजाओं का आक्रमण हुआ था। तब किसी ने इनकी देवता-मूर्तियों को चुरा लिया। दैवी वियोग को न सह सकने के कारण इन्होंने हनुमान, गरुड़, प्रह्लाद और आदिशेष आदि से देवता विग्रहों को ला देने की प्रार्थना की। यथा -

'इंदिरा रमणु तेच्चि इय्यरो माकिटुवले

पोंदि ईतनि पूर्जिंच प्रोद्दायनिपुडु।'

मीरा और अन्नमाचार्य -दोनों के सभी पदों का सम्बन्ध उनके आराध्य देव से हैं, जो अखिल सृष्टि का कर्ता, धर्ता और धर्ता हैं। इसी से उनके पदों में यत्रतत्र रहस्यमयी भावना भी आ जाती है। वस्तुतः मीरा एक ऐसी भक्तिन कवयित्री है, जिसे उस परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार हो गया था --

'तुम देखे बिन कल न परत है, तलफ-तलफ जिय जासी

तोरे खातिर जोगिन हूँगी, करवट लूँगी काशी।'

ऐसी उक्तियाँ मीरा के अन्तस्तल से निकली हैं। ठीक इसी भाँति अन्नमाचार्य के पदों में रहस्यात्मक भाव दीखते हैं। वे इतनी भावपूर्ण और आकर्षक है कि अन्य किसी की उक्तियाँ उनकी समता नहीं कर सकतीं। मीरा में यद्यपि भक्ति-भाव की ऐसी सरस अनुभूति है, उनका ईश्वरीय प्रेम सांसारिक आधार लिए हुये हैं, फिर भी यह प्रेम उज्ज्वल है, प्रांजल है, उसमें सांसारिकता लेशमात्र भी नहीं है। अन्नमाचार्य का प्रेम भी परमोज्ज्वल एवं विशुद्ध रहा है। उसमें तो लौलिक गंध ही नहीं।

रस-योजना की दृष्टि से मीरा और अन्नमाचार्य-दोनों की रचनाएं श्रृंगार, भक्ति, मधुर एवं शांत रसों से ओतप्रोत हैं। उनका श्रृंगार भावना का श्रृंगार है, जिसमें संयोग और वियोग दोनों का सन्निवेश है। किन्तु उसमें वासना की गंध नहीं है। वह परम पवित्र है। उनकी कविता का विरह सांसारिक को अपेक्षा आध्यात्मिक है।

'रैन अन्धेरी विरह घेरी, तारा गिणत निसि जात

लैक रारी कण्ठ चीरूँ, करूँगी अपघात।'

तथा -

'मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सामलिया होय।'

अन्नमाचार्य के पदों में भी श्रृंगार के दोनों पक्षों का संयत रूप में चित्रण हुआ। शांत रस की मन्दाकिनी धारा तो सर्वत्र है ही। वात्सल्य रस का एक उदाहरण हमें इस प्रकार द्रष्टव्य होता है कि -

'जो अच्युतानन्द जो-जो मुकुदा

रार परमानन्द राम गोविदा

नंदु निटनु जेरि नयमु मीरंग

चन्द्रवदनलु नीकु सेव चेयंगा

अन्दमुग वारिंड्ल नाडु चुंडगा

मन्दलकु दोंगवा मा मुद्दुरंगा।'

मीरा और अन्नमाचार्य-दोनों ने गीत-काव्य को अपनाया है। वास्तव में वैयक्तिकता-अनुभूति की तीव्रता तथा रागात्मकता-गीतिकाव्य के तीन प्रधानतत्व है। इन्हीं तीन प्रधान तत्वों में मीरा और अन्नमाचार्य-दोनों के गीत संजोये हुये हैं। दोनों की सम्पूर्ण काव्य-साधना, गीत काव्यात्मक प्रकृति की है। कृष्ण विरह में विदग्ध मीरा के हृदय में भावनाओं का जो प्रबल वेग उमडा है, वह सहज ही उदात्त रूप धारण कर चुका है।

कवयित्री की आत्मानुभूतियों ने संगीत के आवरण से लिपटे गेय पदों का रूप प्राप्त कर लिया है। उनमें राग-रागिनियों का अच्छा प्रयोग हुआ है। कृष्ण-प्रेम की अमर गायिका मीरा ने जिन गीतों का सृजन किया है, उनकी सब से बड़ी विशेषता वैयक्तिक अनुभूतियों की तीव्रता है। विरह जनित करुणा की काव्यधारा जैसी मीरा के गीतों में प्रवाहित हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मीरा की इन पंक्तियों में कितनी टीस, कितना दर्द और कितनी व्याकुलता है।

'हेरी में तो प्रेम दिवाणी मेरो दरद न जाने कोय

घायल की गति घायल जाणै और न जाणे कोय।'

वस्तुतः मीरा के पदों में हृदय की जो भूख है, विरह को जो आनंद- भाव है, मिलन की जो व्याकुलता है, वह अन्यत्र कहाँ ? उनकी सरसता एवं मनोहारिता साधारण से साधारण पाठक के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । यह उनकी विशेषता है । भाषा की दृष्टि से देखें तो मीरा की भाषा एक सी नहीं है । वैसे वह है राजस्थानी है, पर उनके गीतों में व्रजभाषा का भी अनन्य पुट है । व्रजभाषा से प्रभावित मीरा के पदों में बड़ी सरसता और माधुर्य है । 'बसो मोरे नैनन में नंदलाल' आदि पदों में व्रजभाषा का स्वच्छ प्रवाह देखते ही बनता है । एक प्रकार से मीरा के गीतों में भाषा की गंगा-जमुना बही है । मीरा की भाषा साहित्यिक नहीं, फिर भी उसमें प्रवाह है, माधुर्य है ।

केवल तेलुगु की ही नहीं, दक्षिण की अन्य भाषाओं में भी कर्नाटक संगीत के लिए गीत लिखनेवालों में अन्नमय्या का स्थान सर्वप्रथम है । **'पद-कवित्व- पितामह'** तथा **'संकीर्तनाचार्य'** ये दो उपाधियाँ इनके लिए सर्वथा उपयुक्त है । अन्नमाचार्य के कीर्तनों में राग और ताल का बहुत ध्यान रखा गया है । इनके पदों में अनेक राग-रागिनियों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । उनमें मुखारि, कांभोजि गुंडक्रिया, ललित, शंकरा भरण, भूपाल, बौळि, देसाक्षि, समंतम, रामक्रिया, देसाळम् आदि उल्लेखनीय हैं । अन्नमाचार्य ने ही संवाद-गीतों का (ड्यूपेट) श्रीगणेश किया । इनके संवाद-गीतों में यशोदा-गोपिका संवाद-गीत, गोपिका-कृष्ण संवाद-गीत, चेंचेता-वेंकटेश्वर संवाद-गीत आदि प्रमुख हैं ।

अन्नमाचार्य ने संगीत के नियमों का पालन करते हुये भी भाषा को निर्दोष रखा है । कहीं भी भाषा को तोड़-मरोड़ नहीं किया । सभी पदों में शिष्ट जन सम्मत भाषा का प्रयोग हुआ है । भाषा केवल मधुर ही नहीं है, अपितु उसमें अर्थ-गांभीर्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । यदि संगीत की दृष्टि से विचार न भी किया जाय तब भी अन्नमय्या अपनी भाषा तथा काव्यगत विशेषताओं के लिए, तेलुगु साहित्य में अमर रहेंगे ।

अन्नमय्या ने इस बात का सफल प्रयत्न किया है कि संगीत की सुविधा के लिए भाषा अथवा साहित्यिक विशेषताओं में कोई कमी न आये । जहाँ तक हो सका, कवि ने सरल और सुबोध भाषा का ही प्रयोग किया है । उनके हृदय में भक्ति का जो स्रोत उमड़ पड़ा था, उसके कारण हर-एक पद में सरसता आ गई है, प्रवाह आया है । अन्नमय्या ने भगवान वेंकटेश्वर की पत्नी **अलिवेलु मंगम्मा** के संबंध में जो पद लिखे हैं, उनमें अन्य पदों की अपेक्षा माधुर्य अधिक दिखाई देता है । एक उदाहरण -

'चक्कनि तल्लिकि चांगुमाला

तन चक्कनि मोविकि चांगुमाला

पलुकु तेनेल तल्लि पव्वळिंचेनु

कलिकि तन विभुनि गलसिनदि पव्वलिंचेनु ।'

उपरोक्त संकीर्तन का अर्थ इस प्रकार है कि -हे सुन्दर माता ! प्रणाम ! तुम्हारे कोमल ओठों को प्रणाम । मधुर-भाषिणी मेरी माता लेटी हुई है, अपने प्रियतम में तल्लीन रहनेवाली मेरी माता लेटी हुई है । इसमें भक्ति, शांत एवं श्रृंगार भावों का सम्मेलन हुआ है ।

अन्नमाचार्य ने संस्कृत में 'संकीर्तन लक्षण' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। इसमें उन्होंने बताया कि श्रृंगार संबंधी कीर्तनों की भाषा मधुर होने पर भी आध्यात्मिक गीतों की भाषा गंभीर होनी चाहिये। इस तरह अन्नमाचार्य को 'आदि गेय कवि' (प्रथम गीतकार) होने का गौरव मिला है।

10.5. हिन्दी और तेलुगु कवियों का संक्षिप्त परिचय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु दोनों ने अपने क्षेत्रीय भाषाओं में सर्वप्रथम उपन्यास, प्रहसन, नाटक जीवनी आदि का श्रीगणेश किया। दोनों ने पत्र-पत्रिकाएँ चलाकर सभी-समाजों की स्थापना कर आपने-अपने साहित्यों की श्रीवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। दोनों ने कवि-गोष्ठियों का संचालन कर, नाटकों का प्रदर्शन कर तत्कालीन जनता में साहित्य के प्रति विशेष रुचि उत्पन्न की। दोनों युग-प्रवर्तक थे और युग-निर्माता थे। इसी से अपने-अपने साहित्य इतिहास में इनके नाम के आगे 'युग' शब्द जुड़ गया है।

भारतेन्दु-युग और वीरेशलिंगम-युग के रूप में नामकरण हो गया है। तत्कालीन जनता पर दोनों का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ा है। उस युग की कई प्रमुख विशेषताएँ दोनों में मिलती हैं, जिनकी ओर संकेत किया जा सकता है। इसी युग में सर्वप्रथम जनता ने अपनी विवशता और हीनता का अनुभव किया तथा उनसे विमुक्त होने का पूरा प्रयास किया नवजागरण के लिए यह युग अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

इसी युग में साहित्य के विभिन्न अंगों की सर्जना कर साहित्यकारों ने महान साहित्यिक उत्थान का परिचय दिया इसी युग में साहित्य और जनता के जीवन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना हुई। भारतेन्दु और वीरेशलिंगम-दोनों ने कुछ नये विषयों को अपनी कविता के लिए चुना था।भारतेन्दु जी तथा वीरेशलिंगम पंतुलु जी अपनी व्यापकता के लिए प्रसिद्ध है। दोनों की कृतियों की संख्या देखकर सब कोई चकित रह जाते हैं। दोनों से साहित्य का कोई भी अंग अछूता नहीं रहा। कविता, नाटक, उपन्यास, निबन्ध आदि सभी विधाओं को दोनों ने समान रूप से अपनाया और उन विधाओं को श्री वृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

उनके साहित्य में गद्य और पद्य-दोनों अंगों का विकास समान रूप से हुआ है। परन्तु गद्य को क्षेत्र में दोनों की विशेष उल्लेखनीय कार्य किया है। दोनों को आधुनिक गद्य के निर्माता कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पंतुलु जी तो आधुनिक काल के निर्माता ही हैं।

10.6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु का परिचय

भारतेन्दु जनता के कवि थे। उनका जो साहित्यिक है, वह समग्र मानवता के लिए है। इसलिए उनकी शैली में जटिलता नहीं आ सकी है। अनेक साहित्यिक छन्दों के साथ कजरी, ठुमरी और लावनी आदि का प्रयोग कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि उनकी काव्य-कृति से साधारण जनता भी आनन्द प्राप्त कर सकती है। भारतेन्दु ने जन साधारण को अपील करनेवाले तत्वों का विश्लेषण किया है, सोयो मनोवृत्तियों को सीधे-सादे ढंग से जगाया है। इसी कारण उनको विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

भारतेन्दु के काव्य को देखकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उनका उदय अभूतपूर्व घटना के रूप में हुआ। उनके काव्य की कला की सच्चाई और सफाई पग-पग पर देखने को मिलती है। उनकी कला जन साधारण के कवि होने के कारण जनता जनार्दन की पूजा करने के कारण, तपे हुए खरे सोने की तरह दिखाई पड़ती है। भारतेन्दु ने अपने काव्य में प्राचीन और नवीन दोनों का संगम उपस्थित किया है। इसी कारण से उनके काव्य में एक ओर रीतिकाव्य की परम्परा है तो दूसरी ओर आधुनिक प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। उनको कृष्ण-परक कविताएँ गीतिकाव्य की श्रेणी में आ सकती है क्याकि उनमें मर्मस्पर्श करने की पूर्ण क्षमता है। वैसे इनके पद डेढ हजार है। उनकी श्रृंगार सम्बन्धी कविताओं में राधा और कृष्ण नायिका, नायक हैं, इनकी श्रृंगार में अश्लीलता की छाया तक नहीं।

श्रृंगार के संयत चित्र इनके काव्य में मिलते हैं। वियोग श्रृंगार में जो सफलता इन्हें मिली, वह संयोग श्रृंगार वर्णन में नहीं मिली। 'प्रेम फुलवारी', 'प्रेम तरंग' कविता संग्रह इनकी श्रृंगार पूर्ण कृतियाँ हैं। ये कवितायाँ माधुर्य गुण से मण्डित हैं। यह स्वीकार करना होगा कि पंतुलु जी जिस भाँति गद्य के क्षेत्र में नव युग की प्राण-प्रतिष्ठा कर सके। उस भाँति कविता के क्षेत्र में उचित स्थान नहीं दिला सके। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने आधुनिक शैलियों और भावों का बीज अपने काव्य के क्षेत्र में ही बोया। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ पूर्णरूप से प्राचीन परम्परा के साथ सम्बन्धित हैं। 'शुद्धांध्र निरोष्ट्य निर्वचन नैषध', 'शुद्धां धोत्तर रामायण' और 'शुद्धाध्र भारत' में शाब्दिक चमत्कारों की प्रमुखता है।

'सरस्वती विलाप' नामक काव्य प्राचीन-युग के अन्त और-नये-युग के प्रारंभ की सूचना देता है। इस काव्य में विद्या की अधिष्ठात्री देवी श्री सरस्वती अपना पूर्व वृत्तांत नारद को सुनाकर, अपने भविष्य का चित्रण करती हैं। पंतुलु जी मैं बड़ी कुशलता से विचारों की परिवर्तनशीलता के दिग्दर्शन का चित्रण किया है। उदाहरण के लिए सरस्वती विलाप का एक उदाहरण -

'दयमालि तुदगुट्टे दल कट्लु निगिडिंचि
धीरुडै नन्नु बाधिंचु नोकडु
पादम्वु लोपल पादम्बु लिमिडिंचि
वीरुडै नन्नु नोप्पिंचु नोकडु
वेयु पल्कुल गूचि निंडिंचि नगलंचु
दिट्टयै चैवुलु वेधिंचु नोकडु
प्रासंबु पै पेक्कु प्रासंबुल धरिंचि
पोटु वटिचि नन्नु पोडचुं नोकडु।'

सरस्वती का कथन है कि-चरण के भीतर एकाध चरण और जोड़- कर अपनी वीरता दिखानेवाला कवि मुझे पीड़ा देता है। जो तीखे और नीरस शब्दों को गहनों कहकर मुझे पहनाता है, वह मेरे कानों को बाधा पहुँचाता है, और कोई कवि अनुप्रास का खड्ग धारण कर मुझे बाधित करता है।

'अभागोधात' नामक काव्य में 116 पद्य हैं। इसमें पंतुलु जी सरस्वती देवी का स्वागत करते हैं। इसमें उन्होंने तीखे व्यंग्य स्वर में प्राचीन रीतियों पर कसकर प्रहार किया है। भाषा तथा भाव की अभिव्यक्ति के लिए उस समय आडम्बरों का पालन किया जाता था, पंतुलु जी ने इन सब को व्यर्थ तथा अनावश्यक बनाया है। तेलुगु में ऐसा व्यंग्य प्रधान काव्य यही प्रप्रथम था। इस, मौलिक तथा विनूतन प्रयास में भी पंतुलु जी सफल हुए।

'नोति दीपिका' और 'चेन्नपुरि वाहा मन्दिर प्रतिष्ठापनम्' में इन्होंने धर्म एवं ईश्वर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। पंतुलु जी ने इन काव्यों में बुद्धि और भावना का समन्वय उपस्थित किया है। 'नीति दीपिका' में आस्तिकता का प्रतिपादन किया है। इन्होंने दूसरे काव्य में ब्रह्म-समाज की मान्यताओं पर प्रकाश डालते एकेश्वरवाद का समर्थन किया है। इन्होंने अंग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ के 'ट्रावेलर' नामक काव्य का आंध्रानुवाद किया। उसका नाम 'पथिक विलास' रखा गया है।

गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु के नाटक अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते हैं। मौलिक तथा अनुवाद के रूप में उन्होंने नाट्य साहित्य को श्रीसम्पन्न क्रिया। इस क्षेत्र में उनकी देन महत्त्वपूर्ण है ही। उनके मौलिक नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'श्रीचन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेबी', 'अन्धेर नगरी', 'प्रेमयोगिनी', 'सतीप्रताप' (असंपूर्ण) 'विषस्य विषमौषधम्' आदि प्रमुख हैं। 'श्री चन्द्रावली' गद्य-पद्यात्मक नाटिका है। इसमें श्रीकृष्ण एवं चन्द्रावली की प्रणय कहानी दर्णित है। 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक में सत्यनिष्ठ हरिश्चन्द्र की कथा अंकित है। 'भारत दुर्दशा' नाटक में तत्कालीन भारत की दुर्दशा का चित्रण मिलता है।

इनके नाटकों में स्वाभाविकता की झलक दिखाई देती है। इन नाटकों को देखने पर हमें लगता है कि उनका उद्देश्य केवल लीक पीटना या परस्परा पालन- नहीं था, वरन् परिवर्तित जनरुचि को दृष्टि में रखकर स्वाभाविक कला का विकास करना था। भारतेन्दु ने स्वयं लिखा है कि 'संस्कृत नाटक की भाँति हिन्दी नाटक में इनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा का सम्पादन करने से विपरीत फल होता है और व्यर्थ हो जाता है।'

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' एवं 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' आपके उत्तम प्रहसन है। इन प्रहसनों के द्वारा इन्होंने समाज में जो कुरीतियाँ थीं, उनका खंडन किया। समाज, राष्ट्र और धर्म की सच्ची आलोचना 'वैदिकी हिंसा-हिसा न भवति' और 'भारत दुर्दषा' नाटकों में है। इनमें प्रायः धर्म संबंधी विषय ही हैं। मांस मदिरा, का रूप लेकर और कथानक को उसी आधार, खंड कर लेखक ने समाज की अनेक दुर्बलताओं के साथ-साथ धर्म के पाखंडों का बाड़ ही मार्मिक चित्र सींचा है -

'न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने

अनामर्थ्य पितृन्, देवान्, मद्याजी मां नमस्कुरु

कलौ पराशरी स्मृतिः अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः

सम्प्रदायिनः की भी अच्छी छीछालेदरी दिखाई है।'

तेलुगु नाटक साहित्य को वीरेशलिंगम पंतुलु की देन गणनीय है। एक प्रकार से वे तेलुगु नाटक की रूपरेखा तैयार करने में समर्थ हुए। उन्होंने समाज की कुरीतियों को दूर करने तथा एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए नाटक तथा प्रहसनों को रचा। उनका प्रथम मौलिक नाटक 'विवेक दीपिका' या, पर यह अधूरा ही रह गया।

इसे नाटक के द्वारा उन्होंने यह बताना चाहा कि विधवा स्त्री की दूसरी शादी हो सकती है। बाद को उन्होंने 'प्रह्लाद' नाटक लिखा। इसकी कहानी पुराणों पर आधारित थी, फिर भी पंतुलु जी ने इसे नये रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया, प्रह्लाद नाटक में सामाजिक अत्याचार एवं कुरीतियों पर अच्छा व्यंग्य किया है। उन्होंने बताया कि वास्तव में धर्म-आडम्बर एवं दंभ की अपेक्षा नहीं रखता तत्पश्चात पंतुलु जी ने महाभारत के विराट पर्व की 'दक्षिण गोग्रहणम्' कथा के आधार पर नाटक को तैयार किया, जिसमें पद्य और गद्य दोनों का प्रयोग है। उन्होंने सत्यवादी हरिश्चन्द्र पर 'हरिश्चन्द्र' नामक नाटक लिखा जो जनता में बहुत प्रसिद्ध हुआ । इनके दो और नाटक हैं – 'विर्यग्विद्वत्महासभा' और 'महारण्य पुराधिपत्यमु' + इन नाटकों में गहरा व्यंग्य छिपा हुआ है। दोनों नाटकों में समाज के प्रभविष्णु, दंभी, व्यक्तियों की कुटु बालोचना की गई है।

इन नाटकों के अतिरिक्त पंतुलु जी ने अनेक प्रहसन भी रचे। घूसखोरी, अनैतिकता, अंध-विश्वास, आदि विषयों को लेकर पंतुलु जी ने छोटे-छोटे व्यंग्यात्मक कई प्रहसनों की रचना की। उन प्रहसनों में 'अपूर्व ब्रह्मचर्य प्रहसन', विचित्र विवाह प्रहसन', 'महाबधिर प्रहसन', 'पुनर्मरण प्रहसन', 'बलात्कार गान-विनोद-प्रहसन','कलहप्रिय-प्रहसन', 'महामहोपाध्याय प्रहसन', 'योग निद्रा प्रहसन', 'महा-वचन प्रहसन' और 'असहाय शूर प्रहसन' आदि गणनीय है।

भारतेन्दु जी तथा वीरेशलिंगम जी ने बहुत से नरक का अनुवाद किया। भारतेन्दु ने मुद्राराक्षस, विद्यासुन्दरी, रत्नावली, कर्पूरमञ्जरी, धनञ्जय विजय, भारत जननी, पाखुण्ड विडम्बन, दुर्लभ बंधु नामक नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। ये नाटक अनुवाद होने पर भी मौलिक नाटकों से भी कहीं अधिक सुन्दर एवं सफल बन पड़े हैं। विद्या सुन्दरी बंगला नाटक है।

वीरेालिगम पन्तुल जी ने संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटकों का तेलुगु में रूपान्तरित किया। संस्कृत में श्रीहर्ष रचित 'रत्नावली' इनसे प्रथम अनूदित है। इसके बाद कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद किया। अभिज्ञान शाकुतलम को बहुत प्रशंसा मिली क्योंकि इसमें सरल भाषा का प्रयोग किया गया तथा भावों की अभिव्यक्ति के लिए एक विशेष शैली अपनाई गई।

तत्पश्चात कालिदास प्रणीत 'मालविकाग्निमित्र' का अनुवाद किया। इन्होंने तेलुगु में सुप्रसिद्ध 'प्रबोध चन्द्रोदय' काव्य को नाटक के रूप में लिखा जो वास्तविक काव्य से भी उत्कृष्ट बन गया है। इन्होंने अनुवाद करते समय मूल ग्रंथों के भावों की रक्षा की है, परन्तु यह प्रयत्न रहा कि अनुवाद, अनुवाद सा न लगे।

'पंतुलु जी को अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने अंग्रेजी में प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के 'कामेडी आफ एरर्स' का अनुवाद 'चमत्कार रत्नावली' के नाम से किया। उन्होंने 'मर्चेंट आफ बेनिग' का अनुवाद 'वेनिस वर्तक चरित्रमु' नाम से करना चाहा पर दो अंक ही अनूदित कर सके। बाद को शैरीडान के 'दी डयूयन्ना' नामक नाटक को

'राग मंजरी' नाम से तथा 'दी राइवल्स' नाटक को 'कल्याण कल्पडल्ली' नाम से अनूदित किया है। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद में पंतुलु जी का जो सफलता प्राप्त हुई, वह और किसी को नहीं।

कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि या सच्चा समालोचक होता है। यह बात भारतेन्दु और पंतुलु जी दोनों महापुरुषों के बारे में पूर्णरूप से चरितार्थ होती है। इनकी कृतियों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रगतियों का स्वरूप स्पष्टरूपेण अंकित हुआ है। यद्यपि उस समय अनेक लेखक, संपादक और सुधारक थे, परन्तु सामाजिक, कुरीतियों और पतन का, राजनीतिक उदासीनता और दुर्बलता का तथा पाखण्ड का मासिक चित्रण इन महानुभावों ने ही किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु दोनों ने कुरीतियों, दुर्बलताओं, दासता और पापाचार का कठोर शब्दों में स्पष्ट विरोध किया। दोनों न केवल साहित्य के क्षेत्र में नेतृत्व करते हुए ही दिखाई पड़ते हैं। अपितु राष्ट्रीय भावना के अग्रदूतों के रूप में एवं जीवन के क्षेत्र में भी सक्रिय भाग लेते हुए जान पड़ते हैं। उन दोनों के लिए साहित्य साध्य नहीं था, वरन् वह साधन मात्र था।

भारतेन्दु जी ने गुलामी के दलदल में फंसी हुई जनता का उद्धार करने के लिए एक ओर समाचार-यों को दामन थामा, तो दूसरी ओर कविता, कहानी, निबन्ध और नाटकों के द्वारा वाग्देवी कर वरदान पाने की सफर कामना स्वतन्त्रता का आह्वान किया, बेसुध जनता को रोने के लिए आमंत्रित संयम अपनी बेबसी की दशा पर आठ-आठ आँसू बहाने के लिए, अपनी दुर्दशा पर विचार करने के एल उनकी घोषणा थी -

'आवहु सब मिलि रोवहु, भारत भाई

हा ! हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई।'

लोग जाग गये और भारत की दुर्दशा दूर हुई।

महिलाओं के प्रयोजनार्थ उन्होंने 'वाल बोधिनी' नामक पत्रिका चलायी इसके अतिरिक्त 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' भी चलाये हैं। इन पत्रिकाओं के द्वारा अनेक गद्य लेखकों को प्रोत्साहित किया।

पंतुलु जी महान् साहित्यिक होने के साथ-साथ बड़े समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने साहित्य का प्रयोजन समाज का उत्थान माना है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपना जीवन ही अंकित कर दिया है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह इत्यादि अनेक सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आपने कलम चलायी ! विधवा-विवाह - करके असंख्य बाल विधवाओं का उद्धार किया समाज में स्त्रियों के प्रति जो अत्याचार किये जाते थे, उसके प्रहार करने के उद्देश्य से उन्होंने 'विवेक वर्द्धनी' पत्रिका चलायी।

स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए पंतुलु जी ने 'सतीहित बोधिनी' पत्रिका चलायी। 'सत्यवतीदेवी चरित्र', 'चन्द्रमती देवी चरित्र', 'उत्तम स्त्री चरित्र', 'स्त्री नीति दीपिका', 'पत्नीहित सूचना', 'सतीहित बोधिनी', 'मातृपूजा पितृपूजा' आदि ग्रंथों का प्रकाश करके स्त्री जाति को धर्म और नीति का ज्ञान कराया।

भारतेन्दु कवि होने के साथ भक्त भी थे। पुष्टि-सम्प्रदाय के कृष्ण उनके इष्टदेव थे।

श्री वीरेशलिगम पंतुलु जी की लेखनी ने गद्य के विविध अंगों का स्पर्श किया। उन्होंने 'आन्ध्र कवुल चरित्र' नाम से तीन भागों में करीब एक हजार पृष्ठों का ग्रंथ प्रकाशित किया। इसमें तेलुगु साहित्य का इतिहास प्रस्तुत है। उन्होंने 'राजशेखर चरित्र' नामक उपन्यास को लिखा जो तेलुगु का प्रथम उपन्यास माना जाता है।

समाज में जो अंधविश्वास और कुरीतियाँ पर कर गई है, उनको जड़सहित उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से इसकी रचना हूँ। अपनी आत्मकथा को 'स्वीय चरित्र' नाम से गद्य में लिखा। तेलुगु में यही पहली आत्मकथा है। उन्होंने संस्कृत के पंचतंत्र के तीसरे भाग 'विग्रह' का अनुवाद सरल भाषा में उत्पन्न 'सत्य संजीवनी' नाम से एक नीति-प्रधान कहानी भी लिखी।

भारतेन्दु जी ने 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' नामक दो उपन्यासों को लिखा जो हिन्दी के प्रथम उपन्यास माने जाते हैं। यद्यपि उसमें औपन्यासिक तत्वों का अभाव है, फिर भी उसमें हिन्दी उपन्यास के बीज दीखते हैं।

पंतुलु जी ने पदार्थ विज्ञान शास्त्र, शरीर शास्त्र, देहारोग्य, धर्म बोधिनी, ज्योतिष शास्त्र संग्रह, जंतु स्वभाव चरित्र आदि वैज्ञानिक ग्रंथों को भी लिखा। समाज सुधार तथा साहित्यिक विषयों पर अच्छे निबन्ध लिखे थे।

इसी तरह भारतेन्दु जी ने भी निबन्ध और आख्यानों को लिखा है, तथा इतिहास के क्षेत्र में भी अपनी कला का दान दिया है।

भारतेन्दु का महत्व हिन्दी साहित्य में असाधारण कहा जायेगा। उनमें सफल नेतृत्व की क्षमता थी। उन्होंने हिन्दी भाषा की सेवा करके, उसका सहकार करके जीवन प्रदान किया। आज वही हिन्दी प्रौढ़ और विकसित है। अंधकारमय वातावरण में आलोक का जो महत्व है, साहित्य में भारतेन्दु जी को प्राप्त है। वे वर्तमान हिन्दी के जन्मदाता थे।

राजेंद्र सिंह गौड ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा- 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में वह पहले व्यक्ति थे', जिन्होंने हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के उत्थान के लिए अपने जीवन का एक-एक क्षण, अपनी सम्पत्ति का एक-एक पैसा, अपनी प्रतिभा की एक-एक रेखा दान कर दी। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' के शब्दों में 'भारतेन्दु एक ओर तो पद्माकर और द्विज-देव को परम्परा में दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर वंगदेश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में।'

10.7. सारांश

मीरा और अन्नमाचार्य का गीत-काव्य-परंमरा में विशिष्ट स्थान है। अपने हृदय की भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए दोनों ने गेय-पदों की शैली को अपनाया। मीरा के गीतों में वैयक्तिक अनुभूति की जो तीव्रता है, वह अन्नमाचार्य के गीतों में नहीं है। मीरा अपने को कृष्ण की पत्नी मानती थी। इसलिए मीरा के पदों में अधिक भाव-विह्वलता, भावावेश ओर हृदय के निश्चल एवं सरल उद्गार हैं।

अन्नमाचार्य के गीतों में जो साहित्यिक सौंदर्य है कला की जो रंगीनी है, भाषा की जो सरसता है, वह मीरा के पदों में नहीं है, पर मीरा के गीत नारी- हृदय की सहज विह्वलता और सच्ची अनुभूति को लेकर चले हैं। अनुभूतियों की यह सच्चाई ही उन के गीतों का प्राण है, वे हृदय से निकले हैं और हृदय को स्पर्श करते हैं। इस प्रकार जहाँ अन्नमाचार्य

में साहित्यिक सौंदर्य एवं कला की रंगीनी है, वहाँ मीरा के पदों में अनुभूतियों की सच्चाई एवं भाव विह्वलता है। वीरेशलिंगम पंतुलु जी ने भाषा का परिमार्जन के साथ-साथ व्याकरण की दृष्टि से जो त्रुटियाँ रहती हैं उनका भी परिष्कार किया। भारतेन्दु जी तथा पंतुलु जी दोनों का जन्म संधिकाल में हुआ। वास्तव में साधारण कवियों की अपेक्षा संधिकाल के कवियों का दायित्व महान होता है। भारतेन्दु जी तथा पंतुलु जी - दोनों ने अपने दायित्व को अच्छी तरह पहचाना तथा उसको सफलता पूर्वक निभाया है।

10.8. बोध प्रश्न

1. मीराबाई पर टिप्पणी लिखिए।

2. अन्नमाचार्य पर टिप्पणी लिखिए।

3. कृष्ण भक्ति धारा के मीराबाई और अन्नमाचार्य के भक्ति भावना को विस्तृत रूप में व्याख्या कीजिए।

4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर टिप्पणी लिखिए।

5. वीरेशलिंगम पंतुलु पर टिप्पणी लिखिए।

6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और वीरेशलिंगम पंतुलु समाज सुधारकों के बारे में उदाहरणों के सहित सोदाहरण रूप में लिखिए।

10.9. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन -शिव सत्यनारायण।

2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

4. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

5. हिन्दी और तेलुगु की प्रगतिवादी काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- रामानायुडु, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

6.तुलनात्मक साहित्य- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

7. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका- चौधरी, इन्द्रनाथ, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा। 1983.

9. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ- संपादक- राजरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजमल, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2013.

10. साहित्य सिद्धांत – रेनेवेलेक आण्ड आस्टिनरेट, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

11. साहित्य विद्या की दृष्टि से हिन्दी - तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

11.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में तुलनात्मक अध्ययन के बारे में जान चुके है। तेलुगु- हिन्दी कालखंडों की तुलनात्मक इतिहास के बारे में जान चुके है। इस अध्याय में तेलुगु - हिन्दी साहित्यक विद्या की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। इस अध्याय में हम हिन्दी - तेलुगु साहित्य से संबंधित

⟶ पद्य रचनाओं की तुलना के बारे में,

⟶ गद्य रचनाओं की तुलना के बारे में,

⟶ आधुनिक, साहित्यिक विधियों की तुलना के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

11.1. प्रस्तावना

11.2. प्राचीन और मध्यकालीन पद्यों की तुलना।

11.3. तेलुगु- हिन्दी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

11.4. तेलुगु - हिन्दी गद्य का विकास

11.5. अत्याधुनिक गद्य काल- तेलुगु - हिन्दी

11.6. गद्य के विविध अंग

- 11.6.1. कहानी
- 11.6.2.1 उपन्यास
- 11.6.3. नाटक
- 11.6.4. समीक्षा

11.7. सारांश

11.8. बोध प्रश्न

11.9. सहायक ग्रंथ

11.1. प्रस्तावना

भारत बहु भाषाओं का देश है। हर भाषा का अपना समृद्ध एवं विकसित साहित्य भी है। इन साहित्यों के बीच अत्यधिक समानताएँ मिलती हैं। सारे भारतीय साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा विचारों के सूत्र से बन्धे हुए हैं। प्रादेशिक साहित्यों के अन्तर्गत बिश्वरी हुई भारत की सांस्कृतिक एकता का अध्ययन होना चाहिए। सिर्फ भारत के विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों में प्राप्त समानताओं एवं भिन्नताओं पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है। सभी प्रादेशिक साहित्यों की

तुलना कर उनमें व्याप्त भारत की सार्वभौम सांस्कृतिक एकता को निर्धारित कर उसके आधार कर मूल स्वरों के साथ-साथ सांस्कृतिक हृदय को भी स्पष्ट किया जा सकता है। भारत की सांस्कृतिक मूलवर्ती एकता का सम्यक अनुसंधान होना चाहिए। इस के लिए भारतीय साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन महत्त्वपूर्ण होता है।

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक भारत वर्ष में एक ही विचारधारा का, एक ही जीवन-दर्शन का, एक ही महान आदर्श का प्रसार एवं प्रचार है। तेलुगु - हिन्दी साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के संदर्भ में विभिन्न विधाओं की तुलनात्मक को के बारे में इस अध्याय में चर्चा करेंगे।

11.2. प्राचीन और मध्यकालीन पद्यों की साहित्य विधाओं की तुलना

हिन्दी और तेलुगु के भाषाओं के साहित्य का आरंभ ई. पूर्वी सन् 1000 से ही आरंभ हुई। हिन्दी वीरगाथा काल और तेलुगु पुराण काल में लिखी गई काव्यों में कुछ समानताएँ और कुछ भिन्नताएँ पाई जाती है। अज्ञात युग के हिन्दी साहित्य को वीरगाथा काल भी कहते हैं। तेलुगु साहित्य में इसे पुराण युग कहते हैं। इस काल के कवि राजाश्रय में रहते थे। हिन्दी और तेलुगु की प्रारंभिक रचनाएँ राजाओं के दरबार में ही रची गई। दोनों साहित्यों का सूत्र -पान राज दरबारों में ही हुआ। परंतु दोनों की परिस्थिति में भिन्नता है।

उत्तर भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच संघर्ष हो रहा था। इस संघर्ष- पूर्ण युग में वीर-स्य प्रधान कविता ही हो सकती थी। संघर्ष का मूल कारण नाही और राज्याकांक्षा था, जब कि आन्ध्र देश में यह संघर्ष राजनीतिक न होकर धार्मिक था। शैव और वैष्णवों के बीच धार्मिक विदद्वेष की खाई बढ़ती गई तथा जैन और बौद्ध - धर्मों ने आस्तिक भावना को मिटा दिया था। अतः नन्नय ने कार्य प्रारंभ किया। वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा करने व नन्नया भट्ट तेलुगु के आदिकवि माने जाते हैं और उनका 'महाभारत' ही तेलुगु का आदि। महाभारत तो अनूदित ग्रंथ है।

हिन्दी में तो उस समय मौलिक ग्रंथ लिखे गए थे। इस काल के प्रमुख कवि चंदबरदाई, भट्टकेदार, जगनिक और नपतिनाला हैं। चंदबरदाई की काव्य पृथ्वीराज रासो, नरपति नाल्हा का बीसलदेव रासो, जगनिक का परमाल रासो, दलपति विजय का खुमान रासो आदि प्रमुख काव्य है। इन रचनाओं में ऐतिहासिक कला के साथ-साथ कवियों द्वारा अपनी कल्पना का समावेश भी किया गया है। इन रचनाओं में युद्ध प्रेम का वर्णन अधिक किया गया है। इनमें वीर रस व श्रृंगार रत्य की प्रधानता है। इनमें विविध प्रकार की भाषाओं एवं अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है।

तेलुगु आधिकाल में नन्नय महाभारत का अनुवाद किया और इनको 'आदिकवि' भी करते है। तेलुगु के आदि काल में अनेक अनुवाद काव्य ही मिलते है। लेकिन ये सब मौलिक लेखन की तरह ही रचे गए है। महाभारत के साथ-साथ, रामायण, मार्कंडेय पुराण, हरिवंश पुराण इत्यादि अनेक पुराणों का अनुवाद तेलुगु में हुआ। जैसे कि हिन्दी में वीर इस प्रधान काव्यों की अधिकता के कारण इस युग का नाम वीरगाथा काल रखा उसी प्रकार अनेक पुराणों का तेलुगु में अनुवाद होने के कारण इस युग का नामकरण पुराण युग किया गया है।

इस काल में आदि कवि नन्नय ने 'आन्ध्र शब्द चिंतामणि' नामक व्याकरण ग्रंथ लिखकर 'वागनुशासन' नामक उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त अथर्वणाचार्य ने 'अथर्वण- कारिकावली', 'अथर्वण धंद', तिक्कना को 'कवि वाग्बंध', 'तिप्पना' ने 'रति शास्त्रमु', केतना ने 'भाषा-भूषण' विन्नकोट-पेहना ने 'काव्यालंकार – चूडामणि', गौरनमंत्री ने 'लक्षण दीपिका' को लिखे थे। श्री गोन बुद्धारेड्डी ने वाल्मीक- रामायण का इसी युग में देशी-छंद द्विपदा में अनुवाद किया। जन-साधारण में इस रामायण का विशेष प्रचार हुआ है। 'भास्कर रामायण' भी इसी युग की देन है जो मार्ग- कविता में

रची गई है। इस युग के शैव-धर्म की ग्रंथों में पंडिताराध्य का 'शिव-तत्व पुराणामु', सोमनाथ का 'बसव पुराणमु' मुख्य ग्रंथ हैं।

हिन्दी और तेलुगु के मध्यकाल साहित्य में, भक्ति, नीति, मानव धर्म आदि से संबंधित अनेक ग्रंथ लिखे गए। हिन्दी भक्ति साहित्य के प्रमुख कवि तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीर, जायसी आदि प्रमुख है तो तेलुगु में इस प्रकार के काव्यों की रचना में बेमना, पोतना, त्यागराजू, श्रीनाथ आदि प्रमुख है। भक्त कवियों में कबीर ने गुरु की महत्ता को स्वीकार करके ईश्वर की प्राप्ति में गुरू की सहायता अत्यंत आवश्यक माना है। तेलुगु के वेमना भी गुरु की महत्ता को स्वीकार किया। कबीर और वेमना दोनों बाह्याडंबरों की निन्दा करके पद्य लिखे थे। जाति-पांति की अवहेलन किए थे। भक्त कवियों में सूरदास कवि, भवत और गायक थे। उसी प्रकार पोतना और ल्यागराजू भी भक्त, गायक और कवि थे। सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे।

पोतना श्री राम के अनन्य भक्त थे, मगर श्री राम की प्रेरणा से ही भागवत के आधार पर श्री कृष्ण से संबंधी रचनाएँ की। त्यागराजु राम भक्त थे। मगर गायक थे। तुलसीदास हिन्दी में 'रामचरित मानस' लिखकर हिन्दू जनता का उद्धार ही नहीं किया, अपितु उन्हें आदर्श का मार्ग विश्वासा। पोतना 'भागवत' में श्री कृष्ण के बाल लीलाओं का वर्णन किया। उन्होंने कवि का आश्रय को इनकार करके अपने काव्य को श्री राम को अर्पित किए थे। उसी काल के एक महान श्रृंगार कवि श्रीनाथ था। श्रीनाथ तेलुगु, संस्कृत, और कन्नड़ भाषा के अच्छे विद्वान थे तुलसीदास रामचरितमानस के अलावा विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली: जानकी मंगल, पार्वती मंगल आदि ग्रंथ लिखे थे। इनके काव्यों में श्रृंगारनैषध, काशीखण्ड, भीमखण्ड, हर विलास, पलनाहि वीरचरित आदि प्रमुख है।

तेलुगु साहित्य के इतिहास में मध्यकाल यानी रेड्डि राजु युग में रामायणों की परंपरा चली थी। तेलुगु में प्रप्रथम रामायण की रचना गोन बुद्धा रेड्डी ने की। इनकी रंगनाथ रामायण द्विपद छंद में रची गयी है। तेलुगु में लगभग 25 रामायण उपलब्ध हैं। उनमें रंगनाथ रामायण, भास्कर रामायण, मोल्ल रामायण, गोपीनाथ रामायण और रामायण कल्पतरु विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी में श्री केशवदास ने भी 'रामचंद्रिका' नाम से एक रामायण की रचना की है। रायलु युग में प्रबंध काव्यों की परंपरा चली। उस समय के अल्लसानि पेद्दना का 'मनुचरित्र', धूर्जति का 'कोलहस्ति-महत्म्यमु', तेनाली रामकृष्ण कवि के 'पांडुरंग महात्म्यमु' प्रमुख है। रायलु के 'आमुक्त माल्यदा' प्रमुख प्रबंध काव्य था।

हिन्दी भक्तिकाल के अन्य प्रमुख कवि कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, नन्ददास, छीतस्वामी, श्री भट्ट, मीराबाई, रसखान आदि है। 'रासपंचाध्यायी' नन्ददास की प्रमुख कृति है। मध्य युग के महिला कवइत्रियों में मोल्ला और मीरा प्रमुख है। मीरा के आराध्यदेव श्री कृष्ण थे। मीरा ने अपने आराध्यदेव के भजन और कीर्तन बनाकर गया, नाचा और आराधना की।

मोल्लांबा का आराध्य देव श्रीरामचंद्र थे। इन्होंने 'रामायण' की रचना की। मोल्ला और मीरा दोनों की भक्ति भावना एक सी रही। दोनों की भक्ति माधुर्य-भाव की है। दोनों ने अपने आराध्य के चरणों पर अपने आप को समर्पित किया है। हिन्दी - तेलुगु साहित्य में आदिकाल से आधुनिक काल के आविर्भाव तक काव्य पंथ के रुप में रची गयी थी। आधुनिक काल तक आते-आते पाश्चात्य, साहित्य के प्रभाव से अनेक विधाओं का आविर्भाव हुआ।

11.3. तेलुगु और हिन्दी काव्य-धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

बीसवीं शति के आरंभ से लेकर पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य में विभिन्न विधियों का प्रवेश हुआ है। एक ओर राष्ट्रीय - भावना दूसरी और पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से अनेक काव्य धाराओं का आविर्भाव हुआ ।

राष्ट्रीय धारा

सन् 1900 से लेकर भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का आरंभ हुआ तो इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के कार्य तेलुगु साहित्य में वीरेशलिंगम पंतुलु ने किया है। इस युग के प्रमुख कवि 'माखनलाल चतुर्वेदी', 'बालकृष्ण शर्मा नवीन', 'रामधारी सिंह दिनकर', 'सुभद्राकुमारी चौहान' आदि है। तेलुगु में वीरेशलिंगम, पंतुलु ने जो सुधारवादी आन्दोलन प्रारंभ किया उसे काव्य रूप देने वाले श्री गुरजाड अप्पाराव थे। इस समय में गिडुगु राममूर्ति पंतुल ने जन भाषा का आन्दोलन चलाया। इन त्रिमूर्तियों ने मिलकर आन्ध्र जनता, समाज, भाषा व साहित्य की अपूर्व सेवा की।

इन सबके आशय हमें ख. गुरजाड अप्पाराव जी की कविता, नाटक इत्यादि में दिखाई देते हैं। हिन्दी में श्री रामनरेश त्रिपाठी जी ने जो देश भक्ति - पूर्ण कविताएँ की उनसे भी अधिक समग्र रूप में अप्पाराव ने की है। अप्पाराव जी ने जनभाषा में राष्ट्रीय भावना एवं देश-भक्ति को ध्वनित की है। जन भाषा में सुधारवादी भावनाओं को ध्वनित करने के लिए इन्होंने गीतों का सहारा लिया है। ये गीत अत्यन्त भावस्फोरक एवं उत्तेजनात्मक होते हैं। क्रमशः देश में कांग्रेस आंदोलन ने जोर पकड़ा। राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार जोरों से होने लगा। अपनी भाषा, अपना साहित्य और अपनी संस्कृति के प्रति लोगों में अनुराग बढ़ने लगा।

प्राचीन और नवीन भावना एवं आदर्शों के बीच संघर्ष होने लगा। इस संक्रांतिकाल में भारत की भाषाओं में जो साहित्य आया वह प्रबोधात्मक तथा प्राचीनता का गौरव गान - प्रधान था। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त में जो भावनाएँ देखते हैं वे तेलुगु के थी दिवाकर्ल तिरूपतिशास्त्री तथा चल्लपल्लि वेंकटशास्त्री कवि द्वय में देख सकते है। इन कवियों ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक इतिवृत्तों को लेकर काव्य रचना की। गुप्त जी का राष्ट्र प्रेम तेलुगु के इन दोनों में नहीं देख पाते हैं।

गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना तो हम 'अभिनव तिक्कना' नाम से विख्यात श्री तुम्मल, सीताराम मूर्ति की कविता में पाते हैं। इनका 'राष्ट्रगान' गुप्तजी की 'भारत-भारती' की भाँति विशेष प्रसिद्ध है। 'धर्मज्योति' श्री सीताराममूर्ति जी का उत्तम काव्य है। इस युग के अन्य तेलुगु कवियों में श्रीपाद कृष्णमूर्ति, कोडाली सुब्बाराव इत्यादि के नाम उत्यन्त आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

11.4. हिन्दी - तेलुगु गद्य का विकास

विश्व की प्रायः प्रत्येक भाषा में प्रप्रथम पद्य का जन्म हुआ है, तदुपरांत ही गद्य का। समस्त विद्वानों ने एक मत हो इस अभिप्राय का समर्थन किया है। संभवतः जब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था, उस समय लय प्रधान छन्दोबद्ध कविता कंठस्थ करने के लिये अधिक सुविधाजनक थी। हिन्दी और तेलुगु साहित्य का प्रारंभ पद्य से ही माना जाता है। अब तक इन दोनों भाषाओं में उपलब्ध वाड़मय में प्रथम ग्रन्थ, काव्य ही माना गया है।

हिन्दी में उपलब्ध सामग्री में पद्य ग्रन्थ ही प्रथम स्थान लेते हैं, किन्तु तेलुगु में आदि काव्य माने जाने वाले नन्नय के महाभारत के पूर्व ही अनेक ऐसे शिला - लेख उपलब्ध हुए हैं जिन में गद्य का प्राथमिक रूप पाया जाता है। लेकिन उस गद्य को विद्वान आज के गद्य की संज्ञा से पुकारने में संकोच करते हैं, फिर भी 11वीं शती में रचित नन्नया के महाभारत में हमें गद्य का रूप देखने को मिल जाता है। इसके उपरांत समय - समय पर अनेक कवियों ने प्रबंध काव्य लिखना प्रारंभ किया।

हिन्दी में भी पहले वीर गीतों की ही रचना हुई है, जैसे कि अंग्रेजी, ग्रीक इत्यादि पाश्चात्य भाषाओं तथा हिन्दी, तेलुगु आदि भारतीय भाषाओं में है। हिन्दी का प्रारंभ प्राकृत, अपभ्रंश एवं राजस्थानी भाषाओं में हुआ, जो कि उसके विविध प्रारंभिक रूप है। अब तक हिन्दी साहित्य में संवत् 1400 के आसपास विरचित बाबा गोरखनाथ के 'शिष्ट-प्रमाण' का ब्रज-गद्य, गद्य का प्रथम रूप माना जाता है। उस समय के गद्य लेखकों में गोरखनाथ प्रथम माने जाते हैं। उनके उपरांत गोकुलनाथ जी के 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' तथा 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' इन दोनों ग्रंथों में भी व्रजभाषा गद्य का रूप ही पाया जाता है।

फिर अकबर के जमाने में गंगा कवि का गद्य रूप मिलता है। फिर जहाँगीर के समय में जटमल की रची 'गोरा बादल की कथा' भी उपलब्ध होती है। इस समय तक गद्य की भाषा में कुछ परिष्कार हो चला था। ब्रजभाषा का युग भी क्रमशः समाप्त होने लगा और भारत का राजनैतिक संगठन शांतिपूर्ण नहीं रहा। मुसलमानों का शासन बदला, अंग्रेजों का आगमन हुआ। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे समस्त उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य जमाया। आधुनिक काल में हिन्दी - मुस्लिम संस्कृतियों के संपर्क से एक नई भाषा खड़ीबोली का जन्म हुआ। कुछ विद्वानों का कथन है कि खड़ीबोली का प्रारंभिक रूप – 'अमीर खुसरो' की पहेलियों तथा मुकरियों में पाया जाता है। व्यापारी लोगों के द्वारा यह भाषा उत्तर से दक्षिण भारत में फैली।

अंग्रेजी के शासनकाल में तो प्रेस का आविष्कार हुआ। नवीन सभ्यता के उदय के साथ शिक्षा का प्रचार विशेष रूप से होने लगा। अंग्रेजों ने राज्य-विस्तार के साथ अपने धर्म का प्रचार भी प्रारंभ कर दिया। स्कूल-कॉलेज खोले गये। अतः पठन-पाठन के लिए गद्य-ग्रंथों की आवश्यकता हुई। शिक्षण क्षेत्र में विवरणात्मक विषयों के कारण व्यावहारिक भाषा में व्याख्यात्मक पद्धति का आरंभ हुआ। आधुनिक युग में कुछ समय तक व्रज भाषा काव्य भाषा बनी रही लेकिन गद्य के लिए खडी बोली का व्यवहार होने लगा था। इस प्रकार हिन्दी में इसका गद्य का विकास विलंब से हुआ, लेकिन इसका विकास तीव्र गति से हुआ।

तेलुगु के आदि कवि नन्नय 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि' नामक व्याकरण ग्रंथ लिखकर भाषा का परिष्कार किया। तदुपरांत प्रबंध युग में श्रीनाथ, कृष्णदेवराय, अल्लसानि पेद्दना, पिंगलि सूरना इत्यादि के काव्यों गद्य उत्तम श्रेणी का कहा जा सकता है। तेलुगु वाङ्मय के दक्षिणान्ध्र युग में गद्य का समुचित विकास हो पाया है। इस युग के ग्रंथों में 'पंचतंत्रमु, विक्रमार्क कथलु, भगद्गीता, तेनालि, रामलिंगनि कथलु' पंचविशति कथलु, मर्याद रामन्न कथलु, स्थल पुराण वचनमुलु' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

19वीं शती भारत के साहित्य के अभ्युत्थान में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस समय तक समस्त भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो चला था। राष्ट्रीय जागृति के प्रादुर्भाव के कारण स्वभाषा और निज संस्कृति पर विशेष प्रेम पौदा होने लगा। अंग्रेजी साहित्य से साहित्य के अन्य विधि भी भारत में पहुँच गए। धर्म संबंधी साहित्य में लिखा जा नहीं सकता। अतः गद्य की आश्रय लेकर धर्म प्रचारकों ने अपने सिद्धांतों का प्रचार करना प्रारंभ किया। साहित्य में गद्य

का विकास आधुनिक काल में भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुआ तो तेलुगु में आधुनिक गद्य का आरंभ वीरेशलिंगम पंतुलु से हुआ। भारतेन्दु की तरह वीरेशलिंगम पंतुलु ने भी साहित्य की सेवा की। पंतुलु जी ने करीब 130 ग्रंथों की रचना की।

11.5. अत्याधुनिक गद्य काल- तेलुगु-हिन्दी

आन्ध्र में सर. सी. पी. ब्रौन साहब, बिशप काल्डेवेल, कर्नल कालिन मेकंजी, घूल्जी इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों ने तेलुगु भाषा की उन्नति एवं उद्धार का बीड़ उठाया तो उत्तर भारत में जाना गिलक्राइस्ट जैसे व्यक्तियों ने हिन्दी के अभ्युस्थान का आरंभ कर दिया। कलकत्ता के फोर्टविलियम कालेज ने संरक्षण में लल्लूलाल जी ने 'प्रेम साहर' और सगल मिश्र ने 'नासिकोपाख्यान' लिखा। अंग्रेजी लोग हिन्दी सीखने के लिए हिन्दी विद्वानों को ईस्टइंडिया कंपनी में नौकरी और कालेजों में अध्यापक कार्य सौंप कर उन से हिन्दी सीखी। उनके व्यापार तथा व्यवहार के लिए आवश्यक भाषा ज्ञान प्राप्त कर लिया। साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में भी उन लोगों ने अपूर्व क्रांति पैदा कर दी।

भाषा का संस्कार किया और साहित्य की श्री वृध्दी में योगदान दिया। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे प्राचीन ग्रंथों का पता लगाकर उनकी पांडुलिपियों का संग्रह किया। मुद्रण यंत्र के आविष्कार के साथ उन्हें प्रकाशित करवा कर हिन्दी प्रेमी पाठकों तक पहुँचाया। उस समय के प्रमुख साहित्यकारों में मुंशी सदासुख लाल तथा इँशा अल्लाखान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय किया जा सकता है।

यह तो गद्य साहित्य का प्रारंभिक युग था, एक ही साथ किसी भी भाषा में उच्च साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता था और गद्य साहित्य का प्रारंभ सरल तथा कहानी से हो सकता है न कि पौढ़ एवं खोज पूर्ण निबंधों के रूप में। किसी भी साहित्य का ध्येय होता है कि पाठक उसे पढ़े और पढ़ने की रुचि बढ़ाए। ऐसी दिशा में मुँशी सदासुखलाल ने धर्म - प्राण जनता को 'शुखसागर' की कथा प्रदान की तो 'इंशा अल्लारखाँ' ने मनोविनोदार्थ 'रानी केतकी की कहानी'। इन दोनों की रचनाओं में प्रयोग क्रिया की गई भाषा हिन्दी की प्रारंभिक अवस्था की थी।

अतः हम उस समय के गद्य की आज के गद्य के साथ किसी भी रूप में तुलना नहीं कर सकते। क्योंकि भाषा सदा विकसन शीला होती है। तेलुगु भाषा का भी समय के साथ-साथ विकास, होता चला। बौद्धिक प्रगति के साथ गद्य की प्रधानता बढ़ी। लोगों में तार्किक भावना का उदय हुआ। वाद-विवाद, तथ्यालक्ष्य निरुपण, धर्म एवं संप्रदायों का जोरों से होने लगा। इन सब के प्रचार के लिए समाचार पत्रों का जन्म हुआ। समाचार पत्रों में पहले छोटे-से लेख, कहाँनियाँ, समीक्षाएँ तथा सामाजिक दशा का वर्णन करने वाली रचनाएँ आने लगी। इन्हीं दिनों में धारवाड़ कंपनी के द्वारा नाटकों का प्रदर्शन होने लगा और लोग नाटक देखने लगे तो लेखकों ने नाटकों की रचना करना प्रारंभ कर दिया।

उत्तर भारत में भी प्रप्रथम वि. सं. 1875 में बाइबिल का हिन्दी अनुवाद छपा। अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ और यह विश्वास भी प्रबल हो चुका था कि अब हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल होगा। लेकिन उर्दू और फारसी के आगमन से हिन्दी का प्रगति मंद पड़ गयी। अनेक मुसलमान लेखक उर्दू और फारसी में लिखने लगे। शिक्षा के क्षेत्र में मुद्रण में भी काफी बदलाव आया। राजा शिवप्रसाद जी पुस्तकों के जो शिक्षा विभाग के निरीक्षक के पद में थे, उनका विचार था कि भाषा की लिपि देवनागरी हो और भाषा का रूप व्यवहारिक ताकि सभी ऐसे आसान से पढ़ और समझ पाए।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सरल एवं बोलचाल की भाषा में पाठ्य-पुस्तकें लिखी। बाद में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' का गयानुवाद प्रस्तुत कर विशुद्ध हिन्दी (उर्दू-फारसी से युक्त हिन्दी) का मार्ग प्रशस्त किया। उसी भाँति तेलुगु में परवस्तु चिन्नयसूरि ने प्रामाणिक गए का जन्म दिया। चिन्नय ने भाषा का संस्कार किया, रचना पद्धति में नई रीतियों का जन्म दिया।

उन्होंने बच्चों के लिए 'नीति चन्द्रिका' गद्य में प्रस्तुत की। सुन्दर भाषा में सीधे हृदय पर प्रभाव डालने वाली नीति का चित्रण करने में बारि काफी सफल हुए हैं। इन्हीं के द्वारा शीत 'पंचतंत्र' तेलुगु ग्रंथ का प्रथम प्राणाणिक ग्रन्थ कहा जा सकता है। इस प्रकार हिन्दी में राजा लक्ष्मणसिंह ने भाषा का परिष्कार एवं परिमार्जन अभिज्ञानशाकत के अनुवाद के चिन्नय सूरि ने 'पंचतंत्र' के रूपांतर से तेलुगु भाषा का। इन दोनों ने अपनी-अपनी भाषा के लिए एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। एक नवीन शैली का जन्म दिया जो बाद के लेखकों के लिए अनुकरणीय एवं मार्ग-प्रदर्शक साबित हुई।

अत्याधुनिक काल से तात्पर्य केवल इतना ही है कि इस समय तक भारतीय भाषाओं ने गद्य के एक विशिष्ट संवरूप को प्राप्त किया तथा गद्य के विभिन्न अंग एवं उपांगों की पूर्ति होने लगी। साथ ही इन सभी शास्ताओं की उन्नति चरमसीमा तक पहुँची। हिन्दी में बाबू देवकीनन्दन इतनी भाषा शैली कथानक की है और किशोरीलाल गोस्वामी की साहित्यक शैली है। पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय जी तो पहले कवि और बाद को लेखक थे। यही कारण है कि उनके गद्य में काव्यात्मक कल्पना एवं मिठास के दर्शन होते हैं। इनकी ग्रंथ 'अधिखिले फूल' तथा 'बैठ हिन्दी का ठाठ' में इन्होंने व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया।

इधर तेलुगु भाषा के विकास में भी अनेक परिष्कृत ग्रंथ लिखे गड़ा श्री बड्डादि सुब्बाराव कवि ने संस्कृत नाटकों का अनुवाद तथा मौलिक नाटक भी लिखकर अपार यश प्राप्त किया है। उस समय में लिखे गए नाटकों में श्री कोलाचलम श्रीनिवास शव के 'पादुका पट्टाभिषेकम्', 'द्रौपदी', 'वस्त्रापहरणमु','लंकादहनमु', 'कालिदास', 'चाँद बीबी', 'मैसूर राज्य' आदि उल्लेखनीय है।

श्री पायंति रामय्या पंतुल तेलुगु के प्रकाण्ड पंडित थे। हिन्दी के उपयोध्यासिंह उपाध्याय के समान इन्होंने गद्य साहित्य की अच्छी सेवा की। उनकी 'आन्ध्र वाङ्मय विकास वैखरि' उल्लेखनीय है। श्री रामय्या पंतुलु की भूमिकाएँ आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भूमिकाओं की भाँति गवेषणात्मक तथा परिचयात्मक साबित हुई हैं। हिन्दी के अन्य गद्य लेखकों में पं. पद्मसिंह शर्मा तथा मिश्र बंधु के नाम आदर के साथ लिए जाते है।

हिन्दी के निबन्ध लेखकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाबू गुलब राय द्विवेदी, सद्गुरु शरण अवस्थी, श्री नंदुलारे वाजपेयी, निराला आदि के नाम आदर से लेते है तो तेलुगु में पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंह राव, डॉ. चिलुकूरि वीरभद्राव, ख. कोमराज लक्ष्मण राजु, श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री, श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, श्री सुखरम प्रताप रेड्डी, अडवि वापिराजु, श्री विश्वनाथ सत्यनारायण आदि के नाम आदर से लेते है।

हिन्दी के राजभाषा घोषित होने के उपरांत तो हिन्दी के विद्वान ही नहीं, अपितु अन्य भाषा-भाषी हिन्दी लेखक भी अपना सक्रिय सहयोग दे रखे हैं। इस दिशा में तेलुगु वाङ्मय संबंधी लेख हिन्दी में बहुत कम लोग प्रकाशित कर रहे हैं। कारण दोनों भाषा एवं साहित्यों पर जिनका अध्ययन गंभीर है, वे ही इस दिशा में अच्छा कार्य कर सकते हैं। केन्द्रीय एवं उत्तर प्रदेश सरकारों द्वारा पुरस्कृत 'पंचामृत' के लेखक श्री बालशौरि रेड्डी ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया है।

पिछले दस वर्षों से वे बराबर हिन्दी के पत्रों में तेलुगु साहित्य पर आलोचनात्मक लेख लिखते आ रहे हैं। उन्होंने 'सूर तथा प्रोतना','आन्ध्र मीरा' मोल्लांबा इत्यादि तुलनात्मक लेख भी प्रकाशित किये हैं। 'आन्ध्र भारती' नाम से प्रकाशित उनका तेलुगु साहित्य संबंधी आलोचनात्मक निबंध-संग्रह तेलुगु और हिन्दी के गद्य साहित्य में अपना अच्छा स्थान रखता है। श्री हनुमच्छास्ती तेलुगु और हिन्दी साहित्य पर बड़े उत्साह के साथ लिखते आ रहे हैं। श्री डी.वी. कृष्णाराव, श्री राजा शेषनिह शद भी इस क्षेत्र में प्रशंसनीय काम कर रहे हैं।

11.6. गद्य के विविध अंग

श्रव्य काव्य के अन्तर्गत गद्य, पद्य और चंपू आते हैं। दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक। परन्तु नाटक गद्य प्रधान होने के कारण गद्य की शाखा ही माना जा सकता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रधानत: दो शाखाएँ मानी जा सकती हैं। वे ही पद्य और गद्य। इन दोनों का सम्मिश्रण ही चंपू काव्य कहलाता है। तेलुगु भाषा में चंपू काव्य की प्रधानता है। अतः प्रारंभ समय से ही दोनों का विकास भाषा में चंपू काव्य होता आया है। किन्तु हिन्दी में चंपू काव्य नहीं के बराबर है।

गद्य की शाखायें अनेक मानी जाती हैं, जो क्रमश: उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, जीवनी, यात्रा - वृत्तांत, शास्त्र - साहित्य आदि। यहाँ पर हम इन शाखाओं में कुछ का तेलुगु - हिन्दी के तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करेंगे।

11.6.1. कहानी

भारतीय साहित्य में बहुत प्राचीन काल से ही कहानी के रूप में आख्यायिका का प्रचलन है। परन्तु वर्तमान समय में अंग्रेजी में जो (Short ,Story) लघु कथा चल पड़ी है। वह हिन्दी में कहानी या छोटी कहानी नाम से व्यवस्त होती है। बंगला में गल्प तथा तेलुगु में 'कथा' नाम से प्रसिद्ध हैं। छोटी कहानी का प्रारंभ भारतीय भाषाओं में 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 20 वीं सदी के प्रथम बाद में प्रारंभ हुआ।

तेलुगु का सर्वप्रथम मौलिक कहानी कार श्री गुरुजाड़ अप्पाराव माने जाते हैं। इन्होंने 'दिदुपाटु', 'मी पेरेमिटी ?', तथा 'संस्कर्त हृदय' नाम से तीन कहानियाँ प्रकाशित की है जो कि 'आणि मुत्यालु' में संगृहीत हैं। इनकी कहानियों में व्यंग्य की प्रधानता होती है। श्री अप्पाराव का उद्देश्य साहित्य द्वारा समाज का सुधार करना था। इनकी पहली कहानी का नाम भी 'दिदुपाटु' याने 'सुधार' ही है। इनकी कहानियाँ बहुत लोकप्रिय हो गयी हैं।

हिन्दी की प्रथम कहानी 'इंशा अल्ला खाँ' की 'रानी केतकी की कहानी' मानी जाती है। लेकिन इसे छोटी कहानी के अंतर्गत नहीं रखी जाती है। इसके बाद वंग महिला, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि ने पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित की। 'सरस्वती' के आगमन से हिन्दी कहानी का तेजी के साथ विकास होने लगा। विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानियाँ 'रक्षा बंधन' आदि बहुत ही लोकप्रिय हो गयी। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियाँ तो हमें अप्पाराव की स्मृति दिलाती है।

तेलुगु में श्री रायसं वेंकट शिवुडु तथा श्री वेलूरि शिवराम शास्त्रीजी क्रमशः हिन्दु-मुस्लिम एकता तथा भाव-प्रधान पौराणिक एवं सामाजिक कहाँनियाँ प्रकाशित की। इनकी कहानियों में 'क्षमार्पणम्', 'तन्मयता' आदि उल्लेखनीय है। उम्र की भांति कलम के धनी लेखक श्री गुडिपाटि वेंकट चलम् है। परन्तु कुछ समीक्षकों का कहना है कि चलम् जैसे लेखक विश्व साहित्य में बहुत ही कम लोग मिलते हैं। समाज पर इन्होंने जो करारे की चोटें कीं, उनसे सनातन वादी तथा धर्म के ठेकेदार तिलमिल उठे। 'अरुण, कल्याणि, ओ पुब्बु पुसिंदि' इनकी उत्तमोत्तम कहाँनियाँ है।

गोपीचंद ने राजनीति मनोविज्ञान तथा तार्किक विषयों पर रचनाएँ कर अपार यश प्राप्त कर लिया है। इनकी सौ-दो सौ कहानियाँ उपलब्ध है। श्री पालगुम्मि पद्मराजु ने कम कहानियाँ लिखीं, पर अच्छी कहानियाँ लिखी। इनकी कहानी 'तूफान' पर विश्व कहानी प्रतियोगिता में दूसरा पुरस्कार प्राप्त हुआ है। तेलुगु में श्री नोरि नरसिंह शास्त्री, भमिडिपाटि कामेश्वरराव, चिंता दीक्षातुन्नु, अन्नादि रामकृष्ण शास्त्रि, कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा, श्री बुच्चिबाबु, श्रीमती कोम्मूरि पद्मावती देवी, श्रीमती मालनी चन्दूर इत्यादि असंख्य कहानीकार है।

हिन्दी में प्रेमचंद जी का आगमन से कहानी की वाहिका लहला उठी। उन्होंने ग्रामीण एवं उनकी समस्याएँ, आर्थिक विषमता तथा सामाजिक कुरीतियों का चित्रण करने वाली जो कहानियाँ प्रस्तुत की उनसे हिन्दी कहानी साहित्य समृद्ध हो उठा। इन्होंने लगभग 300 कहानियाँ प्रकाशित की हैं। ईदगाह, पंचपरमेश्वर, कफन, सोहाग, का शवः इत्यादि अमर रचनाएँ हैं। प्रेमचंद की प्रतिभा से कहानी साहित्य समृद्ध हो उठा। भाषा, विषय एवं चित्रण की दृष्टि से भी। इन्हीं विषयों को ग्रहण कर तेलुगु में श्री करुण कुमार, श्री कोडवटि गंटि सुब्बाराव ने सुन्दर कहानियाँ प्रस्तुत की है। दलित, पीड़ित तथा सामाजिक कुरीतियों और आर्थिक विषमता के पंजे में पड़कर पिसने वाले वर्ग का सुन्दर चित्रण इन दोनों की कहानियों में पाया जाता है।

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में हम इतिहास तथा कलात्मकता के दर्शन करते हैं। संस्कृत समासों में युक्त भाषा का प्रयोग कर शिल्प की प्रधानता पर वे जोर देते हैं। ये ही बातें हम तेलुगु के विख्यात लेखक, कवि, चित्रकार एवं दर्शक श्री अडवि बापिराजु की कहानियों में पाते हैं। प्रसाद की रचनाओं में 'सालवती', 'देवरथ', 'मधुआ', 'बिसाती', 'मधूलिका' आदि श्रेष्ठ कहानियाँ हैं तो बाजिराजु की कहानियों में शैलाबाला, नागलि, हिमालय रश्मि इत्यादि। ये दोनों भावात्मक कहानियाँ लिखने में प्रसिद्ध हैं।

जैनेन्द्र कुमार तथा सुदर्शन हिन्दी के विख्यात कहानिकारों में गिने जाते हैं, एक में मनोवैज्ञानिक तत्वों की खोज पाते हैं, दूसरे में इतिहास, समाज इत्यादि का चित्रणा श्री. जे. पी. श्रीवास्तव हास्य प्रधान कहाँनियाँ लिखते हैं। इस तरह कहानीकार तेलुगु में श्री मुनिमाणिवयम नरसिंहाराव है। हिन्दी में श्री जगन्नाथ प्रसाद और अन्नपूर्णानंद तथा तेलुगु में श्री भमिडिपाटि कामेश्वरराव इत्यादि हास्य इस के अच्छे लेखक है। हिन्दी के अन्य लेखकों में श्री अश्क, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव आदि प्रतिभाशाली कहानीकार हैं।

दोनों भाषाओं का कहानी साहित्य काफी संमृद्ध है। दोनों का भविष्य निस्संदेह आशापूर्ण और उज्ज्वल है।

11.6.2. उपन्यास

हिन्दी का प्रथम उपन्यास लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' माना जाता है, तो तेलुगु में श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु विरचित 'राजशेश्वर चरित्र'। परीक्षा गुरु की अपेक्षा 'राजशेश्वर चरित्र' प्रौढ़ तथा उपन्यास- कला की दृष्टि से उत्तम उपन्यास माना जा सकता है। बाबू देवकीनंदन खत्री ने जासूसी एवं ऐयाशी उपन्यास लिखकर हिन्दी पाठकों में उपन्यासों के प्रति रुचि पैदा की, तो श्री चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम पंतुलु ने 'गणपति' लिखकर तेलुगु पाठकों में। गणपति उपन्यास शिष्ट हास्य प्रधान है। इसकी इतनी लोकप्रियता हुई कि लक्ष्मीनरसिंहन पंतुलु जी उच्चकोटि के लेखकों में गिने जाने लगे। आपने 'अहल्याबाई, हेमलता' आदि ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे से है। आपके अन्य उपन्यासों में 'सौन्दर्य तिलक (पौराणिक) रामचन्द्र विजय (सामाजिक)' हैं।

श्री उन्नव लक्ष्मीनारायण पंतुलु ने 'मालपल्ली' (हरिजन बस्ती) लिखकर उपन्यास साहित्य में क्रांति पैदा की। समाज सुधार एवं राष्ट्रीय जागृति से पूर्ण इस उपन्यास का अधिक प्रचार हुआ। इसी प्रकार के विषयों पर हिन्दी में, प्रेमचन्द, जी ने एक दर्जन के करीब श्रेष्ठ उपन्यास उपस्थित किये। जनता में जागृत पैदा करने में श्री गुडिपाटि वेंकटाचलम के उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। मैदानम्, हॅपी कन्यलु, शशिरेखा आदि चलम के उत्तम उपन्यास है।

श्री जयशंकर प्रसाद ने तीन ही उपन्यास लिखे, पर उनको कहानी, नाटक एवं काव्य की रचना में जो सफलता प्राप्त हुई उस दृष्टि से देखा जाय तो उपन्यास की रचना में नगण्य है। फिर भी कंकाल और तितली का अपना अच्छा

स्थान है? श्री भोगराजु नारायण मूर्ति ने 'विमला देवी' और 'चन्द्रगुप्त' नामक दो उपन्यास प्रस्तुत किये। 'तेलुगु के विख्यात उपन्यासकारों में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, श्री अडिवि बापिराजु, श्री नोरि नरसिंह शास्त्री, श्री बुच्चिनाबू, श्री कोडवटिगंटि कुटुंबराव, गोपिचन्द, श्रीमति मल्लादि वसुंधरा इत्यादि उल्लेखनीय है।

हिन्दी के उपन्यासकारों में श्री अज्ञेय, श्री भगवती चरण वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव, मन्मथनाथ गुप्त, निराला, गुरुदत्त, नागार्जुन आदि हैं।

तेलुगु में श्री बुच्चिबाबु और कुटुंबेशव मनोवैज्ञानिक उपन्याय लिखने में सिद्धहस्त है तो श्री गोविचन्द समस्यामूलक उपन्यास। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने 'वेचिपडगर्नु' नाम से एक हजार पुष्ठों का बृहद उपन्यास लिखा है। इसमें आन्ध्र देश का संपूर्ण चित्र तथा आन्ध्र संस्कृति और सभ्यता की झाँकी मिलती है। ऐसा उपन्यास अभी तक हिन्दी में नहीं आया है। इनके अन्य उपन्यासों में एकवीरा, चनियलिकट्टा, जेबुदोंगलु, मा बाबू, कडिगिचेट्टु, स्वर्गानिक निच्चननु आदि है। श्री अडवि पाबिराजु के उपन्यास ऐतिहासिक और भावात्मक भी है।

श्री नोरि नरसिंह शास्त्री ने 'नारायण भट्ट, रुद्रमदेवी और मला रेड्डी' नाम से तीन बृहत उपन्यासों की रचना की है, जिनमें 'रुद्रम देवी' का हिन्दी रूपांतर श्री बालशौरि रेड्डि ने किया है। बंगाल और अंग्रेजी से सैकड़ों उपन्यास तेलुगु में अनूदित हुए हैं। हिन्दी से राहुल सांकृत्यायन, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, भगवती चरण वर्मा इत्यादि के प्रमुख सभी उपन्यास तेलुगु में अनूदित हुए हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिखरे चित्र' तथा संगेयराघव की 'कब तक पुकारूँ' आज के श्रेष्ठ उपन्यासों में गिने जाते हैं। नवोदित लेखकों के दर्जनों उत्तम उपन्यास दोनों भाषाओं में आये हैं और आ रहे हैं।

11.6.3. नाटक

हिन्दी का प्रथम अनूदित नाटक राजा लक्ष्मण सिंह ने लिखा। बाबू भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने प्रथम मौलिक नाटक लिखा। बाबू हरिश्चंद्र जी ने कई मौलिक नाटक लिखे तथा बंगला और संस्कृत से अनुवाद भी किया। विद्यासुन्दर, सत्य हरिश्चंद्र, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी, नीलदेवी, आदि आपके नाटक है।

तेलुगु का प्रथम मौलिक नाटक श्री गुरजाड अप्याराव कृत 'कन्याशुल्लम' है। भारतेन्दु तथा श्री अप्पाराव दोनों ने समाज सुधार की दृष्टि से नाटकों की रचना की। हिन्दी में श्री जयशंकर प्रसाद तथा तेलुगु में श्री वेदमुवेक्टराच शास्त्री ने नाटक साहित्य की जो सेवा की वह अपूर्व है। इन दोनों ने ऐतिहासिक नाटक लिखे। दोनों संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। श्री प्रसाद के चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजात शत्रु, विख्यात है तो भी शास्त्रीजी के 'बोब्बिलि युद्धमु' और 'प्रताप रुद्रीचमु'। श्री शास्त्री जी ने प्रप्रथम पात्रोचित भाषा का प्रयोग कर तेलुगु नाटक साहित्य में एक नया अध्याय प्रारंभ किया है। ये दोनों पंडित होने के कारण साहित्य को दृष्टि से भी इनके नाटक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

हिन्दी के अन्य नाटक कारों में श्री सुदर्शन, हरिकृष्ण प्रेमी, श्री उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ. रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्द दास आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेकिन रंगमंच की दृष्टि से तेलुगु नाटक जितनी सफल हुई हिन्दी नाटक उतनी सफल नहीं हुई। आन्ध्र देश में दर्जनों नाटक - मण्डलियाँ नाटक प्रदर्शनों द्वारा जनता का मनोरंजन तथा ज्ञान की वृद्धि कर रही हैं।

हिन्दी के प्रमुख नाटक श्री सुदर्शन के सिकंदर, भाग्यचक्र आदि, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के रेवा, अशोक, श्री सेठ गोविन्ददास के शेरशाह, कुलीनता, हर्ष, प्रकाश, शशि गुप्त, श्री हरिकृष्ण प्रेमी के रक्षा-बच्धन, शिवा-साधना, स्वप्न

भंग, लक्ष्मी नारायण मिश्र के संन्यासी, राक्षस का मंदिर, भुक्ति का रहस्य श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद' का 'प्रताप प्रतिज्ञा' श्री उदयशंकर भट्ट का 'दाहर' तथा श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का 'जय-पराजय' आदि उल्लेखनीय है।

आन्ध्र नाटक पितामहं नामक उपाधि से विख्यात धर्मवरम कृष्णमाचार्य जी ने करीब 40 नाटकों की रचना की और बल्लारी में एक नाटक समाज की स्थापना कर अभिनय भी किया तथा कराया। तेलुगु के अधिकांश नाटककार नाटक लिखे थे और अभिनय भी किए थे। हिन्दी में रंगमंच का हुआ। समुचित विकास न होने के कारण नाटककारों को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त नहीं परन्तु आन्ध्र प्रदेश में असंख्य नाटक कला प्रेमी- समाजों की स्थापना हुई। नगरों की अपेक्षा गाँवों में अनेक नाटक समाज की स्थापना करके प्रेक्षकों की अभिरुचि के अनुरूप विविध प्रकार के विषयों से संबंधित नाटकों का प्रदर्शन किया करते थे।

इसी सिलसिले में पौराणिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक इत्यादि नाटक आये । श्री चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम जी नाटककार और अभिनेता था। उनका प्रथम नाटक 'कीचक वध' है, तो प्रख्यात नाटक गयोपाख्यान है। यह नाटक आन्ध्र देश में अधिक लोकप्रिय नाटक है। श्री पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहम के नाटक मनोरंजन की दृष्टि से इनके काफी सफल हुए हैं। इनके नाटकों में हास्य की प्रधानता है। इनके नाटकों में 'विप्रनारायण, पादुका पट्टाभिषेकम्, राधाकृष्ण और कण्ठाभरण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

जब देश में राष्ट्रीय जागृति की लहर चल पड़ी, उससे प्रभावित होकर हिन्दी व तेलुगु के नाटककारों ने राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण नाटकों की रचना की। इस में भारतेन्दु हरिश्चंद्र कृत 'भारत-दुर्दशा'; प्रेमधन कृत 'भारत सौभाग्य' उल्लेखनीय है। तेलुगु में असहयोग आंदोलन के अवसर पर 'गाँधी – विजय', 'स्वराज्य- रथ' आदि नाटक आये। सामाजिक नाटकों में श्री काल्लकूरि नारायण रावजी के 'चिन्तामणि', 'मधुसेवा', 'वरविक्रयम' आदि उल्लेखनीय है। ये सब नाटक प्रदर्शित कराते थे और प्रतियोगिताएँ भी रखते थे। नाटककारों को प्रोत्साहन देने के लिए पदकों एवं धन द्वारा सम्मानित करते थे। इस तरह आंध्र देश में नाटकों का हवा चला था। इन नाटकों में राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, समस्याप्रधान नाटक मुख्य है।

एक ओर मौलिक नाटकों का निर्माण होता रहा तो दूसरी तरफ अनुवाद, कार्य भी चलता रहा । हिन्दी में द्विजेन्द्रलाल राय के सभी नाटकों का पं. रूपनारायण पांडेय ने अनुवाद प्रस्तुत किया। आज तो मराठी, बंगला, अंग्रेजी से भी हिन्दी में नाटकों का अनुवाद होता जा रहा है। तेलुगु में भी बंगला, अंग्रेजी से कई नाटकों का रूपांतर हो गया है। आचार्य आत्रेय का एन.जी.ओ. नाटक 'बाबू' नाम से हिन्दी में भी अनूदित हो गया है।

इस तरह हिन्दी - तेलुगु नाटक का विकास समय-समय पर श्रीवृद्धि हो रही है। नाटक के अन्य रूपों में नाट्य रूपक व गीति नाट्य उल्लेखनीय है। तेलुगु में स्वामी शिंकर शास्त्री, देवुलपति कृष्णशास्त्री, सी. नारायण रेड्डि ; दाशरथी तथा हिन्दी में भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री सुमित्रानंदन पंत के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

11.6.4. समीक्षा

समीक्षा का अभिप्राय किसी साहित्यिक रचना का समुचित अध्ययन कर उसके गुण-दोषों का विवेचन करना होता है। आलोचक को चाहिए कि वह निष्पक्ष भाव के काव्य-सौंदर्य का सूक्ष्म एवं स्वच्छ विश्लेषण पाठकों के सामने प्रस्तुत करें।

हिन्दी और तेलुगु में समीक्षा का प्रादुर्भाव आधुनिक युग में ही हुआ है किंतु तेलुगु के पौराणिक युग में सूक्तियों के रूप में आलोचना मिलती है। नन्नया को वागानुशासक, तिक्कना को कवि ब्रह्म तथा एर्राप्रगडा को प्रबन्ध परमेश्वर कहा गया। हिन्दी में 'सूर सूर तुलसी, शशि उडुगन केशवदास' बताकर उनका स्थान निर्धारित करने का प्रयत्न हुआ। यह तो समीक्षा का प्रारंभिक रूप था। इसमें कवियों के काव्यों के गुण-दोषों का विवेचन नहीं हुआ, बल्कि उनका महत्व मात्र बताया गया है।

हिन्दी के रीतिकाल में आचार्य केशवदास, चिंतामणि, भूषण, मतिराम, पद्माकर, आदि ने अनेक लक्षण या रीति ग्रंथों की रचना की और उनमें रस, छंद, अलंकार इत्यादि का विवरण मात्र दिए थे। हिन्दी में समीक्षा साहित्य का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र के काल में पाते है तो तेलुगु में श्री वीरेशलिंगम पंतुलु के काल में। ये दोनों क्रमशः हिन्दी और तेलुगु गद्य साहित्य के जनक कहे जा सकते हैं। पत्र-पत्रिकाएँ चलकर समीक्षा लिखना प्रारंभ किया। बीज रूप में प्रारंभ होकर आज वटवृक्ष के रूप में समीक्षा साहित्य बढ़ गया है।

भारतेंदु और वीरेशलिंगम पंतुलु दोनों ने समीक्षा के साथ- साथ आलोचनालाक ग्रंथ भी लिखे। भारतेन्द्र ने 'नोटक' नामक ग्रंथ में शास्त्रीय समीक्षा का आधार लिया है तो पंतुलु जी ने कोक्कोंड वेंक्टरत्न कविकृत विग्रह तंत्र विमर्शनम् में। इन से समकालीन कवि भी प्रेरणा पा कर समीक्षा ग्रंथ लिखना शुरू किया।

हिन्दी में पं. अम्बिकादास व्यास ने बिहारीलाल के काव्य पर एक समीक्षात्मक ग्रंथ लिखा, तेलुगु में श्री गोपालशन नायुडु ने 'आन्ध्र भाषा चरित्र संग्रहम्'। हिन्दी में श्री द्विवेदी तथा तेलुगु में राममूर्ति पंतुलु के समय में समीक्षा साहित्य धनुवित हुआ और श्री रामचंद्र शुक्ल तथा श्री कहमंचि रामलिंगा रेड्डि के युग में पुष्पित हो फल देने लगा। हिन्दी के श्री श्याम सुंदर दास, श्री गुलबराय, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री नंददुलारेलाल वाजपेयी, आदि ने हिन्दी के समीक्षा साहित्य को भरमावस्था को पहुँचा दिया तो तेलुगु में श्री शब्द पनि अनंत कृष्ण शर्मा, श्री मल्लमपल्लि सोमशेखर शर्मा, निडदवालु वेंकटराव आदि ने।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के मौलिक रचनाओं के साथ अनूदित पुस्तकों की भी समीक्षा की और सैद्धांतिक आलोचना का भी परिचय दिया। उनके आलोचनात्मक ग्रंथों में 'रसज्ञ- रंजन, नैषध चरित चर्चा, हिन्दी कालिदास' उल्लेखनीय है। हिन्दी में डॉ. श्याम सुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन, रूपक रहस्य, हिन्दी भाषा और साहित्य, महात्मा तुलसीदास आदि समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे थे। हिन्दी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के आगमन से समीक्षा क्षेत्र में एक नया अध्याय ही प्रारंभ हुआ। इनके समीक्षा ग्रंथों में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' अत्यंत उच्चकोटि का है, इसके अतिरिक्त 'चिन्तमणि-दो भाग, त्रिवेणी, महाकवि सूरदास, महाकवि तुलसीदास' आदि उल्लेखनीय है।

तेलुगु में श्री वीरेशलिंगम पंतुलु के 'आन्ध्र कवुल चरित्र' (तीन भाग) श्री कट्टमंचि समलिंगा रेडिड केविल्व तत्व विचारमु उल्लेखनीय है। तेलुगु के समालोचकों में श्री चागंटि शेषय्या (आन्ध्र कवि तरंगिण 6 भाग) श्रीमती उड़कूरि लक्ष्मीकांतम्मा (आन्ध्र कविभिर) श्री सुखरम् प्रताप रेड्डि (आंधुला सांधिक चरित्र) बेमूरि, प्रभाकर शास्त्री (श्रृंगार नाथमु) आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी के समीक्षकों में हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी जी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. गुलाबराय, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, डॉ. राम- कुमार वर्मा, परशुराम चतुर्वेदी, आदि उल्लेखनीय है।

11.7. सारांश

भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के साथ भारतीय संस्कृति, एकता, के बारे में जान पायेंगे। भारतीय साहित्य में विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य के बारे में जान पायेंगे। ऐसे ही भारत में हिन्दी के बाद अधिक बोलोग बोलने वाली भाषा तेलुगु है। तेलुगु साहित्य का विकास आदिकाल या पुराण काल से लेकर आधुनिक काल तक तीव्र गति से विकास प्राप्त किए है।

आधुनिक गद्य विधाओं के साथ साथ प्राचीन साहित्य पाश्यत्य साहित्यिक विधाओं में भी तेलुगु भाषा साहित्यिक प्रक्रियाओं को अपनाथी। हिन्दी और तेलुगु भिलेजुले दोनों भाषाओं का विकास क्रम, साहित्यिक दृष्टियाँ विधियाँ मिले जुले रहते हैं। इन दोनों का संस्कृति कहानी, उपन्यास, नाटक, समीक्षा आदि विधाओं में भी दोनों भाषाओं में संपूर्णा प्रगति को देख सकते हैं।

11.8. बोध प्रश्न

1.हिन्दी - तेलुगु के प्राचीन - मध्यकालीन पद्यों की तुलना कीजिए।

2. तेलुगु - हिन्दी काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या है?

3. तेलुगु - हिन्दी गद्य के विकास पर चर्चा कीजिए।

4. गद्य के विविध अंग की तुलना प्रस्तुत कीजिए।

11.9. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी और तेलुगु कवियों का तुलनात्मक अध्ययन -शिव सत्यनारायण।

2. हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. के. रामनाथन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. हिन्दी और तेलुगु के प्रतिनिधि कवियों का तुलनात्मक अध्ययन-मन्त्री, आन्ध्र प्रदेश हिन्दी प्रचार सभा।

4. आधुनिक हिन्दी -तेलुगु काव्यधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. एस. सूरप्पडु, ऋषभचरण जैन एवं संतति, दरियागंज, दिल्ली।

5.हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. के. रामनाथन विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

6. हिन्दी और तेलुगु एक तुलनात्मक अध्ययन।

डॉ. एम. मंजुला

Paper – II: COMPARATIVE LITERATURE

तुलनात्मक अध्ययन

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

सभी प्रश्नों के अंक समान है।

Time: 3Hours **Max:70 Marks**

1. तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।

(अथवा)

तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद की भूमिका क्या हो सकती है।

2. तुलनात्मक भारतीय साहित्य और इसके इतिहास के बारे में लिखिए।

(अथवा)

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की प्रविधियों के बारे में चर्चा कीजिए।

3. तेलुगु-हिन्दी साहित्य के आदिकाल और रीतिकाल की तुलना कीजिए।

(अथवा)

तेलुगु-हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की तुलना कीजिए।

4. हिन्दी -तेलुगु काव्यधाराओं में उपलब्ध सामान्य प्रवृत्तियाँ क्या है ?

(या)

समकालीन हिन्दी और तेलुगु कविता के बारे में चर्चा कीजिए।

5. किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(a) छायावाद-भावकविता

(b) तुलनात्मक आलोचना

(c) हिन्दी-तेलुगु आधुनिक काल

(d) हिन्दी और तेलुगु के रीति काव्य-धारा

(या)

(a) प्रयोगवाद-दिगंबर कविता

(b) हिन्दी -तेलुगु के आधुनिक कवि

(c) हिन्दी और तेलुगु लिपियों की उत्पत्ति

(d) हिन्दी और तेलुगु के कृष्ण भक्ति-धारा